भक्ति-सूत्र

नारद-वाणी; पहला भाग; भक्ति-सूत्र के पहले ४२ सूत्रों पर भगवान श्री रजनीश के दस प्रवचन, प्रश्नोत्तर सहित; दिनांक ११ जनवरी से २० जनवरी, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना

भगवान श्री रजनीश का नया हिन्दी साहित्य

एक ओंकार सतनाम

जपुजी (नानक-वाणी) की पउडियो पर बीस वार्ताएँ, प्रश्नोत्तर सहित

बिन धन परत फुहार

सत सहजोबाई के पदो पर दस प्रवचन, प्रश्नोत्तर सहित

अकथ कहानी प्रेम की

सत शेख फरीद के पदो पर दस प्रवचन, प्रश्नोत्तर सहित

दीया तले अँधेरा

झेन और सूफी बोध-कथाओ पर आधारित बीस व्याख्यान

कस्तूरी कुडल बसै

सत कबीर दास के पदो पर आधारित दस व्याख्यान

ताओ उपनिषद . भाग – ३

लाओत्से की ताओ तेह किंग के सूत्रो पर इक्कीस उद्बोधन

तत्त्वमसि

क्रान्तिबीज, पथ के प्रदीप, अन्तर्वीणा, घूंघट के पट खोल
पुस्तको के सकलित पत्रो का वृहत् सकलन

भक्ति-सूत्र

भगवान श्री रजनीश





संकलन-संपादन

स्वामी चैतन्य कीर्ति

आवरण-सज्जा

स्वामी आनंद अर्हत

रजनीश फाउंडेशन प्रकाशन, पूना

प्रकाशक

मा योग लक्ष्मी

सचिव – रजनीश फाउंडेशन,

१७ – कोरेगांव पार्क,

पूना – ४११ ००१ (महाराष्ट्र)

प्रथम संस्करण २१ मार्च, १९७६

प्रतियाँ ३०००

मूल्य ३०.०० रुपये

मुद्रक

सयद इस्हाक

सगम प्रेस लिमिटेड

१७ ब कोथरूड

पूना ४११ ०२९

अनुक्रमणिका

पहला प्रवचन

दिनांक ११ जनवरी १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ॥ २ ॥

अमृतस्वरूपा च ॥ ३ ॥

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति
अमृतो भवति तृप्तो भवति ॥ ४ ॥

यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति
न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति ॥ ५ ॥

यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति
आत्मारामो भवति ॥ ६ ॥

परम प्रेमरूपा है भक्ति

जीवन है ऊर्जा – ऊर्जा का सागर।

समय के किनारे पर अथक, अतहीन ऊर्जा की लहरे टकराती रहती हैं न कोई प्रारम्भ है, न कोई अत, बस मध्य है, बीच है। मनुष्य भी उसमें एक छोटी तरग है, एक छोटा बीज है – अनत सम्भावनाओ का।

तरग की आकाँक्षा स्वाभाविक है कि सागर हो जाए और बीज की आकाँक्षा स्वाभाविक है कि वृक्ष हो जाए। बीज जब तक फूलो मे खिले न, तब तक तृप्ति सम्भव नही है।

मनुष्य कामना है परमात्मा होने की। उससे पहले पडाव बहुत हैं, मजिल नही है। रात्रि-विश्राम हो सकता है। राह मे बहुत जगहे मिल जाएँगी, लेकिन कही घर मत बना लेना। घर तो परमात्मा ही हो सकता है।

परमात्मा का अर्थ है तुम जो हो सकते हो, उसकी पूर्णता।

परमात्मा कोई व्यक्ति नही है, कही आकाश में बैठा कोई रूप नही है, कोई नाम नही है। परमात्मा है तुम्हारी आत्यन्तिक सभावना – आखिरी सभावना, जिसके पार फिर और कोई होना नही है, जिसके आगे फिर कोई जाना नही है, जहाँ पहुँच कर तृप्ति हो जाती है, परितोष हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य तब तक पीडित रहेगा। तब तक तुम चाहे कितना ही कमा लो, कितना ही वैभव जुटा लो, कही कोई पीडा का कीडा तुम्हे भीतर काटता ही रहेगा, काई बेचैनी सालती ही रहेगी, कोई काँटा चुभता ही रहेगा। लाख करो भुलाने के उपाय – बहुत तरह की शराबें हैं विस्मरण के लिए – लेकिन भुला न पाओगे। और अच्छा है कि भुला न पाओगे, क्योकि काश, तुम भुलाने मे सफल हो जाओ तो फिर बीज बीज ही रह जाएगा, फूल न बनेगा – और जब तक फूल न बने और जब तक मुक्त आकाश को गध फूल की न मिल जाए, तब तक परितृप्ति कैसी! जब तक तुम अपने परम शिखर को छू कर बिखर न जाओ, जब तक तुम्हारा विस्फोट न हो जाए अनत में, जब तक तुम्हारी गगा उसी सागर मे वापस न लौट जाए जहाँ से आयी है, तब तक अगर तुम भूल गये तो आत्मघात

होगा, तब तक अगर तुमने अपने को भुलाने में सफलता पा ली तो उससे बड़ी और कोई विफलता नही हो सकती।

अभागे हैं वे जिन्होंने समझ लिया कि सफल हो गये। धन्यभागी हैं वे, जो जानते है कि कुछ भी करो, असफलता हाथ लगती है। क्योंकि ये ही वे लोग हैं जो किसी-न-किसी दिन, कभी-न-कभी परमात्मा तक पहुँच जाएँगे।

जहाँ सफलता मिली वही घर बन जाता है। जहाँ असफलता मिली वही से पैर आगे चलने को तत्पर हो जाते है।

परमात्मा तक पहुँचे बिना कोई तृप्ति सभव नही है।

कहा मैंने, जीवन ऊर्जा है।

ऊर्जा के तीन रूप हैं। एक तो बीजरूप है कुछ भी प्रगट नही है। फिर वृक्षरूप है सब कुछ प्रगट हो गया है, लेकिन प्राण अप्रगट हैं। फिर फूलरूप है फिर प्राण भी प्रगट हुआ, फिर वह अनूठी अपूर्व गध भी आ गयी, पँखुडियाँ खिल गयी और खुले आकाश के साथ मिलन हो गया, अनत के साथ एकता हो गयी।

साधारणत बीज का अर्थ है कामना। वृक्ष का अर्थ है प्रेम। फूल का अर्थ है भक्ति।

जब तक तुम बीज मे हो, तब तक कामवासना मे रहोगे। जब तुम वृक्ष बनोगे तब तुम्हारे जीवन में प्रेम का अवतरण होगा। और जब तुम फूल बनोगे, तब भक्ति।

भक्ति परम शिखर है। वह आखिरी बात है।

इसे हम थोडा समझ ले, तभी इन अनूठे सूत्रो मे प्रवेश हो सकेगा।

तुम शरीर हो, तुम मन भी हो, तुम उसके पार भी कुछ हो, जिसका तुम्हे पता नहीं।

शरीर तो बहुत स्थूल है। उसका पता चल जाता है। उसके लिए किसी बुद्धिमत्ता की जरूरत नही है। शरीर तो वजन रखता है। उसका बोध हो जाता है। उसके लिए किसी ध्यान की जरूरत नही है।

मन की भी थोडी झलक तुम्हें मिल जाती है, क्योंकि मन स्थूल और सूक्ष्म के मध्य मे है — शरीर से भी जुडा है, आत्मा से भी। शरीर की तरफ से थोडी-सी खबरें मन को मिल जाती हैं, क्योंकि एक धागा शरीर के तट से जुडा है। लेकिन आत्मा की तुम्हे कोई खबर नही मिलती। आत्मा कोरा शब्द मालूम होता है। आत्मा शब्द सुनते से ही तुम्हारे भीतर कोई घूँघर नही बजते। आत्मा शब्द सुनते से ही बेचैनी-सी होती है। शब्द बेबूझ है। भाषाकोश का अर्थ तो पता है, जीवन के कोश का कुछ अर्थ पता नही।

शरीर के साथ जुडी है कामवासना। कामवासना स्थूल है। शरीर शरीर

को माँगता है कामवासना का अर्थ। शरीर अपने से विपरीत शरीर को माँगता है, क्योंकि एक किनारा अधूरा है, दूसरे की चाह पैदा होती है। पुरुष स्त्री को माँगता है, स्त्री पुरुष को माँगती है, ताकि जीवन की सरिता बीच मे बह सके, दो किनारे जुड जाएँ। पुरुष अकेला है, स्त्री अकेली है।

शरीर के तल पर शरीर की माँग है, शरीर से मिलन की आकांक्षा है। क्षण-भर को मिलन हो भी जाता है। क्षण-भर को शरीर शरीर मे डूब जाते हैं और खो भी जाते हैं – लेकिन बस क्षण-भर को! उससे पीडा मिटती नही, गहन हो जाती है। उस मिलन के बाद बडा गहरा विषाद हो जाता है, क्योंकि मिलन के बाद गहरा विछोह होता है। मिलता कुछ भी नही, ऐसा लगता है, उलटा खो गया।

शरीर का मिलन क्षण-भर को ही हो सकता है। स्थूल एक-दूसरे मे विलीन नही हो सकते। स्थूल की सीमा है। स्थूल अपनी सीमा को छोड नही सकता, अन्यथा स्थूल न रह जाएगा।

बर्फ के दो टुकडो को तुम मिलाने की कोशिश करो – मुश्किल होगी। लेकिन वे ही पिघल जाएँ, जल हो के, बिलकुल मिल जाते है। फिर कोई अडचन नही होती। सीमा खो गयी मिलन सुलभ हो गया।

शरीर बर्फ की तरह है – जमा हुआ, ठोस। ऊर्जा वही है, पिघल जाए तो मन बनता है। मन जल की तरह है। सीमा तो है, लेकिन तरल सीमा है, ठोस नही। तुम मन को कैसा भी ढालो, ढल जाता है। शरीर को कैसा भी ढाला तो न ढलेगा। मन को कैसा भी ढाला, ढल जाएगा।

हिन्दू के घर मे बच्चा पैदा हो, मुसलमान के घर मे रख दो, मुसलमान हो जाएगा। शरीर नही होगा, मन हो जाएगा। शरीर तो बाप की ही झलक देगा, माँ की झलक देगा। शरीर की खबर तो वही जुडी रहेगी जहाँ से शरीर आया है, लेकिन मन मुसलमान का हो जाएगा। बच्चे को याद भी न रहेगी कि वह कभी हिन्दू था। हिन्दू होने के पहले ही, मन इसके पहले कि ढलता, मुसलमान हो गया। मुसलमान बाद मे चाहे तो हिन्दू हो जाए, ईसाई हो जाए, आस्तिक नास्तिक हो जाए, नास्तिक आस्तिक हो जाए – मन मे कुछ अडचन नही है।

मन तरल है। मन प्रतिपल बदलता रहता है। उसकी तरलता अनूठी है।

कामवासना है शरीर जैसी और शरीर की।

प्रेम है मन जैसा और मन का।

प्रेम की माँग शरीर की माँग से ऊपर है। प्रेम कहता है दूसरे का मन मिल जाए! प्रेम करने वाला वेश्या के द्वार पर न जाएगा। यह बात ही बेहूदी मालूम पडेगी। यह बात ही सम्भव नही है। यह सोच भी बेहूदा मालूम पडेगा।

लेकिन कामवासना से भरा व्यक्ति वेश्या के घर चला जाएगा शरीर की ही माँग है।

शरीर खरीदा जा सकता है, मन खरीदा नही जा सकता।

शरीर जड है। मन थोड़ा-थोड़ा चेतन है; इसलिए इतना नीचा नही उतरा जा सकता कि खरीद और बेच की जा सके।

मन प्रेम माँगता है कोई, जो अपना सर्वस्व देने को तैयार हो, बिना किसी शर्त के! मन अपने को किसी को दे देना चाहता है, लुटा देना चाहता है। मन की माँग प्रेम की है।

जब दो मन मिलते हैं तो जो रस पैदा होता है, उसका नाम प्रेम है। जब दो शरीर मिलते है तो जो रस पैदा होता है, उसका नाम काम है।

फिर मन के भी बाहर तुम्हारा अस्तित्व है – आत्मा का। आत्मा ऐसे है जैसे पानी भाप बन के आकाश मे उड गया। पानी ही है, लेकिन अब तरल सीमा भी न रही। अब कोई सीमा न रही, आकाश मे फैलना हो गया! अदृश्य हो जाती है भाप, थोडी दूर तक दिखायी पडती है, फिर खो जाती है!

आत्मा अदृश्य है – भाप जैसी!

आत्मा की तलाश किसकी है?

शरीर माँगता है शरीर को। मन माँगता है मन को। आत्मा माँगती है आत्मा को।

शरीर और शरीर के मिलन से जो रस पैदा होता है – क्षणभगुर – उसका नाम काम। मन और मन के मिलन से जो रस पैदा होता है – थोडा ज्यादा स्थायी, जीवन-भर चल सकता है। आकांक्षा तो मन की होती है कि जीवन के पार भी चलेगा। प्रेमी कहते हैं, 'मौत हमारे प्रेम को न तोड पाएगी।' अगर प्रेम जाना है, तो प्रेमी कहता है, 'कुछ हमें छुडा न पाएगा। शरीर मिट जाएगा तो भी हमारा प्रेम नष्ट न होगा।'

यह कामना ही है, लेकिन मन थोडा ज्यादा दूरगामी है। शरीर से उसकी सीमा थोडी बडी है।

फिर आत्मा है, शाश्वत की माँग है उसकी। उससे कम पर उसकी तृप्ति नही। क्षणभगुर को भी क्या चाहना! अँधेरी रात में क्षण-भर को बिजली चमकती है, फिर अँधेरा और अँधेरा हो जाता है। दुख ही बेहतर है। दुख की दुनिया में क्षण-भर को सुख का फूल खिलता है, दुख और दूभर हो जाता है, फिर झेलना और मुश्किल हो जाता है।

आत्मा मन के प्रेम को भी नही माँगती, क्योकि मन तरल है आज किसी से प्रेम किया, कल किसी और के प्रेम में पड सकता है। मन का कोई बहुत भरोसा नही है। जब प्रेम में होता है तो ऐसा ही कहता है, 'अब तेरे सिवाय किसी को

कभी प्रेम न कर सकूंगा। अब तेरे सिवाय मेरे लिए कोई और नही है।' मगर ये मन की ही बातें हैं। मन का भरोसा कितना! आज कहता है, कल बदल जाए! अभी कहता है, अभी बदल जाए!

मन पानी की तरह तरल है।

आत्मा की माँग है शाश्वत की, चिरतन की, सनातन की। आत्मा की माँग है आत्मा की।

आत्मा और आत्मा के मिलन पर जो रस पैदा होता है, उसका नाम भक्ति है।

शरीर की सीमा है ठोस। मन की सीमा है तरल। आत्मा की कोई सीमा नही।

काम क्षणभगुर है। प्रेम थोडा दूर तक जाता है, थोडा स्थायी हो सकता है। भक्ति शाश्वत है।

काम मे शरीर और शरीर का मिलन होता है – स्थूल का स्थूल से, मन मे – सूक्ष्म का सूक्ष्म से, आत्मा मे – निराकार का निराकार से। भक्ति निराकार के निराकार से मिलने का शास्त्र है।

ऐसा समझो कि तुम अपने घर मे बैठे हो द्वार-खिडकियाँ बद करके, रोशनी नही आती सूरज की भीतर, हवा के झोके नही आते, फूलो की गध नही आती, पक्षियो के कलरव की आवाज नही आती – तुम अपने में बद बैठे हो ऐसा शरीर है, द्वार-दरवाजे सब बद!

फिर तुमने द्वार-दरवाजे खोले, खिडकियाँ खोली, हवा के नये झोको ने प्रवेश किया, सूरज की किरणे आयी, पक्षियो के गीत गूँजने लगे, आकाश की झलक मिली ऐसा मन है! थोडा खुलता है। लेकिन बैठे तुम घर मे ही हो।

फिर भक्ति है कि तुम घर के बाहर निकल आये, खुले आकाश मे खडे हो गये अब सूरज आता नही, बरस रहा है, अब हवा कही से आती नही, तुम्हारे चारो तरफ आदोलित होती है, अब तुम पक्षियो के कलरव मे एक हो गये!

भक्ति-सूत्र पूरा शास्त्र है भक्ति का। एक-एक सूत्र को अति ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करना, और अति प्रेमपूर्वक भी, क्योंकि यह प्रेम का ही शास्त्र है। इसे तुम तर्क से न समझ पाओगे। स्वाद ही समझा पाएगा।

'अथातो भक्ति व्याख्यास्याम!'

अब भक्ति की व्याख्या!

क्यो 'अब'? 'अथातो'!

हो चुकी बात काम की बहुत। हो चुकी चर्चा प्रेम की बहुत। अथातो भक्ति. अब भक्ति की बात हो। जी लिये बहुत। देख लिये शरीर के भी खेल।

देख लिये मन के भी जाल। गुजर चुके उन सब पड़ावों से। अब भक्ति की थोड़ी बात हो।

'अब'! – अचानक शुरू होता है शास्त्र!

सिर्फ भारत में ऐसे शास्त्र हैं जो 'अथातो' से शुरू होते हैं, दुनिया की किसी भाषा में ऐसे शास्त्र नहीं हैं। क्योंकि यह तो बड़ा अधूरा मालूम पड़ता है।

कहीं 'अब' से कोई शास्त्र शुरू होता है! यह तो ऐसा लगता है जैसे इसके पहले कोई बात चल रही थी, कोई कथा आगे चल रही थी जो छूट गयी है, कोई बीच का अध्याय है, प्रारंभ का नहीं।

पश्चिम के व्याख्याकार जब पहली दफा ब्रह्मसूत्र से परिचित हुए – वह भी ऐसे ही शुरू होता है 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा,' अब ब्रह्म की जिज्ञासा – तो उन्होंने कहा कि इसके पहले कोई किताब थी जो खो गयी है। निश्चित ही, क्योंकि यह तो मध्य से शुरुआत हो रही है।

नहीं, कोई किताब खो नहीं गयी है, यह शुरुआत ही है। यह जीवन की किताब का आखिरी अध्याय है। शास्त्र शुरू ही हो रहा है, मगर जीवन की किताब का आखिरी अध्याय है। यह उनके लिए नहीं है जो अभी शरीर की वासना में पड़े हों। वे इसे न समझ पाएँगे। अभी दूर है। अभी फल पकेगा। अभी उनके गिरने का समय नहीं आया। यह उनके लिए नहीं है जो अभी प्रेम की कविता में डूबे हैं और उसको ही जिन्होंने आखिरी समझा है। उन दो को छोड़ने के लिए 'अथातो'!

तो, शुरू में ही शास्त्र कह देता है कि कौन है अधिकारी। यह अधिकारी की व्याख्या है 'अथातो'। यह कहता है कि अगर चुक गये हो कामवासना से, भर गया हो मन – तो, अन्यथा अभी थोड़ी देर और भटको, क्योंकि भटके बिना कोई अनुभव नहीं है। अगर अभी प्रेम में रस आता हो तो क्षमा करो, अभी इस मंदिर में प्रवेश न हो सकेगा। अभी तुम किसी और ही प्रतिमा के पुजारी हो, अभी परमात्मा की प्यास नहीं जगी। अभी तुम या तो बीज हो या वृक्ष हो अभी फूल होने का समय नहीं आया। और जब तक समय न आ जाए तब तक कुछ भी तो नहीं होता। इसलिए व्यर्थ मेहनत नहीं करनी है।

यह, जीवन की पाठशाला में जिनका आखिरी अध्याय करीब आ गया, उनके लिए है। इसका यह मतलब नहीं है कि यह बूढ़ों के लिए है। जैसे पश्चिम के लोगों ने गलत समझा – उन्होंने समझा कि यह आधी किताब है, आधी शायद खो गयी – वैसे पूरब के लोगों ने भी गलत समझा। उन्होंने समझा कि यह तो बूढ़ों के लिए है।

नहीं, प्रौढ़ों के लिए है, बूढ़ों के लिए नहीं है। प्रौढ़ कोई कभी भी हो सकता

है। एक छोटा बच्चा प्रौढ हो सकता है। प्रगाढ़ बुद्धिमत्ता चाहिए ! और नही तो बूढे भी बचकाने रह जाते हैं। कोई बूढे होने से थोडे ही पक जाता है। धूप में पक जाने से बाल कोई वृद्ध नही हो जाता। बूढे के मन में भी वही कामनाएँ चलती रहती हैं, वही वासनाएँ चलती रहती है। तो उसके लिए भी नही है यह शास्त्र।

फिर कभी-कभी कोई जवान भी भर-जवानी मे जाग जाता है, अभी जबकि सोने के दिन थे तब जाग जाता है। कभी कोई छोटा बच्चा भी अचानक बीज मे छलाँग लेता है और फूल हो जाता है। कोई शकराचार्य छोटी उम्र में, बडी छोटी उम्र मे । उम्र का कोई सवाल नही है, बोध का सवाल है।

'अथातो' अब भक्ति की व्याख्या करते हैं। व्याख्या करते हैं, परिभाषा नही। परिभाषा हो नही सकती। कुछ चीजे हैं जिनका वर्णन हो सकता है, व्याख्या हो सकती है, परिभाषा नही हो सकती। जैसे कि तुमने कोई स्वाद पाया और तुम किसी दूसरे को समझाने लगे जिसके जीवन मे अभी वैसा स्वाद आया नही, लेकिन स्वाद को समझने की उत्सुकता आयी है, रस जगा है, जिज्ञासा बनी है — तुम क्या करोगे ? तुम वर्णन करोगे, तुम्हे जो स्वाद मिला है उसका तुम वर्णन करोगे, कैसा मिला ! तुम कुछ प्रतीक चुनोगे, जिससे, जिससे तुम बात कर रहे हो, उसकी भाषा में कुछ सकेत दिये जा सके, उसके अनुभव मे तुम अपना अनुभव जोडने की कोशिश करोगे।

व्याख्या का अर्थ होता है तुम्हें जिन्हे अनुभव नही है, उनसे अपने अनुभव को जोडने की चेष्टा, जो तैयार तो है मदिर मे प्रवेश के, लेकिन अभी मदिर मे प्रवेश नही हुआ है, उन्हे मदिर की खबर देनी है, मदिर के भीतर क्या घट रहा है, मदिर के भीतर कैसा अनुभव हुआ है, थोडा-सा स्वाद उनके लिए लाना है।

क्या करेंगे ? परिभाषा करेंगे ? व्याख्या करेंगे। परिभाषा नही हो सकती। परिभाषा तो उनके बीच हो सकती है जो दोनो ही जानने वाले हो। परिभाषा सक्षिप्त होती है। परिभाषा तो एक-दो वचनो मे, वाक्यो मे पूरी हो जाती है। लेकिन व्याख्या थोडी लम्बी होती है। और व्याख्या से सिर्फ हम दृश्य देते है, झलक देते हैं। वह बिलकुल ठीक नही होती व्याख्या, क्योकि ठीक हो नही सकती, थोडी-थोडी ठीक होती है, थोडी-थोडी गलत होती है। क्योकि ज्ञानी जब अज्ञानी से बात करता है तो अज्ञानी की भाषा मे करता है। परिभाषा तो बिलकुल ठीक होती है, व्याख्या बिलकुल ठीक नही होती — हो नही सकती।

जब बुद्ध बोलेंगे उनसे जिनके जीवन मे बुद्धत्व नही है, तो अगर बुद्ध अपनी ही भाषा का उपयोग करे तो परिभाषा होगी, अगर बुद्ध उनकी भाषा का उपयोग करे जिनसे बोल रहे है तो व्याख्या होगी। इसलिए सूत्र पहले ही कह देता है 'अथातो भक्ति व्याख्या' .अब हम भक्ति की व्याख्या करते है।

'वह ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है।'

भक्ति की पहली व्याख्या का सूत्र वह ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है।

मैंने तुम्हे कहा, ऊर्जा का एक रूप है काम, ऊर्जा का दूसरा रूप है प्रेम, ऊर्जा का तीसरा रूप है भक्ति। भक्ति और काम के बीच मे प्रेम है। प्रेम का एक हाथ काम से जुडा है, प्रेम का दूसरा हाथ भक्ति से जुडा है। अगर कामवासना की व्याख्या करनी हो तो भी प्रेम से ही करनी होगी। अगर भक्ति की व्याख्या करनी हो तो भी प्रेम स ही करनी होगी। क्योकि प्रेम सेतु है दोनो के बीच। प्रेम दोनो का मध्यबिन्दु है। प्रेम दोनो का सतुलन है।

जिसने भक्ति को जाना वह उनसे बोले जिन्होने भक्ति को नही जाना, तो वह किस भाषा में बोले? प्रेम के अतिरिक्त और कोई भाषा नही बचती। काम मे तो बोला ही नही जा सकता, क्योकि काम एक छोर है, भक्ति दूसरा छोर है। भक्ति तो काम के करीब-करीब विपरीत है। तो, अगर काम से कहना हो तो इतना ही कहा जा सकता है कि जो कामना नही है, वही भक्ति। लेकिन इससे कुछ हल न होगा, निषेध हो जाएगा।

हम पूछते हैं, 'भक्ति क्या है?' अगर काम से कहना हो तो हम इतना ही बता सकते है कि भक्ति क्या नही है। लेकिन पूछने वाला पूछ रहा है, 'हम यह नही पूछ रहे है कि भक्ति क्या नही है। पत्थर नही है, वृक्ष नही है, पक्षी नही है–माना, भक्ति है क्या? तो कहाँ से शुरू करें?'

..'परम प्रेमरूपा है।'

प्रेम से शुरुआत करनी पडेगी। लेकिन प्रेम मे एक शर्त लगायी है परम प्रेमरूपा! परम प्रेमरूपा का अर्थ है ऋण काम। अगर सिर्फ प्रेमरूपा कहते तो फिर भक्ति मे और प्रेम मे कोई फर्क न रह जाता, फिर तो प्रेम ही भक्ति हो जाती। फिर तीसरे की कोई जरूरत न होती, काम और प्रेम, दो काफी थे विभाजन के लिए।

नही, प्रेम में थोडा-सा काम शेष रहता है। भक्ति मे उतना भी काम शेष नही रह जाता।

अब हम इसे ऐसा समझे कि काम में थोडा-सा प्रेम है, इसलिए तो आदमी काम मे उलझा रहता है। एक प्रतिशत होगा प्रेम, निन्नानवे प्रतिशत केवल कामना है, केवल वासना है, लेकिन वह एक प्रतिशत प्रेम काम को भी एक सुन्दर प्रतिमा बना देता है, काम को भी एक भावभगिमा दे देता है जो उसकी नही है, उधार है, काम की कुरूपता को ढाँक लेता है, और एक सौंदर्य का आवरण दे देता है, काम की व्यर्थता को ढाँक लेता है और सार्थकता की थोडी-सी झलक द देता है।

कामवासना में भी प्रेम का थोडा-सा अश है। और प्रेम में भी कामवासना

का थोडा-सा अश है। दोनो जुडे है। इसलिए प्रेम भी पूरा प्रेम नही है; कुछ उसमे अभी भी विजातीय है। प्रेम में भी थोडी कामवासना है।

इसे हम ऐसा समझें कि कामी कामवासना मे पडता है, कामवासना में पडने के कारण थोडे-से प्रेम का आविर्भाव हो जाता है। प्रेमी प्रेम में डूबता है, प्रेम मे डूबने के कारण कामवासना आ जाती है। दोनो में बडा फर्क है, लेकिन तालमेल भी है। कामी काम के कारण प्रेम करने लगता है। प्रेमी प्रेम के कारण काम मे उतरता है। दोनो में मौलिक अतर है। क्योंकि प्रेमी का काम बडा मधुर और प्रीतिकर हो जाएगा। कामी का प्रेम भी गदा होगा। उसके प्रेम में भी बदबू होगी। लेकिन एक-दूसरे मे घुले-मिले हैं।

परम प्रेमरूपा है भक्ति। परम प्रेमरूपा का अर्थ हुआ प्रेम खालिस सोना बचा, चौदह कैरेट नही, अट्ठारह कैरेट नही, खालिस! उसमे एक भी कैरेट कामवासना का न रहा। शुद्ध प्रेम हो गया, तो भक्ति!

क्योंकि तुम प्रेम को शायद थोडा-सा जानते हो, इसलिए प्रेम के आधार पर भक्ति को समझाया जा रहा है। तुम प्रेम की थोडी-सी भाषा जानते हो, वह भी पूरी नही जानते, कही सपने में झलक मिली है, कही टटोलते-टटोलते हाथ पड गया है, कही से कोई थोडी पहचान आ गयी है, सायोगिक रही होगी, लेकिन तुम्हें थोडा-सा स्वाद है।

जैसे कि पीतल है, और सोना तुमने नही देखा, तो हम पीतल से सोने को समझाते है। कहते है ऐसा ही पीला, पर और शुद्ध, ज्योतिर्मय, सूर्य की किरण जैसा चमकता हुआ! कुछ प्रतीक खोजते हैं। प्रतीक खोजना वर्णन है, व्याख्या है।

'वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है।'

सूत्र के जो भी अनुवाद किये गये हैं हिन्दी मे, उन सब मे यही अनुवाद किया गया है वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है। पर सस्कृत में बात कुछ और है।

'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा!' ईश्वर शब्द का प्रयोग नही किया है। ईश्वर शब्द नही है। 'उसके प्रति'! 'त्वस्मिन'! बडा फर्क है। जिन्होने भी हिंदी में अनुवाद किये है, उन्होने बात को सकीर्ण कर दिया।

'उसके प्रति'! 'उसका' नाम नही हो सकता। इशारा है। बडी दूर है वह। उसे ईश्वर कहने से बात हल न होगी। क्योकि उसे ईश्वर कहने से ही हम उसकी परिभाषा कर देंगे।

ईश्वर शब्द का अर्थ होता है, ऐश्वर्यवान, सारा ऐश्वर्य जिसका है, वह ईश्वर। यह हमारी परिभाषा है, क्योकि हम ऐश्वर्य की भाषा में सोचने के आदी हो गये है। हमारे लिए ईश्वर ऐसा है जैसे सम्राट, सारे जगत का है, पर है सम्राट

ही। धन की भाषा में हम सोचने के आदी हो गये हैं, ऐश्वर्य की भाषा में सोचने के आदी हो गये हैं, तो ईश्वर कहते हैं।

लेकिन धन से, और ईश्वर का क्या लेना-देना? ऐश्वर्य से, और ईश्वर का क्या सम्बंध? सम्राटों से उसकी कल्पना करनी ठीक नहीं। इसलिए संस्कृत शब्द ठीक है त्वस्मिन् – 'उसके प्रति'! नाम मत दो उसे। नाम तुम दोगे, तुम्हारा नाम होगा, तुम्हारा मन प्रविष्ट हो जाएगा। सिर्फ इतना ही कहो 'उसके'। इशारा करो। अँगुली बता दो। शब्द मत दो।

वह अनाम है, नाम में मत घसीटो।

वह अरूप है, रूप का आग्रह मत करो।

वह निराकार है, तुम कोई आकार मत दो।

'ईश्वर' देते ही आकार मिल जाता है। ईश्वर शब्द आते ही, तुम्हारे मन में आकार उठने शुरू हो जाते हैं।

सोचो थोड़ा 'उसके प्रति'! – कोई आकार उठता है? उसके प्रति! – तुम पूछोगे, 'किसके प्रति? यह कौन है 'उस'? किसकी बात कर रहे हैं?'

'ईश्वर' कहते ही हल हो गया, तुम निश्चित हुए, तुमने कहा, समझ गये। जहाँ तुमने कहा, समझ गये, वही नासमझी है। तुम न समझो, बड़ी कृपा होगी। तुम बहुत जल्दी समझ जाते हो, वहीं भूल हो जाती है।

परमात्मा इतना आसान नहीं कि समझ में आ जाए। वस्तुतः उसे समझने के लिए सब समझ छोड़नी पड़ती है। उसे केवल वे ही समझ पाते हैं जो समझ का आग्रह भी छोड़ देते हैं।

इसलिए अच्छा होगा, हम भी कहें, 'उसके प्रति'! 'उसके' कहते ही बड़ा विराट का द्वार खुलता है। फिर ये पशु-पक्षी, पौधे, आकाश, सब सम्मिलित हो जाते हैं। परमात्मा कहते ही, ईश्वर कहते ही बात कुछ बिगड़ जाती है, भेद खड़ा हो जाता है, स्रष्टा और सृष्टि का भेद हो जाता है। फिर तुम सृष्टि की निंदा में लग जाते हो और स्रष्टा की पूजा में। और कहीं स्रष्टा और सृष्टि अलग नहीं है।

स्रष्टा शब्द ठीक नहीं है, सृजन की ऊर्जा है। वही सृष्टि है, वही स्रष्टा है।

'उसके प्रति' कहना बिलकुल ठीक है।

'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा' – उसके प्रति परम प्रेमरूप है। न नाम का पता है, न धाम का पता है। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ यह हुआ कि प्रेम तो नाम-धाम के बिना नहीं हो सकता, भक्ति हो सकती है। प्रेम के लिए तो नाम-धाम चाहिए।

तुम अगर कहो कि मैं प्रेम में पड़ गया हूँ, और कोई पूछे, 'किसके प्रति', तुम कहो, 'इसका कोई पता नहीं' – तो तुम पागल हो।

प्रेम तो साकार के प्रति है, इसलिए नाम पता है। प्रेम का तो कोई एड्रेस है, पत्र लिखा जा सकता है। परमात्मा का कोई एड्रेस नही, पत्र लिखा नही जा सकता। परमात्मा के लिए तो बडा बावलापन चाहिए। निराकार के प्रति प्रेम! इसका अर्थ यह हुआ कि आब्जैक्ट, विषय तो खो गया, सब्जैक्ट, केवल तुम्ही बचे।

जिन्होने परमात्मा के प्रति प्रेम जाना, उन्होने वस्तुत यही जाना कि वहाँ कोई भी नही है, बस प्रेम ही है। असल में परमात्मा के प्रति प्रेम कहना ठीक नही है, वहाँ 'प्रति' है ही नही। वहाँ सिर्फ प्रेम का निवेदन है, किसी के प्रति नही है, सिर्फ प्रेम का आविर्भाव है, शुद्ध प्रेम की ऊर्जा का उठान है, उत्थान है, उर्ध्वगमन है, किसी के प्रति नही है। पर कहना होगा तुम्हारी भाषा में।

इसलिए सूत्र कहता है 'वह उसके प्रति परम प्रेमरूपा है।' परम प्रेम तभी है जब प्रेमी की भी जरूरत न रह जाए। जब तक प्रेमी की जरूरत है, तब तक तुम्हारा प्रेम परम प्रेम नही है, निर्भर है। निर्भर है तो शुद्ध नही हो सकता। जिससे तुम प्रेम करोगे, वह तुम्हारे प्रेम को आच्छादित करेगा। जिससे तुम प्रेम करोगे, वह तुम्हारे प्रेम का रग देगा, जिसको तुम प्रेम करोगे वह तुम्हारे प्रेम को ढग देगा – परम नही हो सकता।

ऐसा समझो कि जब भी सोने का आभूषण बनाओगे, तो शुद्ध न रह जाएगा, कुछ-न-कुछ मिलाना पडेगा। क्योकि शुद्ध सोना इतना नाजुक है, उसके आभूषण नही बनते। उसमे कुछ मिलाना ही पडेगा विजातीय – कुछ तांबा मिलाओ, कुछ और मिलाओ। वह अट्ठारह कैरेट रह जाएगा, बीस कैरेट होगा, बाईस कैरेट होगा; लेकिन शुद्ध नही हो सकता, चौबीस कैरेट नही हो सकता।

ऐसा समझो कि भक्ति के जब तुम आभूषण बनाते हो, तो प्रेम हो जाता है। और जब तुम प्रेम के आभूषणो को पिघला लेते हो और शुद्ध कर लेते हो, तब भक्ति हो जाती है। लेकिन जब तुम प्रेम के आभूषण पिघलाते हो तो प्रेमी भी पिघल जाता है। तुम जिसे प्रेम करते थे, वह बचता नही। तुम भी नही बचते, प्रेम ही बचता है। वे दोनो गये। वह द्वैत गया। और जब प्रेम ही बचता है, तब प्रेम शुद्ध है। न मैं न तू, दोनो खो गये!

जलालुद्दीन रूमी की बडी प्रसिद्ध कविता है, मुझे बडी प्यारी है। एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पे दस्तक देता है। भीतर से आवाज आती है, 'कौन है?' प्रेमी कहता है, 'मैं हूँ तेरा प्रेमी। पहचाना नही? मेरी पगध्वनि विस्मृत हो गयी? मेरी आवाज़ पहचान से उतर गयी?' लेकिन भीतर से आवाज़ आयी, 'अभी तुम इस योग्य नही कि द्वार खुलें। अभी तुम अधिकारी नही।'

प्रेमी बडा हैरान हुआ। क्योकि प्रेमी तो सदा सोचता है कि अधिकारी है ही। हर व्यक्ति की यही भूल है कि हर व्यक्ति जन्म से ही समझता है कि

वह प्रेम का अधिकारी है। इसलिए प्रेम को कोई सीखता ही नही, बिना सीखे ही प्रेम करने लगते है। और इसलिए फिर प्रेम में इतनी भूलें होती हैं और प्रेम में इतना उपद्रव होता है, और सारा जीवन बर्बाद हो जाता है।

प्रेम सभावना है, सत्य नही। प्रेम को प्रगटाना है, वह प्रगट नही है। प्रेम कोई मिली हुई सपदा नही है, खोजनी है, सृजन करना है उसका।

प्रेमी लौट गया, वर्षों भटकता रहा, प्रेम की खोज करता रहा, प्रेम का अर्थ समझने की चेष्टा करता रहा, ध्यान किया, प्रार्थना की – धीरे-धीरे प्रेम का आविर्भाव हुआ, वह लौटा। फिर उसने दस्तक दी। भीतर से आवाज आयी, 'कौन?' तो, जलालुद्दीन कहता है कि अब प्रेमी ने कहा 'तू ही है।' और द्वार खुल गये।

जलालुद्दीन से अगर मेरी कभी मुलाकात हो जाए – कभी-न-कभी हो सकती है, क्योकि जो रहा है वह कही होगा, जो है वह मिटता नही – तो उससे मै कहूँ कि कविता पूरी कर दो, यह अधूरी है। अभी भी द्वार खुलने नही चाहिए। क्योकि जहाँ 'तू' है वहाँ 'मै' मिट नही सकता।

प्रेमी ने पहले कहा, 'मै'! अब उसने बदल लिया पहलू, लेकिन पहलू बदलने से कुछ फर्क नही पडता। अब वह कहता है, 'तू'! लेकिन 'तू' का क्या अर्थ है अगर 'मै' मिट गया हो? किसको कहोगे 'तू'? किस प्रसग में कहोगे 'तू'?

'तू' का सारा अर्थ 'मै' मे छिपा है। जब तक 'मै' हूँ, तभी तक 'तू' मे अर्थ है। जब 'मै' ही न रहा तो 'तू' कौन?

जलालुद्दीन से मै कहूँ कि इसे थोडा और आगे बढा, एक दफा और लौटा इस प्रेमी को। जल्दी मत कर। कविता खत्म करने की इतनी जल्दी भी क्या है, और चार लाइन जोडी जा सकती हैं। जाने द वापस। प्रेयसी से कहलवा दे कि कुछ-कुछ तैयार हुआ, लेकिन पूरा नही। थोडी अधिकारी होने की क्षमता आयी, लेकिन अभी प्रारम्भ है। थोडा और भटक। थोडा और खोज। इतना पहुँचा है तो आगे भी पहुँच ही जाएगा। रास्ता ठीक है जिस पे चल पडा है, मजिल अभी नही आयी। आधी यात्रा हो गयी है – 'मै' खो गया, आधी और होनी चाहिए – तू भी खो जाए! फिर ला, कुछ वर्षों बाद! फिर लाने की वैसे जरूरत भी नही है। फिर तो प्रेयसी वही चली आएगी जहाँ प्रेमी है।

परम प्रेम तब है जब न प्रेमी रहा न प्रेयसी रही, जब द्वन्द्व खो गया।

. 'उसके प्रति परम प्रेमरूपा है .!'

और तब –

'अभी मैखानए दीदार हर जर्रे मे खुलता है
अगर इसान अपने आप से बेगाना हो जाए।'

और तब कण-कण मे उसकी मधुशाला का दरवाज़ा खुल जाता है! कण-कण में!

'अभी मैखानए दीदार हर जर्रे मे खुलता है।'

कण-कण मे उसका मधु बिखर जाता है और कण-कण मे उसकी मधुशाला का द्वार खुल जाता है – 'अगर इसान अपने आप से बेगाना हो जाए!' अगर आदमी अपने को भूल जाए, तो परमात्मा को पाने मे अड़चन कहाँ! अपने से बेगाना हो जाए! मैं को भूल जाए, मै को छोड दे, मै को न पकडे रखे – तो उसकी मधुशाला कण-कण पे बिखर जाती है! फिर सभी जगह उसकी ही मस्ती है।

न तुम हो, न वह है, मस्ती ही मस्ती है – वही परम प्रेमरूप है!

'अमृतस्वरूपा च!'

बडे अद्भुत सूत्र हैं। छोटे, बीजरूप!

'और अमृतस्वरूपा है!'

'वह भक्ति परम प्रेमरूपा है और अमृतस्वरूपा है।' क्योकि जिसने परम प्रेम जाना, फिर उसकी कोई मृत्यु नही। क्योकि वह तो मर ही चुका, अब मरेगा कैसे? मरना तो तभी तक शेष है जब तक तुम मिटे नही, मरे नही। मौत तो तभी तक डरायेगी जब तक तुम हो। जिसने अपने को खो दिया उसकी कैसी मौत! उसने मौत पर विजय पा ली! वह अमृतस्वरूप को उपलब्ध हो गया!

ध्यान रखना अहकार की ही मृत्यु होती है, तुम्हारी कभी नही होती, कभी हुई नही, हो नही सकती। तुम शाश्वत हो, सनातन हो, सदा थे, सदा रहोगे। अन्यथा कोई उपाय नही है। तुम चाहो भी अपने को मिटा लेना तो नही मिटा सकते। मौत होती ही नही। लेकिन तुमने एक अपना काल्पनिक आकार, रूप समझ रखा है। उस कल्पना की मौत होती है। तुमने अपनी एक अहकार की प्रतिमा बना रखी है। परमात्मा से जुदा तुमने अपने को 'मैं' कहने का भाव बना रखा है। वही मैं-भाव मरता है। चूँकि तुम उमसे बडे जुडे हो, तुम्हे लगता है 'मैं' मरा! 'मैं'-भाव छूट जाये 'अमृत-स्वरूपा च' तब, तब जा मिलता है उसकी कोई मृत्यु नही है।

'यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।'

उस भक्ति को प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है।'

'सिद्ध हो जाता है!'

सिद्ध का क्या अर्थ होता है?

सिद्ध का अर्थ होता है जो होने को थे वही हो गये। जो बीज की तरह लाये थे वह खिल गया फूल की तरह. सिद्ध का अर्थ होता है।

सिद्ध का अर्थ होता है अब और साधना करने को न रही, अब और कोई साध्य न रहा, अब सभी साधनों के पार आ गये।

सिद्ध का अर्थ होता है तुमने पा लिया अपने स्वभाव को, अपने स्वरूप को, पहुँच गये उस परम मंदिर में जिसकी तलाश थी, जन्मों-जन्मों अनंत काल तक जिसे खोजा था, जिसके लिए भटके थे।

स्वयं को खोते ही व्यक्ति सिद्ध हो जाता है। इसका अर्थ हुआ कि सारा भटकाव अहंकार का है। तुम इसलिए नहीं भटकते कि कोई तुम्हें और भटका रहा है, तुम इसलिए भटकते हो कि तुम हो। जब तक तुम हो, भटकोगे। तुम मिटे कि पहुँचे। मिटने में ही पहुँच जाना है। होने में ही भटकना है।

'अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है।'

'जिस भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न द्वेष करता है, न आसक्त होता है और न उसे विषय-भोगों में उत्साह होता है।'

'इन्तिहा वो थी कि जीने के लिए मरता था मैं
इब्तिदा ये है कि मरने की भी हसरत न रही।'

ऐसे भी दिन थे जब जीने के लिए ऐसी आतुरता थी कि मरने को भी तैयार हो जाता था। और आखिरी बात—इन्तिहा यह है—और आखिरी बात यह है, पहुँच जाने की बात यह है कि मरने की भी हसरत न रही। जीने की तो बात छोड़ो, मरने की भी आकांक्षा नहीं उठती।

तुमने कभी खयाल किया—तुम्हें मरने की आकाँक्षा तभी उठती है जब तुम्हारी जीवन की आकाँक्षा पूरी नहीं होती। जहाँ-जहाँ अड़चन आती है जीवन की आकाँक्षा में, वहीं तुम कहते हो कि मर जाना बेहतर है। मरना तुम चाहते नहीं। जीना तुम चाहते हो अपनी शर्तों पर। शर्त कभी पूरी नहीं होती, तो मरने की तैयारी करने लगते हो।

रूसी कहानी है कि एक लकड़हारा लौट रहा है गट्ठर ले कर सिर पर। जिंदगी-भर लकड़ियाँ ढोता रहा है, थक गया है। सभी थक जाते हैं, और सभी लकड़ियाँ ढो रहे हैं। काटो जंगल से, बेचो बाजार में, फिर दूसरे दिन काटो जंगल से, फिर बेचो बाजार में! थक गया है। हड्डी-हड्डी जराजीर्ण हो गयी है। उस दिन तो वह बड़ा दुखी है कि इससे भी क्या सार है! 'यही करता रहा, यही करता रहूँगा, और एक दिन मर जाऊँगा और मिट्टी में गिर जाऊँगा।'

तो उसने कहा, 'ऐ मौत, सभी को आती है, एक मुझ ही को छोड़ देती है। मुझे क्यों नहीं आती? उठा ले मुझे!'

ऐसे मौत साधारणतः इतनी जल्दी सुनती नहीं, पर कहानी है कि मौत ने

सुन लिया। मौत आ गयी। लकडहारा गट्ठर को पटक के दुखी मन से बैठा था। मौत ने आ के कहा, 'मैं आ गयी हूँ, बोलो क्या काम है?'

देखा मौत को, हाथ-पैर कँप गये, प्राण कँप गये, साँस रुक गयी। उसने कहा, 'नही, कुछ काम नही, कोई और दिखायी नही पडा, गट्ठर उठवा के सिर पे रखवाना है। कृपा कर और गट्ठर उठा के सिर पे रख दे।'

तुम जब भी मरने की बात करते हो तब गौर से देखना वहाँ जीने की आकांक्षा बडी गहरी है। इसलिए जो लोग आत्महत्या करते है, तुम चौंकना मत, तुम यह मत सोचना कि इन लोगो ने आत्महत्या कर ली, बात क्या है! आदमी तो जीना चाहता है, ये मर कैसे गये! ये बहुत बुरी तरह जीना चाहते थे, बडी प्रगाढता से जीना चाहते थे। इनकी शर्तें बडी थी, जिंदगी पूरी न कर पायी। ये जिंदगी से नाराज हो गये। ये जिंदगी को तो न मिटा पाये, ये जिंदगी को मिटाने के लिए तत्पर हो गये थे – अपने को मिटा लिया। मगर इनकी आत्महत्या में जीवन की आकाँक्षा है, जीवेषणा है।

जब तुम जीवन की आकाक्षा छोड देते हो, तब तुम चकित हो जाओगे कि उसके साथ-ही-साथ मृत्यु की आकाँक्षा भी छूट जाती है। जिस व्यक्ति के जीवन को जीवेषणा से छुटकारा मिल गया, जो अभी राजी है कि मौत आ जाए तो तैयार पाये जो यह भी नही कहता कि कल मुझे जीना है'– उसे तुम कभी आत्म-हत्या करता न पाओगे, हालाँकि तुम्हे लगेगा कि इसे तो आत्महत्या कर लेनी चाहिए। जब यह आदमी कहता है कि मुझे जीने का कोई सवाल नही है तो इसे आत्महत्या कर लेना चाहिए। लेकिन आत्महत्या तभी की जाती है जब जीने की बडी गहरी आकाक्षा होती है। यह आत्महत्या भी क्यो करे? मरने की भी हसरत न रही। उतनी आकाँक्षा भी नही है अब।

'न किसी वस्तु की इच्छा करता है।' क्योकि जिसने भक्ति को जान लिया, वस्तुएं व्यर्थ हो गयी।

तुम जब कभी प्रेम को जानते हो तब भी वस्तुएं व्यर्थ हो जाती है।

तुमने कभी खयाल किया – प्रेमी एक-दूसरे को वस्तुओ को भेट देने लगते हैं! वह प्रेम का लक्षण है। क्यो? अब वस्तुओ का मोह नही रह जाता। वस्तुएं देने योग्य हो जाती है, पकड रखने योग्य नही रह जाती।

जिसे तुम प्रेम करते हो उसे तुम सब दे देना चाहते हो। इसलिए कंजूस प्रेम नही कर पाते। कृपण आदमी के जीवन मे कोई प्रेम नही हो सकता। क्योकि कृपणता और प्रेम एक साथ नही हो सकते, एक ही घर मे उन दोनो का निवास नही हो सकता।

तो, ध्यान रखना कृपण तो प्रेमी भी नही हो सकता, भक्त होना तो असम्भव है।

है। लेकिन अक्सर तुम कृपणों को भक्त पाओगे। वह भक्ति झूठी है।

निज़ाम हैदराबाद भक्त आदमी थे। लेकिन मैंने सुना है कि वे दुनिया के सबसे बड़े सम्पत्तिशाली आदमी थे। इतनी बड़ी सम्पत्ति और किसी के पास नहीं। लेकिन कृपण तुम ऐसा आदमी न पाओगे। जो टोपी उन्होंने सिंहासन पर बैठते वक्त पहनी थी, वे चालीस साल उसको पहने रहे। उससे बास आती थी। वह इतनी गंदी हो गयी थी। वे उसको धुलने नहीं देते थे, क्योंकि धुलने में कहीं बिगड़ न जाए, कहीं खराब न हो जाए। वे मरते दम तक उसी को पहने रहे। मेहमान सिगरेट अधजली छोड़ जाते तो ऐश-ट्रे से वे इकट्ठी कर लेते थे — खुद पीने के लिए! यह तुम भरोसा न करोगे। और यह आदमी भक्त था! पाँच बार इबादत करता था भगवान को। यह असम्भव है। यह बिलकुल असम्भव है।

यह आदमी किसको धोखा दे रहा है? अभी तो इस आदमी के जीवन में प्रेम भी नहीं है! जली सिगरेटें, झूठी सिगरेटें इकट्ठी कर रहा है! जैसे ही मेहमान जाएँ, जो पहला काम निज़ाम करते थे, वह यह कि जल्दी से सिगरेटें सँभाल के रख लेना, फिर फुर्सत से पिएँगे!

जहाँ भी तुम कृपण को पाओ, वहाँ तुम समझ लेना कि अगर वह भगवान की बातें कर रहा हो, प्रेम और भक्ति की बातें कर रहा हो, तो वे किसी गहरे घाव को छिपाने की तरकीबें हैं। कृपण कभी भक्त नहीं हो सकता। कृपण प्रेमी ही नहीं हो पाता। वह पहली ही सीढ़ी नहीं चढ़ता, दूसरी पर तो पहुँचेगा कैसे?

जब तुम प्रेम करते हो, तत्क्षण तुम्हारी पकड़ वस्तुओं से उठ जाती है, तुम भेंट कर सकते हो, दान दे सकते हो! और दे के तुम प्रसन्न होते हो, उदास नहीं। और जो तुमसे ले लेता है तुम उसके अनुगृहीत होते हो कि उसने हलका किया। ऐसा नहीं सोचते कि वह तुम्हारा अनुगृहीत होए, क्योंकि अगर उतना भी रह गया तो सौदा हुआ फिर तुम कृपण हो।

हिंदुस्तान में रिवाज है कि ब्राह्मण घर आये तो पहले उसे भेंट दो, दान दो, फिर दक्षिणा भी दो। दक्षिणा का मतलब होता है धन्यवाद कि तुमने भेंट स्वीकार की! दक्षिणा बड़ा अद्भुत शब्द है! पहले दान दो, और चूंकि ब्राह्मण ने स्वीकार किया, वह इनकार भी कर सकता था, फिर दक्षिणा दो कि धन्यभाग कि 'तुमने स्वीकार किया! तुम इनकार कर देते तो मेरा प्रेम अधूरा वापस लौट आता! तुमने द्वार दिया!'

इसलिए प्रेमी अनुगृहीत होता है दे कर। भक्त सब लुटा के अनुगृहीत होता है।

'. .किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता है, न द्वेष करता है।' क्योंकि जब इच्छा ही नहीं रही तो द्वेष कहाँ! द्वेष तो इच्छा की छाया है। जब तक तुम

इच्छा करते हो तब तक तुम द्वेष भी करोगे। क्योंकि जो वस्तु तुम चाहते हो, वह अगर किसी और के कब्जे में है तो तुम क्या करोगे? तुम द्वेष करोगे। तुम ईर्ष्या करोगे। तुम जलोगे।

' .न आसक्त होता है।' क्योंकि जब इच्छा ही न रही ।

समझ लो इसको ठीक से। जिसके जीवन मे वस्तुओ की इच्छा है, उसका अर्थ है कि उसने प्रेम को नही जाना – पहली बात। वह चूक गया। वस्तुएँ तो पडी रह जाएँगी, प्रेम साथ जाता है। थोडा जाता है, भक्ति होती तो पूरा जाता। उतना जाता जितना प्रेम था। जितना खालिस सोना था, साथ चला जाता, शेष विजातीय पडा रह जाता।

अगर तुम प्रेम तक नही पहुँच पाए तो उसका अर्थ केवल इतना है कि तुम जो भी इकट्ठा कर रहे हो, वह सब मौत छीन लेगी। इसलिए कृपण मौत से डरता है। जीना नही और मौत से डरता है। जीने की तैयारी करता है, जीता कभी नही। क्योंकि जीने मे तो खर्च है। जीने में तो प्रेम लाना पडेगा। जीने मे तो व्यक्तित्व प्रवेश कर जाएँगे, वस्तुओ की दुनिया समाप्त हो जाएगी। न, वह सिर्फ जीने की तैयारी करता है मकान बनाता है जिसमे कभी रहेगा, धन इकट्ठा करता है जिसका कभी भोगेगा, शादी करता है, पत्नी, जिससे कभी प्रेम करेगा, फुर्सत से, बच्चे पैदा करता है कि कभी जब समय होगा, सुविधा होगी, तब एक बार आशीर्वाद बरसा देंगे। मगर वह दिन कभी आता नही। वह तैयारी ही करता है। एक दिन मौत उसे उठा लेती है। और जो भी उसने इकट्ठा किया था, वह सब पडा रह जाता है। इसका भय सताता है।

इसलिए कृपण डरता रहता है और डर के कारण और भी कृपण होता जाता है। मौत के खिलाफ इन्तजाम करता है।

मौत के खिलाफ एक ही इन्तजाम है – और वह है प्रेम। मौत के खिलाफ दूसरा कोई इन्तजाम नही है, कोई सुरक्षा नही है। कोई बीमा-कपनी मौत के खिलाफ सुरक्षा नही दे सकती। सिर्फ प्रेम ।

क्योंकि प्रेम के क्षण में तुम वस्तुओ से ऊपर उठते हो और व्यक्तित्व दृष्टि में आता है, व्यक्तियों का ससार शुरू होता है, वस्तुओ का समाप्त होता है। तब वस्तुएँ साधनरूप हो जाती है। तुम प्रेम के लिए उनका उपयोग करते हो, लेकिन वे तुम्हारा उपयोग नही कर पाती। जब तुम वस्तुओ की इच्छा करते हो तो जो वस्तुएँ तुम्हारे पास हैं, उनमे तुम्हारी आसक्ति होती है कोई छीन न ले। और जो तुम्हारे पास नही हैं, दूसरो के पास है, उनसे तुम्हारा द्वेष होता है, क्योंकि उनके पास हैं और तुम्हारे पास नही है। इच्छा के दो पहलू बन जाते हैं फिर: अपने पास जो है उसे पकडो, और दूसरे के पास जो है उसे छीनो। तब सारा जीवन

एक छीना-झपट, एक आपाधापी, एक दौड़-धूप हो जाती है, हाथ कुछ भी नहीं लगता। मरते वक्त हाथ खाली होते हैं।'

'न आसक्त होता है, न उसे विषय-भोगों में उत्साह होता है।'

यह बहुत समझ लेने जैसा है। विषय-भोगों में तुम्हें उत्साह तभी तक है, जब तक तुम्हें परम भोग का स्वाद नहीं मिला। क्षुद्र को भोगता आदमी तभी तक है जब तक विराट के भोग का द्वार नहीं खुला। कंकड़-पत्थर बीनते हो, क्योंकि हीरे-जवाहरातों का पता नहीं। कूड़ा-करकट इकट्ठा करते हो, क्योंकि सम्पत्ति की कोई पहचान नहीं है।

यह लक्षण है भक्त का कि उसे विषय-भोगों में कोई उत्साह नहीं होता। कामी को सिर्फ विषय-भोग में उत्साह होता है, और कोई उत्साह नहीं होता। प्रेमी को विषय-भोग में उत्साह नहीं होता, किन्हीं और चीजों में उत्साह होता है, अगर उनके सहारे काम भी चले तो ठीक।

जैसे समझो अगर तुम किसी व्यक्ति के प्रेम में हो, तो तुम चाहोगे कि दोनों बैठ के कभी शांत आकाश में तारों को देखो। कामी नहीं चाहेगा यह। कामी कहेगा, 'क्यों फिजूल समय खराब करना? तारों में क्या रखा है? एक दफा देख लिये सदा के लिए देख लिये।' कामी का तो शरीर में रस है, तारों में नहीं, चाँद में नहीं, पक्षियों के गीत में नहीं। दो प्रेमी बैठ के सितार सुन सकते हैं, या गीत गा सकते हैं, या दो प्रेमी बैठ के शांत, मौन ध्यान कर सकते हैं, प्रार्थना कर सकते हैं। उस प्रार्थना के माध्यम से ही अगर काम भी जीवन में आ जाए तो उन्हें कोई विरोध नहीं है। लेकिन शुरू उन्होंने प्रार्थना की थी। चांद को देखते-देखते वे करीब आ जाएँ और एक-दूसरे का हाथ हाथ में ले ले तो उन्हें कुछ विरोध नहीं है, लेकिन देखना उन्होंने चाँद को शुरू किया था।

प्रेमियों की आंख एक-दूसरे पे नहीं होती, एक साथ किसी और चीज पे होती है। कामियों की आँख एक दूसरे पे होती है, और किसी चीज पे नहीं होती। प्रेमी किसी और तीसरी चीज को देखते हैं अपने से पार। प्रेम का कोई गन्तव्य है, काम का कोई गन्तव्य नहीं है। काम अपने-आप में समाप्त हो जाता है। प्रेम अपने से पार जाता है। जो पार ले जाए, जो अतिक्रमण कराये, जो तुम्हें तुमसे ऊपर देखने की सुविधा दे, वही प्रेम है।

तो, प्रेमी कभी बैठ के सितार सुनेंगे, या कभी गीत गाएँगे, या कभी नाचेंगे, या कभी खुले आकाश के नीचे लेटेंगे, या कभी सागर-तट पर घूमेंगे, कभी सागर के नाद को सुनेंगे। लेकिन प्रेमी, कामी नहीं।

प्रेमी का कुछ लक्ष्य है जो दोनों से पार है। लेकिन बार-बार उस लक्ष्य से वे अपने पे लौट आएँगे। भक्त कभी नहीं लौटता – गया सो गया। वह जब चाँद की

तरफ गया तो गया, गया, गया, फिर नही लौटता। भक्त पीछे लौटना नही जानता। कामी तो कही जाता ही नही, प्रेमी जाता है, लौट-लौट आता है, भक्त गया सो गया।

काम ऐसे है जैसे पिंजरे मे बद पक्षी, कही जाता नही, वही पिंजरे मे ही उछल कूद करता रहता है, वही हलन-चलन करता रहता है। बस पिंजरा उसकी सीमा है।

प्रेम ऐसे है जैसे कबूतर उडते है आकाश मे, फिर अपने घर मे वापस लौट आते हैं। पिंजरो मे बद नही है। न लौटे तो कोई उन्हे बुलाना नही है, कोई पकडने नही जा सकता, अपने से लौट आते हैं। घर के ऊपर एक छत्ता लगा दिया होता है। उडते हैं दूर आकाश मे, बडी दूर की यात्रा करते है, थकते है, लौट आते है वापस। प्रेमी ऐसे पक्षी हैं जो पिंजरा मे बद नही है, जाते है दूर अपने मे पार, लौट-लौट आते है। भक्त ऐसा पक्षी है जो गया सो गया, उसका लौटने को कोई घर नही है। उसका घर सदा आगे है – और आगे! वह जब तक परमात्मा तक ही न पहुँच जाए तब तक यात्रा जारी रहती है।

'भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न द्वेष करता है, न आसक्त होता है, और न उसे विषय-भोगो मे उत्साह होता है।'

'यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति!'

'उस भक्ति को जान कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है, और आत्माराम हो जाता है।'

उन्मत्त हो जाता है! पागल हो जाता है!

भक्ति अपूर्व उन्मत्तता है। आँखे सदा नशे से सरोबार रहती हैं। मन सदा एक अपूर्व बेहोशी मे डूबा होता है। जीवन साधारण गति नही रह जाती, नृत्य हो जाता है। जीवन से गद्य खो जाता है, पद्य का जन्म होता है। किसी और ही आयाम मे प्रवेश हो जाता है।

'वह सिजदा क्या, रहे एहसास जिसमे सिर उठाने का
इबादत और बकदरे होश तौहीने इबादत है।'

भक्त का सिर झुकता है तो फिर उठता नही। साधारण लोगो को तो पागल मालूम पडेगा। साधारण लोग तो सिर झुकाते ही नही, सिर्फ दिखाते हैं कि सिर झुकाते है। दिखाते भर हैं! अहकार तो अकडा खडा रहता है, शरीर ही कवायद करता है।

'वह सिजदा क्या, रहे एहसास जिसमे सिर उठाने का!'

लेकिन भक्त ऐसे पागल है कि वे इसी को सिजदा कहते है, इसी को सिर झुकाना कहते हैं कि जब यह खयाल ही न रह जाए कि अब सिर उठाना भी है!

झुका दिया, उसको उठाना क्या ! मिटा दिया, उसे वापस सम्हालना क्या !

'इबादत और बकदरे होश तौहीने इबादत है !'

और होश क्या बचाना ! जब डूबे तो डूबे ! होशियारी से कहीं कोई डूबता है ? हिसाब रख के कही कोई प्रेम मे गया है ? गणित को तो छोड जाना पडता है पीछे। तर्क के तो पार जाना होता है। बुद्धि तो बेईमानी है, चालाकी है। बुद्धि तो कुशलता है, गणित है। प्रेम इस तरह के गणित को स्वीकार नही करता। फिर भक्ति की तो बात ही क्या !

प्रेम मे भी गणित टूटने लगता है। प्रेम मे भी दो और दो चार नही होते सदा, कभी पाँच हो जाते हैं, कभी तीन ही रह जाते है। प्रेम में हिसाब-किताब की दुनिया डावाँडोल हो जाती है।

भक्ति तो आखिरी शराब है, फिर उसके आगे और कोई नशा नही।

'वह सिजदा क्या, रहे एहसास जिसमे सिर उठाने का !'

'इबादत और बकदरे होश' प्रार्थना और वह भी होश के साथ ! – तो भले आदमी, प्रार्थना करने ही क्यो गये ? दुकान ही चलाते। वही तुम्हारी पात्रता थी। जब प्रार्थना करने गये तो फिर क्या होश, क्या हिसाब ?

'इबादत और बकदरे होश तौहीने इबादत है !' फिर तो तुम प्रार्थना की बेइज्जती कर रहे हो, तौहीन कर रहे हो।

सुना है मैंने, एक फकीर दीवाना हो गया। घर के लोग समझे नही। मित्र, प्रियजन पहचाने नही। यह बीमारी न थी। यह, जो आदमियो की साधारण बीमारी है, उसमे मुक्त हो जाना था। लेकिन, साधारण बीमारी को हम स्वास्थ्य समझते है। उन्होने वैद्य को बुला लिया। वैद्य ने उसकी नब्ज की जाँच की। तो कहते हैं, उस फकीर ने कहा

'चारागर ! मस्त की दुनिया है जमाने से जुदा।
होश में आ कि जहाँ हम है वहाँ होश नही।'

'होश मे आ कि जहाँ हम है वहाँ होश नही। !'

कहा 'वैद्य, मस्तो की दुनिया और ही दुनिया है। यह तू क्या कर रहा है ? होश में आ ! क्या नब्ज पकड रहा है ?'

मस्तो की एक और ही दुनिया है। दीवाने कुछ और ही आयाम मे जीते हैं। उसे हम समझे कि वह आयाम क्या है।

तुम कहाँ जीते हो ? तुम वहाँ जीते हो जहाँ गणित है, हिसाब है, साफ-सुथरी रेखाएँ हैं। तुम ऐसे जीते हो जैसे कोई बगीचा बना लेता है, साफ-सुथरा ! भक्त ऐसे जीता है जैसे कोई जगल में जीता है. कुछ साफ-सुथरा नही है, आदमी के हाथ की कोई छाप नही है, सिर्फ परमात्मा के हस्ताक्षर है। वह किसी नियम से

नहीं जीता। क्योंकि जिसने प्रेम को पा लिया उसके लिए कोई नियम लागू नहीं होते, जरूरत नहीं रह जाती।

संत अगस्तीन को कोई पूछता था कि मुझे एक ही नियम बता दो। बहुत नियमों की बात मुझसे मत करो, मैं नासमझ हूँ। बहुत आज्ञाएँ मुझे मत दो, क्योंकि मैं भूल ही जाऊँगा। तुम मुझे एक ही सार की बात बता दो। मैं शास्त्रों को नहीं जानता हूँ।

आदमी बड़ा अनूठा था! क्योंकि अपने अज्ञान को स्वीकार करने से बड़ी घटना इस जगत में और नहीं। मैं अज्ञानी हूँ, उसने कहा, मुझे तुम साधारण-सा सूत्र दे दो, जो मैं पाल लूं, जो मुझे भूले न।

तो, अगस्तीन ने बहुत सोचा। अगस्तीन बोलने मे कुशल आदमी था, लेकिन इस आदमी के सामने उसका बोलना खो गया। उसने बहुत सोचा। उसने कहा, 'फिर तुम एक काम करो। प्रेम, बस इतना ही याद रखो, फिर शेष सब अपने से हो जाएगा।'

तुम प्रेम करो – सब नियम पूरे हो जाते हैं। और तुम सब नियम पूरे करो और प्रेम को छोड दो, तो तुम सिर्फ धोखे में हो। बिना प्रेम के कोई नियम पूरा नही होता। बिना प्रेम के सारी नीति अनीति है और सारा आचरण सिर्फ दुराचरण को छिपाने की व्यवस्था है।

प्रेम के अतिरिक्त कोई आचरण नही। और जिसने प्रेम को पा लिया, उसके लिए आचरण के कोई नियम नही, कोई अनुशासन नही, उसने परम अनुशासन पा लिया!

'उस भक्ति को जान कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है।'

यह वर्णन है, यह व्याख्या है, परिभाषा नही। उस भक्ति के सम्बंध में कुछ खबरें दे रहे हैं।

'उन्मत्त हो जाता है!'

तुमने पागल को देखा है। पागल भी नियम छोड देता है, लोक-लाज छोड देता है, कुल-मर्यादा छोड देता है। पागल से हम आशा भी नहीं रखते। पागल और भक्त में थोडी-सी समानता है – थोडी-सी! अन्तर बड़ा है, थोडी-सी समानता है! पागल सामान्य जीवन से नीचे गिर जाता है, भक्त ऊपर उठ जाता है। दोनो सामान्य जीवन के पार हो जाते हैं – एक नीचे गिर के, दूसरा ऊपर उठ के। पार होने की समानता है।

इसलिए यह सूत्र है कि ध्यान रखना भक्ति की पहचान उन्मत्तता है। हमने चैतन्य को नाचते देखा है। घर के लोग परेशान थे पागल हो गया! मीरा को हमने नाचते देखा है सड़कों पर। घर के लोग, प्रियजन, परिवार के लोग – और

मीरा शाही खानदान से थी – बड़े दुखी थे। मार डालने की भी चेष्टा की, क्योंकि यह बदनामी का कारण थी। यह राजघराने की महिला और राजस्थान में, जहाँ घूँघट के बाहर आना ही सम्भव न था, रास्तो पे नाचने लगी लोक-लाज खो कर! सब मर्यादा, कुल-मर्यादा भूली! . पर मीरा पागल हो गयी है!

कहते हैं, मीरा एक मंदिर में गयी। उस मंदिर में रिवाज था कि कोई स्त्री प्रवेश न कर सकेगी।

बहुत-से मंदिर स्त्रियों के लिए बंद रहे डरपोकों ने बनाये होंगे, कायरों ने बनाये होंगे, व्यभिचारियों ने बनाये होंगे।

उस मंदिर का जो पुजारी था, वह बाल-ब्रह्मचारी था। और दूर-दूर तक उसकी ख्याति थी। ख्याति उसकी यही थी कि स्त्रियों को वह देखता भी नहीं, मंदिर से बाहर निकलता नहीं। मीरा उस द्वार पे पहुँच गयी। कृष्ण का मंदिर था, वह नाचने लगी। वह भीतर प्रवेश करने लगी। उसे रोका गया। पुजारी घबड़ाया हुआ आया। उसने कहा कि सुनो, यहाँ स्त्रियों का प्रवेश नहीं है।

मीरा ने गौर से उस पुजारी को देखा और उसने कहा, 'मैंने तो सोचा था कि एक ही पुरुष है। तो दो हैं पुरुष? तुम भी एक पुरुष हो? मैंने तो कृष्ण को ही जाना कि एक पुरुष है, बाकी तो सब प्रकृति है। पुरुष तो एक ही है, बाकी तो सब गोपियाँ हैं। और कृष्ण के मंदिर में इतने दिन रह के तुम क्या करते रहे? अभी भी तुम पुरुष हो? तुम्हें मेरी 'स्त्री' दिखायी पड़ती है, लेकिन मुझे तुम्हारा 'पुरुष' दिखायी नहीं पड़ता। रास्ता दो!'

उस दिन जैसे किसी ने नींद से जगाया उस पुजारी को! रास्ता दे दिया। आँखें आँसुओं से भर गयीं, पश्चाताप से भर गयीं। यह अब तक का समय व्यर्थ गँवाया! किसको रोक रहा था?

अब मीरा क्या लोक-लाज रखे, उसे कोई पुरुष दिखायी नहीं पड़ता। तो घूँघट सरक गया है, कपड़ों का हिसाब नहीं रहा है, रास्तों पे नाच रही है!

भक्त उन्मत्त हो जाता है – होगा ही।

ऐसा समझो कि छोटी प्याली में सागर समा जाए तो प्याली पागल न होगी तो और क्या होगी? बूँद में सागर उतर आये तो बूँद कहाँ हिसाब रख पाएगी, और बूँदों की दुनिया के नियम कैसे बचेंगे? फिर तो सागर की उन्मत्तता होगी। फिर तो सागर की उन्मत्त लहरें होंगी। फिर बूँद चीखे-चिल्लाये और कहे कि मेरे तो नियम और व्यवस्था थी, वह सब टूटी जा रही है वह टूटेगी ही।

जब भक्त के जीवन में परमात्मा उतरता है, जब भक्त जगह देता है, द्वार देता है, हटता है मार्ग से और परमात्मा को उतरने देता है, तब एक आँधी आती है, तब एक तूफान उठता है, फिर जो कभी जाता नहीं। फिर भक्त किसी

और ही जगत में जीता है। फिर जीता नही अपनी तरफ से, परमात्मा ही उसमें जीता है।

'मुहब्बत मे गिरो पा हो न इतना खौफे-रहजन से
जो इस रस्ते में लुट जाएँ बडी तकदीर वाले हैं।'

लुटेरो मे घबडाओ मत प्रेम के मार्ग पर – लुटेरे सहयोगी हैं।

'जो इस रस्ते में लुट जाएँ बडी तकदीर वाले हैं।'

'हम उसे देखा किये जब तक हमें गफलत रही
पड गया आँखो पे परदा होश आ जाने के बाद।'

'हम उसे देखा किये जब तक हमे गफलत रही'—जब तक हम बेहोश रहे, तब तक उसे देखा किये।

'पड गया आँखो पे परदा होश आ जाने के बाद –' और जैसे ही होश आया, गणित की दुनिया वापस लौटी, आँख पे परदा पड गया।

उन्मत्तता पहला लक्षण है।

'भक्त स्तब्ध हो जाता है।' अवाक्! ठिठक जाता है! अब तक जो गति थी, सब रुक जाती है। अब तक जो जाना था, सब व्यर्थ हो जाता है। अब तक जिसको जीवन पहचाना था, तो वह अचानक मृत्यु जैसा हो जाता है। अब तक जो था, सब गिर जाता है, बिखर जाता है, जैसे ताश के पत्तो का घर बनाया था, या जैसे कागज की नाव मे सागर के पार जाने की आकाँक्षा सँजोयी थी! सब ठिठक जाता है, सब गिर जाता है! अवाक्! श्वास भी जैसे रुक जाए! चुप हो जाता है। बोल खो जाता है। बोली बद हो जाती है। समय लगता है वापस बोली की दुनिया को लौटने में। वापस बोलने की योग्यता जुटाने मे समय लगता है।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, सात दिन तक चुप बैठे रहे, सात दिन तक अवाक्! सब ठहर गया, ठिठक गया! देव घबडा गये। देवताओ मे परेशानी हो गयी कि कही बुद्ध चुप ही न रह जाएँ। जब भी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तभी यह सम्भावना है कि कही वह चुप ही न रह जाए, क्योकि घटना इतनी बडी है। कही बोल सदा के लिए न खो जाए, कही स्तब्धता उसकी जीवन की व्यवस्था न बन जाए! तो कहते हैं, ब्रह्मा और देवता बुद्ध के चरणो मे आये, प्रार्थना की कि आप बोलें। आप कुछ भी बोले। और रुकना खतरनाक है।

सदियो तक हम प्रतीक्षा करते हैं कि कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो तो खबर लाये उस लोक की। देवता भी तरसते हैं, आदमी ही नही।

'अल्लाह! अल्लाह! मजरे बर्के जमाल
देखती है आँख, लब खामोश है।'

आँख तो देखती है, ओठ चुप हो जाते हैं। आँख तो पहचानती है, ओठ बोल नही पाते है।

'है ऐसी ही बात जो चुप हूँ
वर्ना क्या बात कहनी नही आती!'

स्तब्धता!

इसे थोडा समझें।

योगी मौन साधता है, भक्त को मौन आता है। योगी स्तब्ध होने की चेष्टा करता है, भक्त के ऊपर स्तब्धता बरसती है। योगी को जो चेष्टा से मिलता है, भक्त को निश्चेष्ट प्रसादरूप मिलता है। योगी जो उपाय कर-करके पाता है, भक्त सिर्फ प्रेम मे अपने को खो के पा लेता है।

'जिस भक्ति को जान कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध, शात हो जाता है, और आत्माराम हो जाता है।'

आत्माराम शब्द समझने जैसा है।

अब राम और आत्मा मे फासला नही रह जाता, इसलिए एक शब्द बनाया आत्माराम! अब यह कहना ठीक नही कि आत्मा है, अब यह कहना ठीक नही कि राम है, अब कुछ ऐसा है जिसमें दोनो हैं और दोनो अलग नही है, जुदा नही हैं – आत्माराम!

'उनसे मिल कर मै उन्ही में खो गया
और जो कुछ है, वह आगे राज़ है।'

उसके आगे फिर कुछ कहा नही जा सकता। फिर वह रहस्य की बात है, राज़ है।

'वाक्या यह दोनो आलम मे रहेगा यादगार
जिंदगानी मैंने हासिल की है मर जाने के बाद।'

दोनो लोको मे यह बात याद रहेगी।

'वाक्या यह दोनो आलम मे रहेगा यादगार
जिंदगानी मैंने हासिल की है मर जाने के बाद।'

जिन्होंने भी पायी जिंदगी, मर के ही पायी। जो मरने से डरते रहे, वे चूकते ही चले गये।

दो तरह की मौत है एक जो अपने से आती है और एक जो तुम स्वीकार कर लेते हो, जो तुम बुला लेते हो। मौत तो अपने से बहुत बार आयी है और तुम मरे हो, फिर-फिर पैदा हुए हो, जिस दिन तुम मौत को अपने हाथ से स्वीकार कर लोगे, स्वेच्छया, उसी दिन मृत्यु समाधि बन जाती है।

जीसस ने कहा है 'बचाओगे अपने को, मिटा जाओगे। मिटा दो – बचाने का बस एक ही उपाय है।'

'जिंदगानी मैंने हासिल की है मर जाने के बाद !'

जैसे ही तुम मिटे कि परमात्मा हुआ !

मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते है कि हम परमात्मा को कैसे खोजे। मैं कहता हूँ तुम कृपा करके मत खोजना, नही तो परमात्मा बचता ही चला जाएगा। तुम जहाँ-जहाँ जाओगे, उसे न पाओगे। क्योंकि तुम्हारी मौजूदगी ही तुम्हारी आँख पे परदा है। परमात्मा नही छिपा है। यह तो बात ही मत पूछो कि परमात्मा को कहाँ खोजे। इतना ही पूछो कि मेरी आँख पे परदा क्या है कि जो है और दिखायी नही पडता है। तुम छुपे हो अपने ही परदे मे, अपनी ही आड में। परमात्मा कही खो नही गया है। परमात्मा खो नही सकता।

एक छोटे स्कूल मे एक शिक्षक ने बच्चो से पूछा, 'हाथी कहाँ पाये जाते हैं ?' एक छोटी लडकी ने खडे हो के कहा 'हाथी, पहली बात, खोते ही नही। इतने बडे होते हैं, तो खोएँगे कहाँ ? पाने का सवाल नही है।'

परमात्मा कैसे खो जाएगा ? वही सब कुछ है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नही। तुमने कैसे खोया है — यह पूछो। यह मत पूछो कि परमात्मा कैसे खो गया है।

'तजाहुल से मेरे नामोनिशा के पूछने वाले
वही रहता हू मैं अब तक जहाँ ढूंढा नही तूने।'

अपने भीतर भर हम नही ढूँढते। क्योंकि अपने भीतर ढूंढने का एक ही उपाय है अहकार मरे तो तुम अपने भीतर जाओ। अहकार द्वार पे खडा है, अटकाता है। वह तुम्हे भीतर नही जाने देता। अहकार की पर्त पिघले तो तुम अपने भीतर जाओ। 'मैं' मिटे तो तुम जानो कि तुम कौन हो।

'वही रहता हूँ मैं अब तक जहाँ ढूंढा नही तूने !'

जैसे ही तुम छोडते हो 'मैं', छोडते हो 'तू', 'मैं-तू' का जाल और मैं-तू' का भेद मिटता है — एक अभेद की रोशनी, एक अभेद का प्रकाश, जहाँ न कोई सीमा है, न जहाँ कोई अलग-अलग है, जहाँ एक का ही विस्तार है।

हम लहरे हैं उस सागर की। थोडा भीतर झाँके, सागर हमारे भीतर है। हर लहर के भीतर सागर है। लेकिन लहरें बडे अहकार पे चढ गयी है। उन्हें यह बात ही समझ मे नही आती कि अपने भीतर झाँकने से उसका पता चल सकता है, जिससे हम पैदा हुए हैं और जिसमे हम खो जाएँगे।

भक्ति मृत्यु की कला है। भक्ति परमात्मा को खोजने की कला नही है, अपने को खोने की कला है।

मुझे फिर दोहराने दें। भक्ति परमात्मा को खोजने की कला नही, अपने को खोने की कला है। खोजने में तो अहकार बना ही रहता है, खोजने वाला बना रहता है। खोना है अपने को। और जिसने अपने को खोया उसने उसे पाया। अपने

भीतर ही नही फिर, फिर सब तरफ वही मालूम पडता है। फिर हर पत्ती में उसी की हरियाली है। हर हवा के झोके मे उसी की ताजगी है। चाँद-तारो मे वही तुम्हारी तरफ झाँकता है। और तुम्हारे भीतर भी वही चाँद-तारो की तरफ झाँकता है।

एक बार परदा हट --

'सुबह फूटी तो आसमा पे तेरे
रगे रुखसार की फुहार गिरी।
रात छायी तो रू-ए आलम पर
तेरी जुल्फो की आबशार गिरी।'

उसी की जुल्फे हैं रात, ढाँक लेती है गहरे अँधेरे मे तुम्हे। उसी का रग-रूप है! उसी की बहार है! उसी के गीत है! उसी की हरियाली है! उसी का जन्म है, उसी की मृत्यु है! तुमने व्यर्थ ही अपने को बीच मे खडा कर लिया है।

अपने को बीच मे खडा करने के कारण परमात्मा खो गया है। और परमात्मा को तुम जब तक न जान लो, तब तक तुम अपनी ऊँचाई और अपनी गहराई से वचित रहोगे।

परमात्मा यानी तुम्हारी आखिरी ऊँचाई! परमात्मा यानी तुम्हारी आखिरी गहराई! जब तक तुम उसे न जान लो, तब तक तुम अपनी ही ऊचाई और गहराई से वचित रहोगे।

उस मनुष्य से ज्यादा दरिद्र और कोई भी नही जिस मनुष्य के जीवन से परमात्मा का भाव खो गया, जिसके जीवन में परमात्मा की तरफ उठने की आकांक्षा खो गयी है। जो आदमी होने से तृप्त हो गया, उस आदमी से दरिद्र और कोई भी नही।

नीत्से ने कहा है अभागे होगे वे दिन जब आदमी की प्रत्यचा पर परमात्मा की तरफ जाने का तीर न चढेगा।

पर बहुत-से ऐसे लोग है जिनकी प्रत्यचा पर परमात्मा की तरफ जाने वाला तीर कभी भी नही चढता। तब वे छिछले रह जाते है। तब वे उथले रह जाते है। तब उन्हे पता नही चल पाता कि जो गहराई बिलकुल उनके ही पैरो के नीचे छिपी थी, और सदा उपलब्ध थी, बस जरा डूबने की बात थी, और जो ऊँचाई सदा उनके ही सिर पर थी, आसमा की तरह फैली थी, जरा आँखे ऊपर उठाने की बात थी -- वे भूल ही जाते है।

आदमी ही हो जाने से तृप्त मत हो जाना। उससे बडा कोई दुर्भाग्य नही है।

'खयाल जिसमे है, पर तब जमाल का तेरे
उस एक खयाल की रफअत किसी को क्या मालूम!'

और जिसके हृदय मे तेरे सौंदर्य का एक छोटा-सा खयाल भी है, परमात्मा के अनन्त सौंदर्य का थोडा-सा खयाल भी है ।

' खयाल जिसमे है पर तब जमाल का तेरे
उस एक खयाल की रफअत किसी को क्या मालूम !'

उस एक छोटे-से विचार की गहराई किसी को क्या मालूम !

परमात्मा के खयाल की गहराई और ऊँचाई – वही तुम्हारा विस्तार है, वही तुम्हारा विकास है ।

इस सदी की सबसे बडी तकलीफ यही है कि उसके सौंदर्य का बोध खो गया है। और हम लाख उपाय करते है सिद्ध करने के कि वह नही है। और हमे पता नही कि जितना हम सिद्ध कर लेते है कि वह नही है, उतना ही हम अपनी ही ऊँचाइयो और गहराइयो से वंचित हुए जा रहे है।

परमात्मा को भुलाने का अर्थ अपने को भुलाना है । परमात्मा को भूल जाने का अर्थ अपने को भटका लेना है। फिर दिशा खो जाती है। फिर तुम कही पहुँचते मालूम नही पडते। फिर तुम कोल्हू के बैल हो जाते हो, चक्कर लगाते रहते हो।

आँखे खोलो ! थोडा हृदय को अपने से ऊपर जाने की सुविधा दो। काम को प्रेम बनाओ। प्रेम को भक्ति बनने दो।

परमात्मा से पहले तृप्त होना ही मत ।

पीडा होगी बहुत । विरह होगा बहुत। बहुत आंसू पडेगे मार्ग मे । पर घबडाना मत । क्योकि जो मिलने वाला है उसका कोई भी मूल्य नही है। हम कुछ भी करे, जिस दिन मिलेगा उस दिन हम जानेगे, जो हमने किया था वह ना-कुछ था।

तुम्हारे एक-एक आँसू पर हजार-हजार फूल खिलेगे। और तुम्हारी एक-एक पीडा हजार-हजार मदिरो का द्वार बन जाएगी । घबडाना मत । जहाँ भक्तो के पैर पडे, वहाँ काबा बन जाते है।

आज इतना ही ।

दूसरा प्रवचन

दिनांक १२ जनवरी, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना

स्वयं को मिटाने की कला है भक्ति

पहला प्रश्न 'अथातो', 'अब' का मोड-बिन्दु हम सामान्य सासारिक जनो के जीवन मे कब आ पाता है ? कृपा कर समझाएँ।

पहली बात कि सामान्य कोई भी नही है। यदि तुम सामान्य होते तो फिर 'अथातो' का बिन्दु कभी भी न आ पाता।

सामान्य कोई भी नही है, क्योंकि परमात्मा छिपा बैठा है। और परमात्मा से ज्यादा असामान्य क्या होगा ?

असाधारण हो तुम। तुमने समझा होगा, ककड-पत्थर हो। ककड-पत्थर तुम नही हो। ककड-पत्थर हैं ही नही अस्तित्व मे। अस्तित्व केवल हीरो से बना है।

इसलिए पहली तो इस भ्रान्ति को अपने मन मे जगह मत देना कि तुम सामान्य हो। मै यह नही कह रहा हूँ कि अहकार का आरोपित करना। मै यह नही कह रहा हूँ कि अपने को दूसरो से असामान्य समझना। मै यह कह रहा हूँ कि असामान्य होना जगत का स्वभाव है। तुम असामान्य हो, ऐसा नही, यहाँ सभी कुछ असामान्य है। यहाँ सामान्य होने की सुविधा ही नही है।

और इस विरोधाभास को ठीक से समझना क्योकि तुमने अपने को सामान्य समझ रखा है, इसलिए तुम असामान्य होने की बडी चेष्टा करते हो — धन से, पद से, प्रतिष्ठा से।

अहकार की खोज ही यही है कि मान तो लिया है तुमने कि तुम सामान्य हो — और सामान्य होने मे पीडा होती है, चुभता है काँटा मन राजी नही होता — तो तुम असामान्य होने का ढोंग करते हो, जबकि मजा यह है कि तुम असामान्य हो, इसके ढोंग की कोई भी जरूरत नही। इसलिए जिन्होने यह जान लिया कि असामान्य है, वे तो अहकार को छोड ही देते है तत्क्षण। अब जरूरत ही न रही।

ऐसा समझो कि हीरा है, और हीरे ने समझ रखा है कि ककड-पत्थर है ककड-पत्थर समझ रखा है, इसलिए अपने को सजाता है कि हीरा दिखायी पडे। ककड-पत्थर होने को कौन राजी ! है तो हीरा अपने को ककड-पत्थर मान के सजाता है, रग-रोगन करता है कि कोई जान न ले कि मै ककड-पत्थर हूँ। लेकिन

जिस दिन यह पहचान पाएगा कि मैं हीरा था ही, उसी दिन कंकड़ होने की भ्रांति भी मिट जाएगी और स्वयं को सजाने की आकांक्षा भी मिट जाएगी। वह कंकड़-पत्थर की भ्रांति की ही छाया थी। उस दिन विनम्रता का जन्म होता है।

जिस दिन तुम जानते हो कि तुम असामान्य हो, उसी दिन असामान्य होने की दौड़ मिट जाती है, जिस दिन तुम जान लेते हो कि तुम असाधारण हो ... क्योंकि अन्यथा होने का उपाय नहीं।

परमात्मा के हस्ताक्षर हैं तुम पर।
रोएँ-रोएँ पर उसका गीत लिखा है।
रोएँ-रोएँ पर उसके हाथों के चिह्न हैं।
क्योंकि उसने ही तुम्हें बनाया है।
वही तुम्हारी धड़कनों में है।
वही तुम्हारी श्वास में है।

सामान्य तुम नहीं हो। अगर सामान्य होते तो धर्म का फिर कोई उपाय नहीं। फिर 'अथातो' का बिन्दु कभी आएगा ही नहीं। अगर तुम सामान्य ही होते तो कैसे परमात्मा की ज्योति तुममें प्रज्वलित होगी? तब कैसे तुम जागोगे और कैसे तुम बुद्ध बनोगे? असम्भव है फिर।

नहीं, तुम बन पाते हो बुद्ध, तुम जागते हो, तुम समाधिस्थ हो पाते हो—क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है। जब तुम नहीं जानते थे तब भी तुम वही थे। जानने-भर का फर्क पड़ता है, अस्तित्व तो सदा एकरस है। कोई जान लेता है, कोई बिना जाने जिये जाता है। ज्ञान और अज्ञान का ही भेद है। अस्तित्व में जरा भी भेद नहीं है। तुममें और बुद्ध में रत्ती-भर भेद नहीं है, जहां तक अस्तित्व का सम्बंध है। लेकिन बुद्ध ने लौट के अपने को देख लिया, तुमने लौट के अपने को नहीं देखा। तुम भिखारी बने हो, बुद्ध सम्राट हो गये हैं।

जिसने अपने को लौट के देख लिया, वह सम्राट हो गया। सम्राट तो सभी थे कुछ को याद आ गयी, खबर आ गयी, सुराग मिल गया, कुछ को खबर ही न मिली, कुछ भिखारी ही बने हुए सम्राट बनने की चेष्टा में लगे रहे।

तुम जो बनने की चेष्टा कर रहे हो, वह तुम हो। यही तो संदेश है सारे धर्म का।

तुम जिसे खोज रहे हो उसे तुमने कभी खोया नहीं, केवल विस्मरण किया है।

इस पूरे अस्तित्व में मैंने अब तक कोई ऐसी चीज नहीं देखी जो सामान्य हो। घास का पत्ता भी उसी के रंगों से लबालब भरा है! कंकड़-पत्थरों में भी वही सोया है। जागने वालों में वही जागता है, सोने वालों में वही सोता है। बुद्धिमानों में वही बुद्धिमान है, अज्ञानियों में वही अज्ञानी है।

इसलिए सामान्य होने का तो कोई उपाय नही है। जरा गौर से किसी की भी आँखो मे झाँकना, या दर्पण के सामने खडे हो कर अपनी ही आँखो में झाँकना — और तुम पाओगे कि कोई और झाँक रहा है तुम्हारे भीतर मे।

तुम तुमसे ज्यादा हो। तुम तुम पर ही समाप्त नही। तुम तो केवल सीमा हो तुम्हारे अस्तित्व की। अभी गहरे तुम गये ही नही, डुबकी लगायी ही नही।

इसलिए पहली बात — सामान्य मानने की भ्रान्ति मे मत पड जाना। इसलिए तो उपनिषद कहते हैं 'तत्त्वमसि श्वेतकेतु! तू वही है श्वेतकेतु।

जिन्होने जाना, वे घोषणा करते है 'अहं ब्रह्मास्मि! मै वही हूँ! मैं ब्रह्म हूँ!'

ये उद्घोषणाएँ अहकार की नही है। ये उदघोषणाएँ स्वभाव की है। ऐसा है। ऐसा तथ्य है। इसे झुठलाने का कोई उपाय नही है। इसे तुम कितना ही भुलाओ, एक-न-एक दिन तुम्हे लौट कर अपने घर आ ही जाना पडेगा।

तो, यह तो पहली बात — सामान्य मत मान लेना। क्योकि जो तुम मान लिये कि सामान्य हो तो खोज बद हो गयी। तुमने स्वीकार कर लिया कि तुम मात्र मनुष्य हो, कुछ और ज्यादा नही, तो और ज्यादा होने का द्वार बद हो गया, सभावना अवरुद्ध हो गयी।

गगोत्री पर गगा कितनी दीन हीन है! कितनी क्षीणकाय है! बस जरा-सी धार है। गोमुख मे गिर जाती है। अगर गगोत्री पर ही अपने को मान ले कि बस यही हूँ, तो कभी की मर जाएगी, कभी भी खो जाएगी किन्ही भी रेगिस्तानो म। लेकिन गगोत्री पर जो छोटी-सी गगा है, बढती जाती है, बडी होती जाती है, सागर से मिलती है तो सागर हो जाती है।

तुम अभी गगोत्री पर हो सकते हो, लेकिन हो गगा ही। सागर अभी दूर हो ऐसा तुम्हारी नासमझी मे दिखायी पडता है। और जब मै तुममे झाँकता हूँ तो तुम्हारे भविष्य को भी तुम्हारे पीछे ही खडा हुआ पाता हूँ। जब मै तुममे झाँकता हूँ तो तुम्हारे बीज मे मै उन फूलो को खिलते हुए देखता हूँ जिनको तुम कभी खिलते हुए देखोगे।

मेरे लिए तुम परमात्मा हो, उससे कम कोई भी नही। उससे कम कोई हो ही नही सकता। इसलिए सामान्य की भ्राति मे मत पड जाना।

दूसरी बात

'अथातो' का बिन्दु, 'अब' का क्राति-बिन्दु, तभी आता है जब तुम जीवन के दुख और पीडा को सजग हो के भोगने लगते हो।

अभी भी तुमने बहुत पीडा भोगी है, लेकिन सोये-सोये। पीडा तो भोगी है,

लेकिन इस आशा मे कि शायद सुख मिल जाएगा, शायद सुख आता ही होगा! आज दुखी हो, कोई चिंता नही! किसी तरह बिता लो आज को, बस जरा-सी समय की बात है, कल सब ठीक हो जाएगा! थोडी ही देर की पीडा है, कल सब ठीक हो जाएगा! ऐसी आशा मे तुम जिये हो। उसी आशा मे छिप के तुम्हारी पीडा का दर्शन तुम्हे नही हो पाया। तुमने उसे ओट मे छिपा रखा है।

इन परदो को हटाओ।

न कोई कल है, न कोई कल कभी आएगा — बस, आज है, अभी और यही! कल के लिए मत बैठे रहो।

यह 'कल' आज को भुलाने की तरकीब है।

फिर 'कल' के बहुत रूप है।

धन इकट्ठा करनेवाला अभी तो जीवन को गँवाता है, सोचता है 'कल जब धन इकट्ठा हो जाएगा तब भोग लूंगा सारे सुख।'

यश की आकाक्षा मे दौडने वाला सोचता है 'अभी कैसे? अभी तो दाँव पर लगाना है सब। जब यश मिल जाएगा भोग लूगा।'

वह यश कभी नही मिलता। कोई सिकन्दर कभी जीत नही पाता। यश की दौड अधूरी रह जाती है। धन कभी इतना नही हो पाता कि तुम्हारी गरीबी को मिटा दे। इतना हो ही नही पाता। ऐसा कभी हो ही नही सकता कि धन इतना हो जाए कि तुम्हारी गरीबी मिट जाए। क्योकि गरीबी एक दृष्टिकोण है, धन से उसके मिटने न मिटने का कोई सवाल नही, कोई सम्बध नही। जितना धन होगा, उतने ही तुम आगे की आकाक्षा, आशा मे भर जाओगे।

तुम्हारी आशा सदा छलाग लगाती है — तुमसे आगे! वह हमेशा कल पे खडी रहती है। तुम यहा, तुम्हारी आशा सदा कल है। लाख होना है तो दस लाख मागती है। दस लाख होने है तो करोड माँगती है। करोड होने हैं तो दस करोड मागती है। वह सदा तुमसे आगे छलाँग लगा लेती है। तुम उसे कभी भी न पकड पाओगे। उसे पकडने का कोई उपाय नही। लेकिन तुम आज को गँवा दोगे। अभिलाषा को तो कभी तुम पूरा न कर पाओगे, लेकिन आज को गँवा दोगे, जो कि अस्तित्व का सार है।

पीडा है तो पीडा को देखो। पीडा को भोगो, कल से झुठलाओ मत। समझाओ मत। कल के नाम की शामक दवाए ले के सो जाओ मत। आज जागो! पीडा है तो पीडा सही। भोगो उसे। काँटा है तो चुभने दो। क्योकि वही चुभन तुम्हे जगाएगी। उसी पीडा से तुम उठोगे। उसी पीडा में तुम देखोगे कि तुम्हारा जीवन कुछ गलत ढाचे पे दौडता है। अब तक तुमने जो भी किया है, कही बुनियादी भूल हो गयी है। तुमने अब तक जो भी किया है, परमात्मा को छोड कर किया

है, बाद दे कर किया है।) अब तक तुमने जो भी किया है, उसमें परमात्मा की कोई जगह नही है।

कहते हैं, गैलिलिओ ने सृष्टि-शास्त्र पर एक किताब लिखी, और अपने एक मित्र को दिखाने ले गया। मित्र आस्तिक था। उसने पूरी किताब देख ली, उसमें ईश्वर का कही उल्लेख ही न था। सृष्टि-शास्त्र, और स्रष्टा का कोई उल्लेख न था! वैज्ञानिक करते ही नही उल्लेख। उसकी कोई जरूरत नही मालूम होती।

मित्र ने पूछा, 'और सब ठीक है, व्यवस्थित है, तर्कबद्ध है, समझ मे आता है, लेकिन जरा खाली जगह मालूम पडती है। ईश्वर का कोई उल्लेख ही नहीं, एक बार भी नही! इनकार करने के लिए भी नही कि कह देते कि ईश्वर नही है। इतना भी नही। ईश्वर के बिना सृष्टि थोडी अधूरी मालूम पडती है।'

गैलिलिओ ने कहा, 'नही, उसकी कोई जरूरत ही नही। क्योकि उसके बिना ही मैं सब समझा दिया हूँ। उस हाइपोथीसिस की, ईश्वर की परिकल्पना का मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।' कोई चीज़ पूछ तो मुझसे, अगर अनसमझायी रह गयी हो।'

गैलिलिओ ने जैसे सृष्टि शास्त्र की रचना की, ऐसे ही तुमने अपने जीवन को बनाया है, उसमे ईश्वर के लिए कोई जगह नही। उसी खाली जगह मे पीडा का जन्म होता है। परमात्मा का जो मदिर है, अगर खाली रहा तो वही से पीडा का आविर्भाव होता है।

इस थोडा समझने की कोशिश करना।

पीडा तब तक रहेगा जब तक तुम्हारे जीवन मे परमात्मा की ज्योति जलती नहीं। पीडा परमात्मा का अभाव है। जहाँ परमात्मा होना चाहिए और नही है, वही पीडा है।

तो, कब तुम्हारे जीवन मे 'अशान्ता' की क्रांति आएगी? कब तुम कहोगे, 'अब भक्ति की खोज' ?

तुम कहोगे तभी जब तुम पाओगे कि अब तक जीवन की जो सार-सम्पदा समझी थी, वह सिवाय पीडा के निचोड के और कुछ भी नही। जिसे तुमने प्रेम जाना, वह प्रेम न था। जिसे तुमने धन जाना वह धन न था। जिसे तुमने 'स्वयं' जाना वह 'स्वयं' न था। तुम्हारा सारा आधार ही गलत है।

अहंकार को तुमने जाना 'स्वयं'। वह तुम न थे। वह पहचान भ्रांत थी। बाहर के धन को तुमने जाना धन, वह धन न था। जो खो जाए वह धन है? मौत जिसे छीन ले वह धन है?

ज्ञानी तुम्हारी सम्पदा को विपदा कहते है, तुम्हारी सम्पत्ति को विपत्ति कहते है।

सम्पत्ति तो वही है जो मौत भी न छीन पाये। सम्पत्ति तो वही है जो कोई

भी न छीन पाये, जिसकी चोरी न हो सके, जिसे लुटेरे न ले सके। मौत जिसके सामने हार जाए वही सम्पत्ति है।

तुमने सुना होगा मित्र तो वही है जो विपत्ति में काम आ जाए। वह सम्पत्ति की परिभाषा है। सम्पत्ति तो वही है जो विपत्ति में काम आ जाए। और मौत से बड़ी विपत्ति कहाँ है! वही कसौटी है। मौत के द्वार से भी जो चली जाए, नाचती हुई, वही सम्पत्ति है।

जिसे तुमने धन समझा वह धन नहीं है, वह भीतर की निर्धनता को भुलाने का उपाय है।

जिसे तुमने अहंकार समझा वह तुम नहीं हो, वह अपने-आप को ढाँक लेने की तरकीब है, अपने अज्ञान को झुठला देने की तरकीब है।

जिसको तुमने पद समझा वह तुम नहीं हो। जिसको तुमने पद समझा वह तुम्हें तृप्ति न देगा तुम और और अतृप्त होते चले जाओगे।

पद तो वही है जहाँ विश्राम आ जाए। पद का अर्थ ही होता है जिस पे विश्राम आ जाए, जिस जगह बैठ के विश्राम आ जाए, राहत मिले, जिस जगह बैठ कर यात्रा समाप्त हो जाए, पैरों को चलने की अब और जरूरत न रह जाए।

जहाँ पद अनावश्यक हो जाएँ वही जगह पद है, वहाँ पहुँच गये अब कोई जरूरत नहीं कहीं जाने की।

लेकिन ऐसा कोई पद तुमने बाहर जाना है जहाँ पहुँच के जाने की यात्रा समाप्त हो जाए? बाहर ऐसा कोई भी पद नहीं है। सारे संसार को जीतने वाले सम्राट भी आकांक्षा में वैसे ही विह्वल होते हैं जैसे सड़क के किनारे पड़ा हुआ भिखारी। जरा भी भेद नहीं है।

मैंने सुना है, जापान का एक सम्राट रात को घोड़े पर सवार हो कर अपनी राजधानी में चक्कर लगाता था रोज। अनेक बार उसने एक फकीर को देखा, अनेक बार! रात के किसी भी पहर में वह गया, उसने उसे सदा जागते हुए देखा, वृक्ष के नीचे कभी खड़ा, कभी बैठा, लेकिन सदा जागा हुआ।

सम्राट की उत्सुकता बढ़ी कि वह सोता क्यों नहीं! पूछा एक दिन, न रुक सका। पूछा कि उत्सुकता है, उचित तो नहीं, क्योंकि तुम्हारा काम है, तुम जागो-सोओ मेरा क्या लेना-देना, लेकिन रोज यहाँ से निकलता हूं तो मन में जिज्ञासा घनी होती चली गयी है क्यों जागते हो?

तो उस फकीर ने कहा, 'कुछ सम्हाल रहा हूँ। कुछ मिल गया है, उसकी रक्षा कर रहा हूं।'

सम्राट ने चारों तरफ देखा फकीर के, वहाँ तो कुछ भी नहीं है, एक भिक्षा-पात्र पड़ा है टूटा-फूटा, कुछ चीथड़े कपड़े पड़े हैं। फकीर हँसने लगा, उसने कहा,

'वहाँ मत देखो, मेरे भीतर देखो। जो मिला है वह भीतर है, वह खो न जाए! जागने में ही उसकी रक्षा है। सोने में उसका खो जाना है। मूर्च्छा में फिर भूल जाऊँगा। होश रखना है!'

सम्राट ने कहा, 'मुझे तो कुछ दिखायी नही पडता।'

सम्राट की अपनी भाषा है, जो बाहर है, वही उसकी भाषा है। फकीर की अपनी भाषा है, जो भीतर है, वही उसका जगत है। वे अलग यात्रा पर है।

सम्राट ने कहा, 'तो किसी सम्पत्ति की रक्षा कर रहे हो? तो फिर मुझमें और तुममे फर्क क्या है?'

फकीर ने कहा, 'फर्क ज्यादा नही है, थोडा ही है—फिर भी है। फर्क इतना है कि तुम बाहर से अमीर हो, मैं बाहर से गरीब हूँ, मै भीतर से अमीर हूँ, तुम भीतर से गरीब हो। फर्क इतना ही है। मैं भी गरीब हूँ, मै भी अमीर हूँ, तुम भी गरीब हो, तुम भी अमीर हो—इसलिए ज्यादा फर्क नही कह सकता, लेकिन तुम बाहर से अमीर हो, मैं भीतर से अमीर हूँ। मौत बताएगी। मौत ही कसौटी होगी।'

अगर तुम जीवन मे झाँको अपने और बचते न रहो अपने मे जैसा मै देखता हूँ, तुम बचते हो, तुम तरकीबे निकालते हो किसी तरह अपने से बचने की, किसी तरह अपने से मुलाकात न हो जाए। हजार ढग करते हो कभी शराब पीते हो, कभी सिनेमा जाते हो, कभी भजन-कीर्तन भी करते हो—मगर अपने को भुलाने को। कही भी डूब जाओ, किसी तरह अपनी याद न आये! इसलिए तुम्हारा भजन-कीर्तन भी झूठा है, वह भी शराब है। भजन-कीर्तन तो तभी सच है, जब वह अपने को याद लाने का आधार बने, जगाये तुम्हे, सुलाये न।

जिस दिन तुम जीवन की पीडा को देखोगे, आँख भर के साक्षात करोगे अपना—और दुख ही दुख पाओगे ।

मेरे पास लोग आते है, वे कहते हैं कि 'नरक है?' मै उनसे कहता हूँ, 'हद हो गयी! वही रहते हो! मुझसे पूछने आते हो?'

वे सोचते है कि नरक कही पृथ्वी के नीचे पाताल मे दबा है। किन्ही पागलो ने सोचा होगा। किन्ही नासमझो ने कही होगी यह बात तुमसे।

नर्क तो जीवन को अँधेरे में जीने का ढग है। वह तो एक दृष्टिकोण है। वह तो एक शैली है। स्थान से उसका कुछ लेना-देना नही है।

स्वर्ग भी जीवन की एक शैली है। वह तुम पे निर्भर है। जाग कर जियो तो जहाँ हो वहाँ स्वर्ग! सोये-सोये जियो तो जहाँ हो, वहाँ नरक।

नीद से पैदा होता है नरक।

जरा विचारो, देखो—और तुम पाओगे, सब तरफ तुम नरक से घिरे हो।

और नरक की जरूरत है क्या ? इतना नरक काफी नही कि तुम और नरक की कल्पनाएँ करते हो पाताल मे ?

जिस दिन तुम्हे जीवन का नरक दिखायी पडेगा, उसी दिन ' अथातो ' का बिन्दु आ गया, उसी दिन तुम कहोगे, ' अब बस हुआ, अब रुकना है ', पैर ठिठक जाएँगे ।

जैसे ही तुम ठिठकते हो इस ससार की दौड मे, वैसे ही क्राति घटित हो जाती है एक नया आकाश, जिसका कही छोर नही, जिसका कही प्रारम्भ और अत नही, तुम्हे उपलब्ध हो जाता है !

अभी तुम जीते हो बडी सकीर्ण गली मे रोज सकरी होती जाती है, रोज सकरी होती जाती है, रोज-रोज तुम बँधते जाते हो, रोज-रोज जजीरें जकडती जाती हैं।

तुम्हारा जीवन ऐसा है जैसे तुम अपना ही कारागृह निर्मित करने मे लगे हो। चाहे तुम कारागृह को घर कहो, मदिर कहो, तुम्हारे नामो से कोई धोखे मे आने वाला नही है । बीमारियो को तुम अच्छे सुन्दर नाम दे दो, इससे बीमारियो का दश जाता नही ।

जाग कर पहचानो, देखो !

जिस दिन तुम्हे पीडा दिख जाएगी, वही पैर ठिठक जाएँगे – लौट पडोगे तुम !

वह जो लौटना है, उसको महावीर ने प्रतिक्रमण कहा अपनी तरफ आना ! उसको पतजलि ने प्रत्याहार कहा अपनी तरफ आना ! उसको जीसस ने कनवर्सन कहा है क्राति, रूपान्तरण !

अभी तुम्हारे जीवन का ढग कामवासना है, जब तुम ठिठक जाओगे, तब तुम्हारे जीवन का ढग प्रेम होगा, जब तुम लौट पडोगे, तब भक्ति । अभी जहाँ जा रहे हो वहाँ काम की खोज है, वासना की खोज है ।

कामना ही ससार है ।

ससार तुमसे कही बाहर नही है। मदिर, मस्जिद मे छिप के तुम ससार से न बच सकोगे, हिमालय की गुफाओ मे बैठ के भी तुम ससार से न बच सकोगे – क्योकि ससार तुम्हारी कामना मे है ! वहाँ भी बैठ के तुम कामना ही करोगे ।

लोग परमात्मा के सामने बैठ के भी माँगे चले जाते है । माँग रुकती ही नही । मदिर मे खडे हैं, लेकिन राम के उन्मुख नही होते । मूर्ति होगी सामने, लेकिन वहाँ भी माँगे चले जाते है।

एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि ' अब मुझे भरोसा आ गया। लडके को नौकरी न मिलती थी। परमात्मा से प्रार्थना की और तीन सप्ताह का

समय दे दिया कि अगर तीन सप्ताह में मिल गयी तो सदा के लिए भरोसा हो जाएगा, अगर न मिली तो बात खत्म, फिर तुम नहीं हो!' और उस आदमी ने कहा, 'मिल गयी। अब तो रोज पूजा करता हूँ, प्रार्थना भी करता हूँ। इसलिए आपके पास आया हूँ।'

मैंने कहा, 'संयोग से मिल गयी होगी। क्योंकि परमात्मा तुम्हारी धमकी से डर जाए कि तीन सप्ताह बस, तुम्हारा अल्टीमेटम! – तो तुम पागल हुए हो! और यह बड़ा खतरनाक विश्वास है जो तुमने पैदा किया है, यह किसी भी दिन टूटेगा।'

मैंने कहा, 'एक बार और कोशिश करो।'

उसने कहा, 'क्या मतलब?'

मैंने कहा, 'एकाध और कोशिश करो। तुम्हारी पत्नी बीमार रहती है । जब कुंजी ही मिल गयी तो पत्नी को भी ठीक कर लो।'

उसने कहा, 'ठीक कहा आपने।'

कल ही वह गया। दे आया अल्टीमेटम फिर। तीन सप्ताह बाद आया, बहुत उदास था। उसने कहा, 'खराब कर दिया आपने सब। कुछ फायदा नहीं हुआ, तबीयत और खराब हो गयी। भरोसा डगमगा गया मेरा।'

तुम्हारा भरोसा भी तुम्हारी माँग पर ही खड़ा है परमात्मा कुछ दे तो परमात्मा है! परमात्मा तुम्हारा अनुसरण करे तो परमात्मा है! तुम जो माँगो, पूरा करे तो परमात्मा है! परमात्मा तुम्हारी सेवा में रत रहे तो परमात्मा है! परमात्मा मालिक नहीं है, मालिक तुम हो! और अगर उसे तुम्हारी पूजा-प्रार्थना चाहनी हो तो बदले में सेवा करता रहे तुम्हारी!

तुम्हारी प्रार्थना भी झूठी है, वह भी कामना है, वहाँ भी संसार ही है।

जब तक तुम बाहर कुछ माँग रहे हो, जब तक तुम सोचते हो बाहर कुछ मिल जाएगा, जिससे तृप्ति होगी, जिससे मन चैन से भर जाएगा, राहत की साँस आएगी, आनंद के क्षण उठेंगे – अगर बाहर तुम ऐसा माँगते चले जा रहे हो, तो अभी तुम नरक से बाहर नहीं जा सकते।

बाहर जाना नरक में जाना है। बाहर जाती हुई चेतना नरक के बाहर नहीं जा सकती।

ठिठकता है कोई देख कर जीवन की व्यर्थता, जीवन का असार, निष्फलता हाथ में सिवाय पीड़ा के और कोई संग्रह नहीं, हृदय में सिवाय आँसुओं के और कुछ दिखायी नहीं पड़ता, जीवन बिलकुल अंधकारपूर्ण है, नाव डूबी, अब डूबी तब डूबी जैसी हालत है – ऐसे क्षण में जब कोई ठिठक जाता है, उस ठिठकने के क्षण में प्रेम का आविर्भाव होता है, कामना गयी! अब तुम माँगते नहीं, अब तुम देने को उत्सुक हो जाते हो।

प्रेम देता है, काम माँगता है। जब तक माँग है तब तक समझना, काम, जब देना शुरू हो जाए तब प्रेम।

क्योंकि तुम माँगते इसलिए हो कि माँगने से बढ़ेगी सम्पत्ति और सुख आयेगा। ठिठका हुआ व्यक्ति देना शुरू करता है 'माँग के देख लिया, सुख न आया, दुख आया, अब जरा उलटा करके देख लें।' देना शुरू करता है और पाता है कि सुख के हलके झोंके आने लगे, बजने लगी वीणा, कहीं दूर यद्यपि, बहुत दूर यद्यपि – पर बजने लगी, स्वर सुनायी पड़ने लगे कोई नया लोक शुरू हुआ।

यह तो ठिठके हुए आदमी की बात है। वह देने लगता है, बाँटने लगता है – और जैसे-जैसे बाँटता है, वैसे वैसे स्वर साफ होते है और तब चौंक के उसे पता चलता है 'ये स्वर मेरे ही भीतर से आते है! अब तक सोचा था सुगंध बाहर है, यह मेरे भीतर से आती है! कस्तूरी कुंडल बसै! यह मेरे ही नाफे में बसी है।' तब लौटना शुरू होता है। 'अथातो!' आ गया बिन्दु 'अब'! और तभी तुम नारद के इन भक्ति-सूत्रों को समझ पाओगे। इसके पहले, जो बाहर जा रहा है, उसके लिए ये नही है। जो ठिठका है उसके लिए भी ये नही हैं। जो लौट पड़ा है उसके लिए ये है। यह पहली बात है।

दूसरी बात

जब तक तुम सोचते हो कि तुम ही अपने सुख को ले आओगे, तब तक 'अथातो' का बिन्दु नही आता। तुम न ला पाओगे अपने सुख को, तुम ही तो सारा दुख ले आये हो। यह तुम्हारे ही उपक्रम का फल है। यह तुम्हारे ही श्रम की निष्पत्ति है। पुरानी भाषा मे कहे तो कहते है, यह तुम्हारे ही कर्मो का फल है। यह पुरानी भाषा है, बात यही है। यह तुमने ही किया है। यह जो दुख तुम्हे घेरे है, यह तुमने ही आमंत्रण दिया था। ये मेहमान बिन बुलाये नही आ गये है, तुमने निमंत्रण भेजे थे। तुमने बड़ा आग्रह किया था कि आओ। यद्यपि तुमने कुछ और सोच कर बुलाया था। तुम्हारे समझने मे भूल थी। बुलाये थे मित्र, आ गये है शत्रु। बुलाया था सुख, आ गया है दुख। आग्रह किया था फूलो के लिए, आ गये है काँटे – क्योंकि काँटे दूर से फूल जैसे दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि शत्रु दूर से मित्र जैसे दिखायी पड़ते है।

एक छोटा बच्चा अपने साथियों के साथ यात्रा पर गया था। वहाँ से उसने पत्र लिखा अपनी माँ को कि 'पहले दिन सब अपरिचित थे, मैं किसी को जानता न था। दूसरे दिन, सभी मित्र हो गये, क्योंकि पहचान हो गयी। तीसरे दिन सभी शत्रु हो गये!'

यह तीन दिन की कथा पूरी जिंदगी की कथा है। पहले दिन जब तुम देखते हो आँख खोल कर कोई परिचित नही, अनजान जगत है, अपरिचित लोगो से

घिरा हुआ है सब, अजनबी और अजनबी! फिर सभी मित्र मालूम होते हैं। फिर शत्रुता शुरू हो जाती है। दूर से जो मित्र मालूम पड़ता है, जैसे-जैसे पास आते हैं वैसे-वैसे शत्रुता शुरू हो जाती है। दूर के ढोल हैं बड़े सुहावने, पास आने पर बिलकुल व्यर्थ हो जाते हैं।

तुमने ही निमंत्रण दिये थे, हो सकता है किन्हीं पिछले जन्मों में दिये हों, अब तुम बिलकुल भूल ही गये होओ, लेकिन तुमने ही बुलाया था। जो तुम्हारे पास आ गया है वह तुम्हारा कृत्य है। और तुम्हारे कृत्य में यह दुख बढ़ता जाएगा, पर्त-दर-पर्त तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठा होता जाएगा। यह तुम्हारे गले को घोंट रहा है।

तुम्हारे किये दुख होता है। जब तुम ठिठकोगे, तब तुम अचानक पाओगे 'करने की कोई जरूरत ही नहीं।' सब अनकिये, तुम्हारे बिन किये हो रहा है।

प्रेम के क्षण में जीवन स्वःस्फूर्त मालूम होता है: सब अपने-आप हो रहा है। पैदा होना, जवान होना, बूढ़े हो जाना, जन्म मौत: सब अपने-आप हो रहा है।

लेकिन जब तुम लौटोगे, भक्ति का आयाम शुरू होगा, तब तुम पाओगे कि अपने-आप नहीं हो रहा है। तुम करने वाले नहीं हो, अपने-आप भी नहीं हो रहा है। जीवन के रोए-रोए में छिपा है कोई प्रयोजन। जीवन के कण-कण में छिपी है कोई नियति, कहीं छिपा है कोई परमात्मा! उससे हो रहा है।

कामवासना में लगा आदमी अपने पे भरोसा करता है। प्रेम में खड़े आदमी का अपने पे भरोसा डगमगा जाता है। भक्ति में जाते व्यक्ति का भरोसा अपने से बिलकुल ही शून्य हो जाता है, परमात्मा पर हो जाता है।

सुना है मैंने जोश की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं:

'खुदा का सौंप दो ए 'जोश' पुश्तारा गुनाहों का
चलोगे अपने सर पे रख के यह बारे गरां कब तक!'

— यह भारी बोझ अपने सिर पे रख कर कब तक चलोगे? दे दो परमात्मा को। तुम नाहक ही परेशान हो!

मैंने सुना है, एक आदमी को, उसकी पचहत्तरवीं वर्ष-गाँठ थी, तो मित्रों ने कहा, 'कुछ नया अनुभव तुम्हारे लिए ...? तो ऐसी कोई चीज तुमने जीवन में न की हो ...?' उसने कहा, 'हवाई जहाज में कभी नहीं बैठा।' तो उन्होंने कहा, 'चलो।' उसे हवाई जहाज में बिठला के आधा घंटा शहर का चक्कर लगवाया। आधे घंटे बाद जब वह उतरा, तो जो पायलट उसे उड़ा रहा था, उसने पूछा, 'आप प्रसन्न तो हैं? परेशान तो नहीं हुए? क्योंकि पहली ही उड़ान थी।' उसने कहा, 'नहीं, परेशान तो नहीं हुआ, पर डर के कारण मैंने अपना पूरा वजन जहाज

पे नही रखा। डर के मारे अपना पूरा वजन जहाज पे नही रखा कि कही वजन के कारण कोई उपद्रव न हो जाए।'

अब हवाई जहाज मे तुम बैठो, वजन पूरा रखो या न रखो, वजन पूरा हवाई जहाज पर है।

सुना है मैंने, एक सम्राट अपने रथ से लौटता था, जगत से महल की तरफ, एक गरीब आदमी को उसने राह पर बडा बोझ ढोते हुए देखा। दया आ गयी। कहा, 'आ, बैठ जा तू भी रथ मे। कहाँ तुझे उतरना है, छोड देंगे।' वह बैठ तो गया रथ मे, लेकिन पोटली उसने सिर की सिर पे ही रखी रही। सम्राट ने कहा, 'पोटली नीचे क्यो नही रख देता?' उसने कहा, 'इतनी ही आपकी कृपा क्या कम है कि मुझे बिठा लिया! अब पोटली का वजन भी आप पर छोडूँ? नही नही, यह मुझसे न होगा।'

लेकिन इससे क्या फर्क पडता है कि तुम रथ मे बैठ के पोटली नीचे रखो रथ पर या सिर पे रखो, वजन तो रथ पर ही है।

जो जरा-से लौटते हैं अपनी तरफ, उनको पता चलता है कि हम नाहक ही परेशान थे, करनेवाला कर रहा था, जो होने वाला था हो रहा था, हम व्यर्थ ही बीच मे उछल-कूद कर रहे थे!

तब तुम समझना कि अब तुम्हारी भक्ति की शुरुआत हुई।

भक्ति की शुरुआत का अर्थ है कि न मै करने वाला हूँ, न मै कर सकता हूँ — मै हूँ ही नही, वही है! और तब तुम्हारे मन मे उसके प्रति अनन्य प्रेम का जन्म होता है।

तुम्हारा सारा बोझ वही ढो रहा है।

और तब तो भक्त ऐसी घडी मे आ जाता है कि वह जानता है कि भक्ति भी करने का सवाल नही, प्रार्थना भी मेरे किये न होगी। वही प्रार्थना करेगा, मुझसे तो होगी। अब तो उसकी तरफ जाना मुझसे न होगा, वही चलेगा मेरे पैरो से तो ही पहुँच पाऊँगा।

'उठता नहीं है अब तो कदम मुझ गरीब का
मंजिल को कह दो, दौड के ले मुझको राह मे।'

धीरे धीरे उसे अपनी असहाय अवस्था का बोध होता है कि मै तो कुछ भी नही हूँ। अब तो मुझ गरीब का पैर भी नही उठता! वही उठाये तो उठता है। और अब भय भी क्या, डर भी क्या! अगर उसे पहुँचाना ही है तो मंजिल खुद ही आ के बीच राह मे मुझे ले लेगी।

इसलिए भक्त किनारे को नही माँगता। वह तो कहता है, 'तू अगर मँझधार मे भी डुबा दे तो वही किनारा है।' उसने अपना सारा बोझ उसी को दे दिया।

कृष्ण ने गीता मे अर्जुन को बस इतनी ही बात समझायी है कि तू सारा बोझ परमात्मा पे छोड दे। तू आराम से बैठ हवाई जहाज में, नाहक अपने बोझ को मत उठाये रख। रथ मे बैठ ही गया है, सिर की पोटली भी नीचे रख दे। निमित्त-मात्र हो जा!

दूसरा प्रश्न कल का एक सूत्र था कि भक्ति उसके प्रति प्रेमरूपा है। कृपया समझाएँ कि भक्ति की यात्रा और सद्गुरु के बीच कैसा सम्बध है।

गुरु का अर्थ है सोये हुओ मे जागा हुआ व्यक्ति, अंधो मे आँख वाला। बस इतना ही। तुम्हें जो स्मरण नही आ रहा है, उसे स्मरण आ गया है। तुम जिसे पीठ की तरफ छिपाये हो, वह उसके आमने-सामने खडा हो गया है। उसने अपनी आँखो मे झाँक लिया, उसने अपने हृदय मे टटोल लिया – और उसने परमात्मा को छिपे वहाँ पाया है।

गुरु का अर्थ है जो मिट गया और अब केवल परमात्मा है वहा।

परमात्मा तुम्हारे लिए बडी दूर का शब्द है। अनत फासला मालूम होता है। तुम्हारी नींद मे और परमात्मा मे अनत फासला मालूम होता है। होगा ही, क्योकि परमात्मा जागे हुए चैतन्य का अनुभव है। इसलिए तो तुम मानते हो तो भी मान नही पाते। कहते हो, मानते हो, फिर भी भीतर सदेह खडा रहता है। लाख दबाते हो, छिपाते हो, मगर तुम जानते हो कि कही तो सदेह है 'परमात्मा हो सकता है!'

मैंने सुना है कि एक आदमी की कार बिगड गयी थी। चाक एक बाहर आ गया था। और वह बडी गालियाँ बक रहा था क्रोध मे था। और गालिया तुम्हें सीखनी हो तो ड्राइवरो से सीखो, और कोई उतना कुशल नही। अकेला था। बीच जगल मे गाडी बिगड गयी है और वह गालियाँ दे रहा है, दिल भर के गालियाँ दे रहा है। एक दूसरी कार आ के रुकी। एक पादरी, एक ईसाई पुरोहित उसमें था, वह उतरा। उसने देखा कि इतनी गालिया बक रहा है – और गालियाँ साधारण नहीं, परमात्मा तक को दे रहा है! तो उसने कहा, 'रुक भाई, यह उचित नही है। परमात्मा पे भरोसा कर। सब हो जाता है।'

उस आदमी ने कहा, 'कैसे सब हो जाता है? क्या यह चाक लग जाएगा जा के?'

पादरी थोडा डरा, पर अब लौट भी नही सकता था अपनी बात से, तो उसने कहा, 'क्यो नही लग जाएगा? भरोसा हो तो सब हो जाता है।'

तो उसने कहा, 'तुम ही प्रार्थना करो।'

अब पादरी और भी मुश्किल में पडा, क्योकि वह भी जानता है कि 'परमात्मा है कहाँ? इतना सोचा था कि बात आगे बढ जाएगी। अब यह

आदमी सामने खडा है और अब पीछे लौटना भी कायरता मालूम होती है। उसने सोचा कि एक कोशिश करने मे क्या हर्ज है, यहा कोई और है भी नहीं इस जगल मे देखने वाला, पराजय भी होगी तो बस इस एक आदमी के सामने। तो उसने प्रार्थना की — और हैरानी की बात चाक उचका और गाडी में लग गया! तो उस पादरी ने आँख खोली, उस चाक का उचकने देखा तो वह चिल्लाया, 'हे भगवान, क्या तुम सच मे हो?'

जिदगी-भर वह लोगो को परमात्मा के सम्बध मे समझा रहा था, और भरोसा नही है! धधा है व्यवसाय है। तो कोई पूजा का व्यवसाय करता है, कोई परमात्मा का व्यवसाय करता है। भरोसा किसी को नही है।

आस्तिक मे आस्तिक, जिसको तुम कहते हो, वह भी भीतर सदेह को लिये बैठा है। इसलिए आस्तिक डरता है कि नास्तिक की बात कही कान मे न पड जाए। असली आस्तिक डरेगा? शास्त्रो मे लिखा है 'नास्तिको की बात मत सुनना।' ये शास्त्र आस्तिको ने न लिखे होगे — ये उन्होने लिखे होगे जिनके हृदय मे सदेह का कीडा अभी भी है। अन्यथा डर क्या है? अगर तुम्हारे भीतर आस्था परिपूर्ण है, अगर तुम्हारा सदेह सच मे ही समाप्त हो गया है जल गया है, तो नास्तिक की बात सुनने मे भय क्या है? जरूर सुनना। शायद तुम्हारे शात मौन श्रवण को अनुभव करके नास्तिक के जीवन मे कोई फर्क हो जाए। तुम्हारे जीवन मे तो कोई अन्तर पडने वाला नही, शायद तुम्हारे ईश्वर की अनन्य आस्था नास्तिक को भी सक्रामक हो जाए! आ जाने देना पास।

लेकिन आस्तिक डरते है, भयभीत होते है। डर अपने ही सन्देह का है, कोई और तुम्हे डरा नही सकता।

तुम भयभीत हो, डरे हुए हो। तुम्हे पता है कि अगर बाहर मे कोई सदेह की बात करे तो तुम्हारे भीतर का सदेह, जो सो गया है, जग जाएगा, छिपा है, प्रगट हो जाएगा, बाहर का सदेह तुम्हारे भीतर के सदेह को पुकार दे देगा प्रतिसवेदना शुरू हो जाएगी, तुम भीतर कंपने लगोगे।

परमात्मा दूर है बहुत तुम्हारे लिए, नीद मे बडा दूर है! वस्तुत दूर नही है, तुम्हारी नीद का ही फासला है। परमात्मा के लिए तुम दूर नही हो, तुम्हारे लिए परमात्मा दूर है — इसे ध्यान रखना।

जैसे तुम सोये हो, सूरज निकल आया, सूरज की किरणे तुम्हारे ऊपर बरस रही है, लेकिन तुम सोये हो सूरज के लिए तुम दूर नही हो, तुम्हारे ऊपर बरस रहा है, तुम्हारे रोएँ-रोएँ को जगाने की चेष्टा कर रहा है, लेकिन तुम गहरी नीद में हो, तुम्हारे लिए सूरज तो बहुत दूर है, पता ही नही कि है भी या नही। तुम तो गहन अधकार मे खोये हो।

ऐसी घडियो मे जब परमात्मा बहुत दूर मालूम पडता है, सद्गुरु उपयोगी हो सकता है क्योकि सद्गुरु तुम जैसा है, तुम्हारे पास है, मनुष्य जैसा मनुष्य है, हड्डी-मांस-मज्जा का है – और फिर भी तुमसे कुछ ज्यादा है, और फिर भी तुमने जो नही जाना उसने जाना है, तुम जो कल होओगे उसकी वह खबर है। वह तुम्हारा भविष्य है। वह तुम्हारी सम्भावनाओं का द्वार है।

परमात्मा बहुत दूर है, गुरु बहुत पास है। इसलिए परमात्मा के पास गुरु के बिना शायद ही कभी कोई पहुंच पाता है। गुरु ऐसा झरोखा है जिससे दूर के आकाश को तुम देख पाओगे। झरोखा पास है।

कमरे मे तुम बैठे हो, तुमसे मै आकाश की बाते करू और आकाश के अनत सौदर्य की चर्चा करूँ – व्यर्थ है। तुमसे सूरज की किरणो की कहानी कहू – व्यर्थ है। तुमसे फूलो की वार्ता करू – व्यर्थ है। लेकिन एक झरोखा खोल दूं, एक खिडकी खोल दूं जो बद थी – तुम अपनी ही जगह हो तुममे कोई फर्क नही हुआ, तुम उठे भी नही जगह से, बस तुम अपनी ही कोच पर आराम कर रहे हो, तुमने कुछ भी फर्क न किया – लेकिन एक झरोखा खुल गया दूर का आकाश अब उतना दूर नही! एक कोना आकाश का दिखायी पडने लगा – और कोने को जिसने पकड लिया वह पूरे को पकड ही लेगा। थोडी फूलो की गध भी भीतर आने लगी। थोडी-सी किरणे भी आ गयी और नाचने लगी फर्श पर। तुम वही के वही बैठे हो, तुममे कोई फर्क नही हुआ, लेकिन एक झरोखा तुम्हारे पास खुल गया!

गुरु एक झरोखा है। तुम वही हो, लेकिन गुरु के पास होते ही उस झरोखे से तुम बडे आकाश को, विराट आकाश को झॉक पाओगे।

गुरु जैसे बूंद है, लेकिन बूंद का स्वाद तो वही है जो सागर का है वैसा ही नमकीन!

बुद्ध कहा करते थे कि बूंद चख लो एक सागर की, तुमने सारा सागर चख लिया।

गुरु एक बूंद है, लेकिन ऐसी बूंद जिसने पहचान लिया अपने भीतर छिपे सागर को। तुम भी बूंद हो, लेकिन ऐसी बूद जिसे अपने छिपे सागर की कोई खबर नही। बूंद और बूंद की थोडी बात हो सकती है। ऐसे तो गुरु और शिष्य के बीच भी वार्ता बहुत मुश्किल है, तो खोजी और परमात्मा के बीच तो वार्ता असम्भव है।

गुरु पर रुकना नही है, गुरु मे गुजर जाना है। गुरु तो द्वार है, उससे तो पार हो जाना है। इसलिए सद्गुरु और गुरु मे यही फर्क है।

सद्गुरु का अर्थ है जो तुम्हे परमात्मा की तरफ ले जाए, इतना ही नही जो तुम्हे तुमसे मुक्त करे और जो तुम्हे अपने से भी मुक्त करे।

वही गुरु सद्गुरु है जो तुम्हे अपने से भी मुक्त होना सिखाये, नही तो आखीर

मे गुरु पकड जाएगा। कही ऐसा न हो कि कोच से तो तुम उठ जाओ और खिडकी के चौखटे को पकड लो। तब तुम चूक गये। तो जो तुम्हे अपने को पकडने की चेष्टा मे लगा हो उससे सावधान रहना।

गुरु पहले तुमसे तुम्हारा समार, तुम्हारे गलत दृष्टिकोण छीन लेगा। और जब वे छिन गये, ता आखिरी चीज जो वह छीनेगा, वह स्वय को तुमसे छीन लेगा, ताकि तुम खुले आकाश मे प्रवेश पा जाओ।

और असली सवाल झुकने की कला सीखने का है। गुरु के पास तुम झुकने की कला सीख लोगे। जिस दिन तुम्हे झुकना आ गया, बस सब आ गया। असली सवाल मिटने की कला सीखने का है। गुरु के पास तुम मिटना सीख लोगे। जिस दिन मिटना आ गया, सब आ गया।

'कुछ जज्बए सादिक हो, कुछ इखलासा-इरादत
इससे हमे क्या बहस वह बुत है कि खुदा है।'

'कुछ जज्बए सादिक हो' – कुछ सत्य भावना हो, कुछ प्रेम का आविर्भाव हो, 'कुछ इखलासो-इरादत – कुछ हमारे इरादो मे, हमारी भावनाओ मे, प्रेम के अकुर का अकुरण हो, 'इससे हमे क्या बहस, वह बुत है कि खुदा है' – वह पत्थर की मूर्ति हो कि परमात्मा हो, इससे क्या बहस! – थोडा प्रेम करना आ जाए, थोडा स्वाद लग जाए अनत का, थोडी भावना की पवित्रता आ जाए, थोडी झुकने की कला समझ मे आ जाए।

बहस नासमझ करते है। समझदार समय का उपयोग कर लेते है और जीवन की कोई गहराई सीख लेते है।

यही फर्क है विद्यार्थी और शिष्य में।

विद्यार्थी बहस मे उत्सुक है, शिष्य जीवन को बदलने मे। विद्यार्थी कुछ ज्ञान की सूचनाए इकट्ठी करने चला आया है, शिष्य अस्तित्व को बदलने आया है। विद्यार्थी दाँव पर कुछ भी नही लगाता। विद्यार्थी तो सिर्फ स्मृति का निखार कर रहा है। शिष्य जीवन को दाँव पर लगाता है, सब कुछ खोना हो तो भी तैयारी दिखलाता है। क्योकि जब तक तुम सब खोने को तैयार न हो जाओ तब तक तुम सब को पाने के मालिक न हो सकोगे। जिसने सब खोया उसने सब पाया।

तो, गुरु के पास तो बारहखडी सीखनी है, अल्फाबेट। परमात्मा का गीत तो अभी कठिन पडेगा। तुम्हें अभी बारहखडी ही नही आती। गुरु के पास अ ब स सीख लेना है – अ ब स परमात्मा का। जब तुम सीख गये, तुम चले अपनी यात्रा पर।

पक्षी के बच्चे पैदा होते है, अण्डो से बाहर आते है। तुमने कभी देखा होगा

झाडो मे लटके घोसलो के किनारो पर बैठे, डरते है, आकाश को देखते हैं आकाश बडा है ! अभी तक अण्डे में रहे थे, बडी छोटी दुनिया थी, बडी सुरक्षित थी, ऊष्ण थी। माँ गरमी देती रहती थी। अब दुनिया बडी ठडी मालूम पडती है। वह ऊष्णता माँ की गयी। किनारे पर बैठते हैं वे, माँ उडती है। वह उडान उनके भीतर भी किसी सोयी हुई, प्रसुप्त आकांक्षा को जन्म देती है। वे भी उडना चाहते हैं – कौन नही उडना चाहता ! क्योकि उडने में मुक्ति है, स्वातत्र्य है। लेकिन डगमगाते है, डरते हैं। बैठे हैं घोसले के किनारे। उन्हें अपने पखो का पता नही। हो भी कैसे सकता है ? पखो का पता तो तभी चलता है जब तुम उडो। उडने के पहले पखो का पता चल नही सकता। उडने के बिना कैसे तुम जानोगे कि तुम्हारे पास भी पख हैं ? पैर पता चलते है जब तुम चलते हो। आँख पता चलती है जब तुम देखते हो। कान पता चलते है जब तुम सुनते हो। पख पता चलते है जब तुम उडते हो।

अभी पक्षी उडा नही, अभी अण्डे से बाहर आया है। अभी उसे कैसे पता हो सकता है कि मेरे पास भी पख है। अभी वह डरता है। क्या करता है ? क्या चाहता है ? चाहता है उडना। कोशिश भी करता है, लेकिन पकडे है ज़ोर से घोसले को कि कही इस विराट शून्य मे खो न जाए।

माँ क्या करती है ? एक धक्का देती है। घबडाता है पक्षी, घबडाहट मे पख खुल जाते है। घबडा के लौट आता है वापस एक चक्कर मार के, लेकिन अब उसे पता हो गया पख उसके पास हैं, थोडी देर होगी चाहे, कला सीखने मे थोडा समय लगेगा – लेकिन पख है ! एक बडा भरोसा आया ! एक हिम्मत जगी ! एक आत्मविश्वास का जन्म हुआ 'तो यह आकाश भी अपना है !' दो पखो के सहारे पूरा आकाश अपना हो जाता है। बस, दो छोटे पखो के सहारे सारे आकाश की मालकियत मिल गयी ! फिर थोडी-थोडी दूर जाने के प्रयोग करता है – और दूर, और दूर, बडे वर्तुल बनाता है – और एक दिन फिर दूर आकाश की यात्रा पर निकल जाता है। अब माँ को धक्का देने की जरूरत नही पडती।

गुरु तुम्हे एक धक्का देगा घोसले के बाहर। इससे ज्यादा कुछ भी नही। यह तुम भी कर सकते थे। जब तुम कर लोगे तब तुम पाओगे 'अरे, यह तो मैं भी कर सकता था !' लेकिन यह तुम पाओगे तब जब तुम कर लोगे। इसके पहले, इसके पहले कैसे तुम जानो कि पख हैं ? गुरु तुम्हे दिखा देगा तब तुम्हे लगेगा 'अरे, यह तो बिना गुरु के भी हो सकता था !'

कृष्णमूर्ति के साथ यही हुआ धक्का दिया ऐनीबीसेंट ने, लीडबीटर ने, उनके गुरुओ ने – पख खुले ! कृष्णमूर्ति को समझ आयी कि 'यह तो मुझसे ही हो सकता था। पख मेरे, पख खुले तो मेरे धक्के के बिना भी अगर मैं ज़रा-सी मेहनत

कर लेता तो हो जाता।' तब से चालीस-पच्चास वर्ष बीत गये, वे दूसरो को यही सिखा रहे हैं कि हिम्मत करो, कूद जाओ, पख तुम्हारे हैं, गुरु की कोई जरूरत नही! लेकिन कोई कूदता हुआ मालूम नही पडता। बात बिलकुल ठीक कहते हैं। बात मे जरा भी गलती नही है। भूल-चूक कोई खोज नही सकता इसमे।

लेकिन कोई चाहिए जो तुम्हे धक्का दे दे। और जब गुरु धक्का देगा तो बहुत बुरा लगेगा। तो पहले गुरु तुम्हें पास बुलाएगा, प्रेम देगा, ताकि तुम आ जाओ और निकट, और निकट, और निकट, फिर एक दिन धक्का देगा। तुम चौकोगे बहुत ऐसा प्रेमी आदमी ऐसा दुष्ट कैसे हो गया! लेकिन जरूरी है कि धक्का दे तभी तुम्हारे पख खुलेंगे।

इसलिए जो परमात्मा को खोजने चले हो सीधे वे थोडा सम्हल जाएँ वह सीधी खोज कही अहकार का ही नया करतब न हो, कही अहकार की ही नयी ईजाद न हो! फिर ऐसे लोग हो सकता है बैठे रहे घोसले मे, आँख बद कर ले और खुले आकाश के सपने देखने लगे। वह आसान है।

गुरु को खोजो, परमात्मा की खोज की कोई जरूरत नही। गुरु को खोजते ही वह खोज हो जाएगी।

'है फर्ज तुझ पै फकत बदए-खुदा की तलाश
खुदा की फिक्र न कर, वोह मिला, मिला-न-मिला।'

— उसकी बहुत चिंता नही है। लेकिन किसी खुदा के बदे की तलाश कर ले। किसी गुरु को खोज ले। फिर परमात्मा मिला न मिला, तू छोड फिक्र। मिल ही जाएगा, उसकी बात ही मत उठा। क्योकि गुरु को खोजने मे ही पहला कदम उठ जाता है।

गुरु को खोजने का अर्थ है अहकार का समर्पण।

किसी के चरणो में झुकने का अर्थ है झुकने की कला का पहला अभ्यास।

झुक गये तो खुदा तो मिल ही जाएगा। बस तुम झुके न थे, वही अडचन थी।

इसलिए गुरु की बडी अनिवार्यता है। जरूरत बिलकुल नही है, अनिवार्यता है पूरी। जरूरत बिलकुल नही है, ऐसा लगता है कि हो सकता है अपने-आप। कहाँ अडचन है? पाँव तुम्हारे पास है, उडने की क्षमता तुम्हारे पास है, आकाश मौजूद है, सब मौजूद है — फिर गुरु की क्या जरूरत है? अगर कोई तर्क से विचार करे तो गुरु की जरूरत मालूम नही होगी। लेकिन तुम मे साहस नही है, इसलिए गुरु की जरूरत है। वह साहस को कौन पूरा करे? तुम्हें हिम्मत कौन दे? कौन तुम्हे धक्का दे दे?

मेरे गाँव मे एक बूढे सज्जन हैं। उन्होने करीब-करीब गाँव के सभी बच्चो को तैरना सिखाया होगा। वे नदी के प्रेमी है। और गाँव-भर के बच्चे जैसे ही

तैरने योग्य हो जाते है, नदी पहुँच जाते है। और वे सुबह पूरा समय पाँच-छह घंटे का, गाँव-भर के बच्चो को तैरना सिखाने में देते है। मुझे भी उन्होने तैरना सिखाया। जब मैं सीख गया, मैंने उनसे कहा, 'यह भी कोई बात हुई, तुमने सिखाया ज़रा भी नही, सिर्फ मुझे धकाया।' उन्होने कहा, 'बस वही सिखाना है।' वे फेंक देते है बच्चे को। बच्चा घबडाता है। वे खडे है सामने। दो-तीन फीट फेंक देते है गहरे में। बच्चा घबडाता है, तडफडाता है, हाथ-पैर फेंकता है। वही तैरने की शुरुआत है। हाथ-पैर फेकना ही तैरने की शुरुआत है। फिर धीरे-धीरे व्यवस्था आ जाती है। पहले अव्यवस्थित फेकता है। पहले घबडाहट मे फेंकता है। फिर वे दौड के उसे बचा लेते हैं। फिर फेकते है। फिर ले आते है किनारे पर। फिर फेंकते है। कभी मुँह मे पानी चला जाता है, कभी नाक मे पानी चला जाता है, कभी बडी घबडाहट होती है। कभी ऐसा लगता है कि यह तो बचना मुश्किल है, मरे! और कुछ नही सिखाते वे। दस-पाँच दफा फेकते है। हाथ-पैर मे गति व्यवस्थित होने लगती है। दो-चार दिन मे बच्चा तैरना सीख जाता है। सिखाते कुछ भी नही, सिर्फ पानी मे तुम अपने से न कूद सकोगे, घबडाहट लगेगी, उतनी घबडाहट भर छीन लेने की बात है।

परमात्मा उपलब्ध है गुरु के बिना, मगर उपलब्ध न हो सकेगा। जब वह उपलब्ध हो जाएगा तब तुम जानोगे कि हो सकता था। लेकिन वह सदा बाद में।

कोलम्बस ने अमरीका खोजा। जब तक नही खोजा था, तो कोई भरोसा नही था, लोग सोचते थे यह गया, यह लौटने वाला नही है। क्योकि यह सिर्फ कल्पना के आधार पर कि यदि पृथ्वी गोल है जो कि गैलिलियो और कोपरनीकस ने सिद्ध कर दिया था कि पृथ्वी गोल है, मगर कोई देखा तो नही था, देखा तो अभी तक नही था। जब पहली दफा अन्तरिक्ष-यात्रा शुरू हुई और मनुष्य पृथ्वी के घेरे के बाहर गया तब पहली दफा दिखायी पडा कि पृथ्वी गोल है, इसके पहले तो किसी ने देखा न था, यह तो धारणा थी, तर्कसिद्ध थी, हज़ार प्रमाण थे, इसके लेकिन सब प्रमाण परोक्ष थे। कोलम्बस ने कहा कि 'जब पृथ्वी गोल है तो अगर मैं जाऊँ यात्रा पर और करता ही रहूँ यात्रा सीधा, सीधा, तो एक दिन वापस इसी जगह लौट आगा। अगर बीच मे कुछ हुआ तो मिल गयी कोई जगह तो ठीक है, नही तो वापस अपने घर आ जाएँग। गोल अगर पृथ्वी है तो लौट आएँगे अपनी जगह, भटकने का कोई सवाल नही है।'

कोई साथ जाने को राजी न था। बडी मुश्किल से सालो की खोज के बाद अस्सी आदमी तैयार हो सके। उनमें कई ऐसे थे जो मरने को तत्पर थे, जिनको जिन्दगी मे कोई सार न था। कुछ पागल थे, दीवाने थे, उन्होने कहा 'चलो, कोई हर्जा नही, मरेंगे, और क्या होगा!' ढग का कोई एक आदमी तैयार नही था।

कुछ को सम्राट की आज्ञा हुई थी, इसलिए कुछ सैनिकों को जाना पड़ रहा था, तो वे गये थे।

इन अस्सी आदमियों को ले के कोलम्बस गया। जिसने धन की सहायता दी थी, जिस रानी ने, उसके दरबारियों ने कहा था, 'यह फिजूल पैसा खराब हो रहा है। ये अस्सी आदमी मरेंगे। ये लाखों रुपये खराब होंगे।' पर उस रानी ने कहा, 'करने दो, एक प्रयोग है, देखेंगे।'

कोलम्बस अमरीका खोज के लौट आया। दरबार में उसका स्वागत हुआ। तो उन्हीं दरबारियों ने कहा, 'यह कोई क्या खास बात है, यह कोई भी खोज लेता। अगर पृथ्वी गोल है, कोई भी जाता तो मिल जाता।'

कोलम्बस की थाली में एक अण्डा रखा था। उसने अण्डा उठाया और उसने कहा, 'इसे कोई सीधा खडा करके बता दे टेबल पर।' कई ने कोशिश की खडा करने की, पर अब अंडा कैसे सीधा खडा हो? वह गिर-गिर जाए। उन्होंने कहा, 'यह हो ही नहीं सकता, यह असम्भव है।'

कोलम्बस ने जोर से अण्डे को ठोका टेबल पे, नीचे की पर्त सीधी हो गयी, अंदर दब गयी, अण्डा खडा हो गया। उन्होंने कहा, 'अरे, यह तो कोई भी कर देता!' कोलम्बस ने कहा, 'लेकिन किसी ने किया नहीं।'

करने के बाद तो सभी कुछ आसान हो जाता है। करने के पहले असली सवाल है। उस करने के पहले गुरु की जरूरत है।

अनिवार्यता बिलकुल नहीं, और अनिवार्यता पूरी है। जानोगे, तब पाओगे हो जाता है बिना गुरु के। लेकिन तब तुम यह भी पाओगे अगर तुम पीछे लौट के देखो कि हो नहीं सकता था, तुम हिम्मत ही न जुटा पाते।

तीसरा प्रश्न भक्ति साधना भी है और सिद्धि भी। कृपापूर्वक उसके अलग-अलग रूपों को हमें समझाएँ।

न, भक्ति के कोई रूप नहीं हैं।

प्रेम के कहीं कोई रूप होते हैं? प्रेम तो बस एक है। उसका स्वाद एक है।

भेद तो बुद्धि से होते हैं, हृदय में भेद नहीं होते। हिन्दू की बौद्धिक धारणा अलग, मुसलमान की बौद्धिक धारणा अलग, ईसाई का फलसफा अलग है। वे बुद्धि की बातें हैं। लेकिन जब हिन्दू भक्ति में भरता है और जब मुसलमान भक्ति में भरता है और जब ईसाई भक्ति में भरता है, तो उन भक्तियों में भेद नहीं है, वे एक हैं।

भक्ति हृदय की बात है। उसका तुम्हारे अन्तस्तल से सम्बध है, तुम्हारी बुद्धि की बाहरी बातों से नहीं। क्या तुमने सीखा है, उससे सम्बध नहीं है, क्या तुम्हारा स्वभाव है, उससे सम्बध है।

लेकिन यह बात सच है कि भक्ति साधना भी है और सिद्धि भी। वहाँ पहला कदम ही आखिरी कदम भी है। वहाँ साधन ही साध्य भी है।

भक्ति का अर्थ है परम प्रेम। परम प्रेम की साधना करनी है। और जब सिद्धि होगी तब क्या होगा? परम प्रेम उपलब्ध होगा। परम प्रेम को ही साधना है और परम प्रेम को ही पाना है। प्रेम ही वहाँ मार्ग है और प्रेम ही वहाँ मंजिल है।

होना भी यही चाहिए। क्योंकि जब तुम भी किसी यात्रा पर जाते हो तो तुम जो पहला कदम उठाते हो मार्ग पर, उस पहले कदम में मंजिल एक कदम करीब आ गयी। तो कदम तुमने मार्ग पर ही नहीं उठाया, मंजिल पे भी उठाया। हजार मील की यात्रा तुम पूरी कर लोगे एक-एक कदम उठा-उठा के। एक-एक कदम मंजिल करीब आती जाती है। एक दिन तुम मंजिल पे पहुँच जाते हो। उसमें कौन-सा कदम सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण था? लगेगा आखिरी कदम, क्योंकि आखिरी कदम ने ही मंजिल पे पहुँचाया। नहीं, जितना आखिरी कदम महत्त्वपूर्ण है, उतना ही पहला कदम भी था। क्योंकि पहला कदम अगर चूक जाता तो आखिरी तो हो ही न पाता।

तुम पानी को गरम कर रहे हो, निन्नानबे डिग्री तक गरम करते हो, सौ डिग्री पे भाप बन जाता है। क्या सौवीं डिग्री के कारण भाप बनता है? अगर पहली डिग्री न होती तो सौ डिग्री हो नहीं सकता था, निन्नानबे डिग्री ही रह जाता, भाप नहीं बनता।

पहला कदम आखिरी कदम भी है। मार्ग मंजिल भी है।

मार्ग क्या है भक्त का?

भक्त का मार्ग है अहोभाव!

अहोभाव को समझना जरूरी है। वही उसकी विधि है।

साधारणतः कामवासना देखती है वह जो तुम्हारे पास नहीं है। कामवासना की दृष्टि अभाव पर रहती है, जो तुम्हारे पास नहीं है उसी को देखती है। भक्ति उलटी स्थिति है, जो तुम्हारे पास है, उसे देखती है।

जब जो तुम्हारे पास नहीं है, तुम उसको देखते हो, तब तुम सदा पीड़ित रहते हो, क्योंकि इतना कम है, इतना कम है, इतना कम है! और यह तो कम रहेगा ही। लाख रुपये तुम्हारे पास हैं, वह तुम नहीं देखते, अरबों-खरबों जो तुम्हारे पास नहीं हैं, वह तुम देखते हो। जो पत्नी तुम्हारे पास है उसे तुम नहीं देखते, सारे संसार की स्त्रियाँ दिखायी पड़ती हैं।

अगर पति से कोई पूछे ठीक-ठीक कि 'तू अपनी पत्नी की शक्ल बता सकता है?' — तो दिक्कत खड़ी हो जाएगी। कौन देखता है अपनी पत्नी को!

पड़ोस की पत्नी का सब नाक-नक्शा बता देगा वह। आज उसने कैसी साड़ी पहनी है, यह भी बता देगा। लेकिन अपनी पत्नी !

'जो है' उसे हम देखते ही नहीं, जो नहीं है उसे देखते हैं, इसलिए पीड़ित रहते हैं। क्योंकि 'नहीं है' खलता है, काँटे की तरह चुभता है, अभाव मालूम पड़ता है। दीनता-दरिद्रता मालूम पड़ती है।

'जो है' अगर उसे देखें तो अहोभाव पैदा होता है। तो इतना दिया है परमात्मा ने कि तुम सिवाय धन्यवाद के और क्या कर सकोगे! तो अचानक तुम पाते हो कि तुम सम्राट हो गये, भिखारी न रहे!

'दिल दिया, दर्द दिया, दर्द में लज्जत दी है
मेरे अल्लाह ने क्या-क्या मुझे दौलत दी है!'
और तब दर्द भी सौभाग्य मालूम होने लगता है!
'दिल दिया, दर्द दिया, दर्द में लज्जत दी है।'

पीड़ा में भी एक मिठास है। सुख की तो छोड़ो, दुख में भी एक गहराई है — वह भक्त को दिखायी पड़ती है। स्वर्ग की तो छोड़ो, नरक में भी एक सौंदर्य है — वह भक्त को दिखायी पड़ता है। कामी को तो स्वर्ग में भी स्वर्ग दिखायी नहीं पड़ता, भक्त को नरक में भी स्वर्ग दिखायी पड़ता है।

और तुम्हें जो दिखायी पड़ता है तुम उसी में जीने लगते हो। क्योंकि आदमी जिसको अनुभव करता है, जिसको देखता है, उसी में जीता है।

भक्त भाव में जीता है।
कामी अभाव में जीता है।
'दिल दिया, दर्द दिया, दर्द में लज्जत दी है!'
और तब तो दर्द में भी लज्जत दिखाई पड़ने लगती है।
दर्द में भी एक काव्य है।
दर्द का भी एक रहस्य है।
पीड़ा में भी कुछ अनूठी मिठास है।
पीड़ा का भी काव्य है।
और पीड़ा में भी कुछ जन्मता है,
जो बिना पीड़ा के नहीं जन्म सकता।
'रंज हो, दर्द हो, वहशत हो, जुनूं हो, कुछ हो
आप जिस हाल से खुश हो, वही हाल अच्छा है।'

और भक्त कहता है, 'जो परमात्मा ने दिया है रंज हो, दर्द हो, वशहत हो, जुनूं हो, कुछ हो! '

भक्त को जैसे ही यह दिखायी पड़ना शुरू होता है कि कितना दिया है,

मेरी कोई पात्रता न थी और इतना दिया है, अपात्र था और जीवन दिया, कमाया कुछ भी न था, इतने अनंत आनंद की क्षमता दी, सौभाग्य दिया कि होऊँ, कि मेरे नासापुट श्वास लें, कि मेरी आँखें सूरज की किरणों को देखें, कि मेरा हृदय प्रेम की पुलक को अनुभव करे, कि मेरे कानों पर संगीत का साक्षात्कार हो! कुछ भी न था, शून्य से बनाया मुझे और सब कुछ दिया!

'आप जिस हाल में खुश हों वही हाल अच्छा है!'

और तब भक्त अपनी कोई मर्जी नहीं रखता, परमात्मा की मर्जी ही उसकी मर्जी है 'वह जहाँ ले जाए वहीं जाएँगे। वह जो करायें वही करेंगे!'

भक्त छोड़ ही देता है सब। भक्त उपकरण-मात्र हो जाता है। परमात्मा ही उससे बहता है।

यही साधना है और यही सिद्धि भी है। जिस दिन यह स्थिति परिपूर्ण हो जाएगी ।

कब होती है स्थिति परिपूर्ण? यह सौभाग्य कब पूरा होता है? – जब भक्त की मंजिल आ जाती है।

पहले तो साधारण आदमी, जो कामवासना में जीता है, शिकायत करता है, शिकायत ही उसका जीवन है।

तुम लोगों की बातें सुनो, सिवाय शिकायत के उनके जीवन में कुछ भी नहीं है 'यह नहीं है, यह ठीक नहीं है, यह गलत हो रहा है, यह गलत हो रहा है, सब गलत हो रहा है!' गलत-गलत से वे घिर गये हैं। शिकायत ही शिकायत है।

भक्त की बात सुनो अहोभाव ही अहोभाव है!

लेकिन जब मंजिल आती है, पहले शिकायत खो जाती है, भक्त अहोभाव से भर जाता है, फिर तो अहोभाव भी खो जाता है। क्योंकि धन्यवाद भी देने का मतलब है कि थोड़ी-बहुत शिकायत शेष रही होगी। नहीं तो धन्यवाद क्यों?

इसे थोड़ा समझें।

धन्यवाद भी हम तभी देते हैं कि अगर इससे अन्यथा होता तो शिकायत होती। धन्यवाद शिकायत का उलटा है।

रूमाल तुम्हारे हाथ से गिर गया, किसी ने उठा के दे दिया, तुमने कहा, 'धन्यवाद!' इसका मतलब है कि अगर वह उठा के न देता तो शिकायत होती। तो इसका अर्थ यह हुआ कि धन्यवाद ऊपर आ गया है, शिकायत भीतर चली गयी है।

तो, भक्त जब तक मार्ग पर है, अहोभाव से भरा रहता है।

शिकायत से बेहतर है अहोभाव, क्योंकि शिकायत में सिर्फ पीड़ा होती है, दुख होता है, दर्द होता है, अँधेरा ही अँधेरा होता है। अहोभाव में सब रोशन हो

जाता है, सब खिल जाता है। लेकिन अभी भी कमी है। मंजिल पे आते सब बात ही समाप्त हो जाती है, कुछ कहने को नही रह जाता।

जब अहोभाव भी नही बचता तब अहोभाव पूरा हो जाता है।

इस तरह मिटना है कि कुछ भी न बचे। शिकायत तो मरे ही, अहोभाव भी मर जाए।

'दिल है तो उसी का है, जिगर है तो उसी का है
अपने का रहे-इश्क में बरबाद जो कर दे।'
'दिल है तो उसी का, जिगर है तो उसी का।'
बस उसी के पास दिल पैदा होगा, उसी के पास जिगर आएगा –
'अपने को रहे इश्क मे बर्बाद जो कर दे।'

प्रेम की राह पर जो अपने को पूरा मिटा दे, वही पहली दफा हो पाता है।

भक्ति का अर्थ है अपने को मिटाने की कला। वह मृत्यु की कला है, अपने को खोने की कला, अपने को डुबाने की कला।

चौथा प्रश्न: मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मै एक अधपका फल हूँ ?

प्रतीत होने का सवाल नही, होओगे ही। नही तो कभी के गिर गये होते। पके फल वृक्षो पे थोडे ही लटके रह जाते है। पके फल तो गिर जाते है। गिरना ही सबूत है कि फल पक गया, और कोई सबूत नही। पीले हो जाने मे कोई पक गया, ऐसा मत समझ लेना – गिर जाने से ही।

उपनिषद कहते है 'त्येन त्यक्तेन भुंजीथा।' उन्होने ही भोगा जिन्होने त्यागा। क्याकि त्याग से ही पता चलता है कि ठीक से भोगा, समझ गये कि भोग बेकार है। जिस दिन भोग पक जाता है उस दिन त्याग अपने-आप हो जाता है। जिस दिन फल पक जाता है उस दिन गिर जाता है।

'ऐसा प्रतीत होता है ।'

प्रतीत होने की बात ही छोड दो, ऐसा जाना कि है, कि मै एक अधपका फल हूँ। निश्चित, इस प्रतीति को सत्य समझो, तो पकने की दौड शुरू होगी, तो 'अथाता' का क्षण शीघ्र ही पास आ जाएगा।

आदमी जब पक जाता है तभी पूरा आदमी होता है। जिस दिन तुम पूरे आदमी होते हो उसी दिन गिर जाते हो। आदमी गिरा कि परमात्मा शुरू हो जाता है। जहाँ आदमी का अंत है वहाँ परमात्मा की शुरुआत है।

'आदमी हैं शुमार से बाहर
कहत है फिर भी आदमियत का।'

बहुत आदमी हैं, लेकिन आदमियत कहां ? आदमियत की बड़ी कमी है, क्योंकि पके हुए आदमी कहाँ ?

'फर्श से ताअर्श मुमकिन है तरक्की औ उरूजा
फिर फरिश्ता भी बना लेंगे तुझे, इन्सा तो बन।'

—पहले आदमी बन, फिर हम तुझे देवता भी बना लेंगे।

'फिर फरिश्ता भी बना लेंगे तुझे, इन्सा तो बन।'

पहले पक। फिर देवत्व तो अपने-आप आ जाता है। जो आदमी पूरा हुआ कि वही से देवत्व की शुरुआत है।

कैसे पकोगे ?

बड़ा मुश्किल हो गया है पकना। इसलिए मुश्किल हो गया है कि तुम्हारे सारे सस्कार, सारी शिक्षा, सारा धर्म तुम्हे दमन सिखाते है, अनुभव नही सिखाते।

ऐसा समझो कि जिन-जिन चीजों की जानकारी से तुम्हें जीवन व्यर्थ मालूम पड़ता है, उनकी जानकारी ही पूरी नही होने देते।

बच्चे को हम सिखाते हैं 'क्रोध मत कर।' सिखाना चाहिए कि क्रोध जितना बन सके कर ले। जब बच्चा क्रोधित हो तो कहना चाहिए 'खूब कर ले। क्योंकि अभी तो घर है अपना, फिर बाहर की दुनिया में जाएगा, वहाँ तुझे लोग क्रोध न करने देंगे, अपने घर मे पूरा कर ले। पिता पर, माँ पर, कर ले पूरा। क्योंकि दूसरे लोग इतनी कृपा न करेंगे। तू क्रोध को पूरी तरह कर ले, ताकि क्रोध की जलन का तुझे अनुभव हो जाए और क्रोध की व्यर्थता तुझे दिखायी पड़ जाए।'

और क्रोध जहर है और सिवाय हानि के कुछ लाभ नही देता।

और क्रोध मूढ़ता है दूसरे के कसूर के लिए अपने को दण्ड देना है।

क्रोध अज्ञान है क्योंकि क्रोध मे तू दूसरे के हाथ मे खिलौना हो गया है, कोई भी तेरी कुंजी दबा दे सकता है, कोई भी तुझे क्रोधित कर दे सकता है, तो तू दूसरे का गुलाम हो गया, तेरी मालकियत खो गयी।

मगर यह तो तब होगा जब क्रोध पूरी तरह अनुभव किया जाए।

मेरी प्रतीति ऐसी है कि अगर तुमने जीवन मे एक बार भी क्रोध का पूरा अनुभव कर लिया तो पक गया क्रोध, उसके बाद तुम क्रोध न करोगे क्रोध की बात ही खत्म हो गयी। हाथ जल गया!

दूध का जला छाँछ भी फूंक-फूंक के पीने लगता है। लेकिन तुम्हें दूध मे ही नही जलने दिया गया, छाँछ को फूंक के पीने की तो बात बहुत दूर।

तुम्हे सिखाया गया है, कामवासना मे बचो, इसलिए तुम कामवासना मे पड़े हो और सड़ते हो।

मैं तुमसे कहता हूँ, बचना मत। कामवासना में पूरे ही उतर जाना। ठीक तलहटी तक उतर जाना, ताकि और जानने को कुछ शेष न रह जाए। उसे इतनी पूर्णता से जान लेना कि रस ही खो जाए। जिस चीज को हम पूरा जान लेते है उसमें रस समाप्त हो जाता है। जहाँ-जहाँ रस हो तुम्हारा, जानना कि वहाँ-वहाँ अधूरा जानना हुआ है, इसलिए अधपकापन। और ऐसा जीवन पूरा अधपका रह जाता है।

पको !

अनुभव पकाता है।

अनुभव की धूप पकाती है।

अनुभव की पीडा पकाती है।

अनुभव की भूल-चूक पकाती है।

भटकाना पकाता है।

राह से उतर जाना पकाता है।

जब तुम पक जाते हो, गिर जाते हो।

उस गिरने मे ही – उस गिरने मे ही देवत्व का क्षण शुरू होता है।

इसलिए अपने को बचाओ मत, जल्दी करो। जहा-जहाँ रस हो उसे पूरा-पूरा भोग ही लो। भोगने मे आधा-आधा मत करना।

मै देखता हू ऐसा ही होता है। मदिर मे बैठते हो तब दुकान की सोचते हो, क्योकि दुकान पे कभी पूरे बैठे नही। जब दुकान पे बैठते हो तो मदिर की सोचते हो, क्योकि मदिर मे कभी पूरे बैठे नही। जहाँ हो वही अधूरे हो।

दुकान पे बैठते हो तब तुम्हे बडी ज्ञान की बाते सूझने लगती है कि 'इसमें क्या रखा है ! ससार असार है ! ' यह सब सुनी बकवास है। अगर यह तुमने जान लिया होता तो तुम्हारी जिदगी मे क्रांति हो गयी होती।

आखिरी प्रश्न : क्या भक्ति-साधना के भी कुछ साधन है, कुछ टेकनीक है ? या वह सर्वथा स्वत स्फूर्त और सहज है ?

नही, कोई साधन नही है।

प्रेम का कही कोई साधन होता है ? कोई टेकनीक ? – कोई टेकनीक नही होता।

प्रेम परम साधन है, स्वय ही

'खाकसारी का है गाफिल ! बहुत ऊँचा मर्तबा !'

मिट जाने का, ऐ सोने वाले ! बहुत ऊँचाई है मिट जाने की।

'खाकसारी का है गाफिल ! बहुत ऊँचा मर्तबा

यह जमी वोह है कि जिस पर आसमा कोई नही। '

बस भक्ति तो मिट जाना है, ना-कुछ हो जाना है, अपने को शून्य कर लेना है, ताकि परमात्मा तुममे पूर्ण हो सके, जगह देनी है ताकि उसका प्रवेश हो सके, टूटना है!

तुमने बहुत चीजो को टूटते देखा है, अभी अपने को टूटते नही देखा। तुमने बहुत चीजे मिटते देखी, अपने को मिटते नही देखा। तुमने बहुतो को मरते देखा, अपने को मरते नही देखा।

भक्ति, अपने को मरने देखना है। वह मृत्यु का साक्षात्कार है।

'हुबाब देख लिया, आबगीना देख लिया
शिकस्ते दिल की नजाकत किसी को क्या मालूम!'

बुलबुले को देखा पानी के, उसको टूटता देखा । कई बार तुमने देखा होगा पानी के बुलबुले को टूटता।

छोटे बच्चे सोप के बुलबुले उठाते है और उनका टूटना देखते है, उनकी रगीनी देखते है सूरज की किरणो मे। गौर किया? बुलबुले के भीतर कुछ भी नही होता, बाहर भी कुछ नही, बाहर भी खाली आकाश है, भीतर भी खाली आकाश है, बीच मे एक छोटी-सी पानी की पर्त है।

'हुबाब देख लिया' – ऐसे बुलबुले को टूटते देख लिया। 'आबगीना देख लिया' – कभी शीशे को पटक के देखा टुकडे-टुकडे हो जाता है, खड-खड हो जाता है। लेकिन यह कुछ भी नही है।

'शिकस्ते दिल की नजाकत किसी को क्या मालूम!'

जिसने दिल को टूटना देखा, उसकी सूक्ष्मता का किसी को कोई भी पता नही है। क्योंकि जहाँ दिल टूटता है, जहाँ दिल भी एक बबूले की तरह टूट जाता है, जहाँ तुम्हारा होना एक बबूले की तरह टूट जाता है – वहाँ तुम अचानक पाते हो कि भीतर की आत्मा विराट परमात्मा से मिल गयी, जरा-सी दीवाल थी, खो गयी!

तुम्हारा अहकार कांच के दर्पण से ज्यादा नही है गिरा नही कि टूटा। जरा झुको और गिरा दो इसे। मिटना सीखो – बस भक्ति का सूत्र इतना ही है।

योग मे हजार विधियाँ है, भक्ति का सूत्र एक है। पर एक काफी है। वैसे ही जैसे कहावत है सौ सुनार की एक लुहार की! ऐसे ही योगी खटखट-खटखट बहुत मचाता है। इसलिए तो उसके कर्म को 'खटकरम' कहते है। बहुत उपद्रव करता है। न मालूम कितनी विधियाँ बनाता है! इसलिए तो उसकी विधियो को गोरखधधा कहते है। वह महायोगी गोरख के नाम से बना है शब्द

गोरखधंधा ! गोरख ने इतनी विधियां खोजी कि विधियों में ही कोई खो जाए, पहुँचने की तो बात ही अलग। इसलिए – गोरखधंधा।

भक्ति तो एक ही सूत्र जानती है : अपने को खो दो। झुको। मिटो।

परमात्मा द्वार पर खड़ा है : इधर तुम झुके नहीं, उधर वह मिला नहीं।

आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

दिनांक ११ जनवरी, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना

सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ॥ ७ ॥

निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यास ॥ ८ ॥

तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च ॥ ९ ॥

अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता ॥ १० ॥

लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता ॥ ११ ॥

भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणम् ॥ १२ ॥

अन्यथा पातित्याशङ्कया ॥ १३ ॥

लोकोऽपि तावदेव किन्तु भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीधारणावधि ॥ १४ ॥

बड़ी संवेदनशील है भक्ति

जीवन की व्यर्थता जब तक प्रगाढ अनुभव न बन जाए तब तक परमात्मा की खोज शुरू नही होती। जीवन की व्यर्थता का बोध ही उसकी तरफ पहला कदम है। जब तक ऐसी भ्रांति बनी है कि यहाँ कुछ खोज लेंगे, पा लेंगे, यहाँ कुछ मिल जाएगा सपनो की दुनिया मे — तब तक परमात्मा भी एक सपना ही है, तब तक तुम उसे खोजने नही निकलते, तब तक तुम स्वय को दाँव पर भी नही लगाते।

परमात्मा मुफ्त मिलने वाला नही है। जो भी तुम हो, तुम्हारी परिपूर्ण सत्ता जब तक दाँव पर न लग जाए, तब तक परमात्मा से कोई मिलन नही। क्योकि प्रेम इससे कम पर नही मिल सकता, और प्रार्थना इससे कम पर शुरू नही होती। यह काम जुआरियो का है, दुकानदारो का नही। यहाँ पूरी खोने की हिम्मत चाहिए। दीवानगी चाहिए! मस्ती चाहिए!

लेकिन यह तभी सम्भव हो पाता है जब जो तुम्हारे पास है, वह व्यर्थ दिखायी पडता है, वह कूडा-कर्कट हो जाता है, तब तुम उसे पकडते नही।

करोडो लोग परमात्मा के शब्द का उच्चार करते है, प्रार्थना करते है, पूजा करते है, लेकिन उसकी कोई झलक नही मिलती। क्या पूजा व्यर्थ है? नही, करने वालो ने की ही नही। क्या प्रार्थना शून्य आकाश मे खो जाती है, कोई प्रत्युत्तर नही आता? प्रार्थना थी ही नही, अन्यथा प्रत्युत्तर तत्क्षण आता है। इधर तुमने पुकारा भी नही कि उधर प्रत्युत्तर मिला नही! पर तुमने पुकारा ही नही। तुम सोचते हो कि तुमने पुकारा, तुम सोचते हो कि तुमने प्रार्थना की, लेकिन कभी तुमने हृदय को दाँव पर लगाया नही।

आधे-आधे मन से न होगा। पूरे-पूरे की माँग है।

(तो, जब तक तुम्हें लगता है कि ससार मे अभी कुछ मिल सकता है, रस कायम है, जब तक तुम जागे नही, सपने में थोडे उलझे हो, जब तक तुम्हे सपने में भरोसा है कि यह सच है — तब तक परमात्मा की तरफ आशाओ का प्रवाह, आकांक्षाओ का प्रवाह शुरू नही होता, तब तक प्रार्थना तुम्हारी अभीप्सा नही

होती, तुम्हारे हृदय की भाव-दशा नही होती, तब तुम्हारी प्रार्थना भी तुम्हारी चालाकी, तुम्हारे गणित, तुम्हारी होशियारी का हिसाब होती है। तुम सोचते हो 'चलो, हो-न-हो कही परमात्मा हो ही न, प्रार्थना भी कर लो, पूजा भी कर लो, बिगडता क्या है ! हानि क्या है ! अगर लाभ हुआ तो हो जाएगा, न हुआ तो हानि तो कुछ भी नही।'

मैंने सुना है, एक नाटकगृह मे ऐसा हुआ कि मध्य नाटक मे, जो नाटक का प्रधान पात्र था, उसे हृदय का दौरा पड गया, वह मर गया। सयोजक परदे के बाहर आया, उसने क्षमा माँगी कि क्षमा करें, दुख की बात है, हृदय के दौरे के कारण प्रमुख नायक की मृत्यु हो गयी है और नाटक आगे न हो सकेगा। हम क्षमा प्रार्थी है, लेकिन हमारे कोई हाथ की बात भी नही।

लोग नाटक मे बडे उलझे थे। अभी तो जिज्ञासा जगी थी, और यह तो बीच मे सब टूट गया — जैसे नींद टूट गयी !

एक स्त्री ने खडे हो के कहा कि छाती के ऊपर मालिश करो, अभिनेता की।

मैनेजर ने कहा, 'देवी जी, वह मर चुका है। अब मालिश मे क्या लाभ होगा ?'

उस स्त्री ने कहा, 'लाभ न हो, हानि क्या होगी ?'

बस तुम्हारी प्रार्थना ऐसी ही है कि अगर लाभ न हुआ, कोई हर्जा नही, 'हानि क्या होगी !'

मरते वक्त नास्तिक भी आस्तिक हो जाते है, इस भय से कि कही परमात्मा हो ही न ! बूढे होते-होते सभी नास्तिक आस्तिक होने लगते है, क्योकि जैसे-जैसे मौत करीब आती है और पैर लडखडाते है और अधेरा घना होने लगता है और आकाश के तारे छुपने लगते है, सब आशाओ के दीये बुझने लगते है और लगता है कि अब सिर्फ कब्र के अतिरिक्त और कोई जगह न रही, तो नास्तिक भी परमात्मा का स्मरण करने लगता है कौन जाने, शायद हो !

लेकिन 'शायद' से प्रार्थना नही बनती। 'शायद' मे समझदारी तो समझ मे आती है, प्रेम समझ मे नही आता।

समझदारी से कोई कभी समझदार नही हुआ। समझदारी के कारण ही तो तुम नासमझ बने हो। तुम्हारी समझदारी ही महँगी पड रही है।

तो, परमात्मा की तरफ अगर तुम होशियारी से जा रहे हो, बही-खाते का हिसाब वहा भी फैला रहे हो, सोचते हो कि ठीक है, ससार को भी सँभाल ले, परमात्मा को भी सँभाल ले, दोनो नावो पर सवार हो जाएँ — तो तुम मुश्किल मे पडोगे। तुम मुश्किल मे पडे हो, क्योकि मै देखता हूँ, तुम दोनो नावो मे आधे-आधे खडे हो।

नाव पर तो एक ही चढ़ा जाता है ... एक ही नाव पर चढा जाता है, अन्यथा दुविधा पैदा हो जाती है। दो दिशाओ मे चलोगे तो टूट जाओगे, खड-खड हो जाओगे, बिखर जाओगे। और जब तुम ही खड-खड हो गये, बिखर गये, जब तुम्हारे भीतर ही एकतानता न रही, तो प्रार्थना कौन करेगा, पूजा कौन करेगा ? भीड थोडे ही पूजा करती है, भीतर की एकता से पूजा उठती है, भीतर की अखडता से सुगध उठती है प्रार्थना की।

तो इस बात को पहले खयाल मे ले लेना चाहिए तो ही भक्ति-सूत्र समझ में आ सकेगे।

यह जिदगी अगर तुम्हे अभी भी रसपूर्ण मालूम पडती है तो थोडा और जी लो। आज नही कल, रस टूट ही जाएगा।

जितना आदमी सजग हो उतने जल्दी रस टूट जाना है। जितना आदमी बेहोश हो, उतनी देर तक रस टिकता है। बेहोशी रस का सहारा है। जितनी तुम्हारे भीतर बुद्धिमानी हो – होशियारी नही कह रहा हूँ, चालाकी नही कह रहा हूँ, बुद्धिमत्ता हो – उतनी जल्दी तुम जीवन के रस से चुक जाओगे। और जब जीवन का रस चुकता है तभी तुम्हारी रसधार जो जीवन मे नियोजित थी, मुक्त होती है अब ससार में जाने को कोई जगह न बची, अब वह रास्ता रास्ता न रहा, अब चीजो की तरफ दौडने की बात न रही, अब सग्रह को बडा करना है, मकान बडा बनाना है, धन इकट्ठा करना है, पद-प्रतिष्ठा पानी है – यह सब व्यर्थ हुआ, अब तुम अपने घर की तरफ लौटते हो।

'घर बयाबा मे बनाया नही हमने लेकिन
जिसको घर समझे हुए थे वह बयाबा निकला।'

कोई रेगिस्तान मे घर नही बनाया था, लेकिन जिसको घर समझे हुए थे वही रेगिस्तान निकला, वही वीरान निकला।

जिस दिन तुम्हे अपना घर बयाबा मालूम पडे, वीरान मालूम पडे वीरान है, सिर्फ तुम अपने सपनो के कारण उसे सजाये हो। जरा चौक के देखो जिसे तुम घर कह रहे हो, वह घर नही है, ज्यादा-से-ज्यादा सराय है, आज टिके हो कल विदा हो जाना पडेगा। जो छिन ही जाना है, उसको अपना कहना किस मुँह से सभव है ? जहाँ से उखड ही जाना पडेगा, जहाँ क्षण-भर को ठहरने का अवसर मिला है, पडाव हो सकता हे, मजिल नही है, और मजिल के पहले घर कहाँ ! घर तो वही हो सकता है जहाँ पहुँचे तो पहुँचे, जिसके आगे जाने को कुछ और न रहे।

परमात्मा के अतिरिक्त कोई घर नही हो सकता।

मुझसे लोग पूछते है, 'सन्यास की परिभाषा क्या ?' तो मै कहता हूँ, 'दो तरह

के घर बनाने वाले ह, दो तरह के गृहस्थ हैं : एक जो ससार में घर बनाते हैं, उनको हम गृहस्थी कहते है, एक जो परमात्मा मे घर बनाते है, वे भी गृहस्थ है, उनको हम सन्यासी कहते हैं – सिर्फ भेद करने को । घर अलग-अलग जगह बनाते हैं । एक हैं जो पानी पर जीवन को लिखते है, लिख भी नही पाते और मिट जाता है, और एक है जो जीवन की शाश्वतता पर लिखते है । एक है जो रेत पर घर बनाते हैं, जिनकी बुनियाद ही डगमगा रही है, और एक है जो जीवन की शाश्वतता को आधार की तरह स्वीकार करते है ।

पहला सूत्र है 'वह भक्ति कामनायुक्त नही है, क्योकि वह निरोध-स्वरूपा है ।'

ससार यानी कामना ।

ससार का ठीक अर्थ समझ लो, क्योकि तुम्हे ससार का भी अर्थ गलत ही बताया गया है ।

कोई घर छोड के भाग जाता है तो वह कहता है, ससार छोड दिया । कोई पत्नी को छोड के भाग जाता है तो वह कहता है, ससार छोड दिया । काश, ससार इतना स्थूल होता ! काश, तुम्हारी पत्नी के छोड जाने से ससार छूट जाता ! काश, बात इतनी सस्ती होती ! तो सन्यास बहुत बहुमूल्य नही होता ।

ससार न तो पत्नी मे है, न घर मे है, न धन मे है, न बाजार मे है, न दुकान मे है – ससार तुम्हारी कामना मे है । जब तुम मागते हो कि मुझे कुछ चाहिए, जब तक तुम सोचते हो कि मेरा सतोष, मेरा सुख, मुझे कुछ मिल जाए, उसमे है, तब तक तुम ससार मे हो ।

जब तक मांग है तब तक ससार है ।

ससार का अर्थ है तुम्हारा हृदय एक भिक्षापात्र है, जिसको लिये तुम माँगते फिरते हो – कभी इस द्वार, कभी उस द्वार । कितने ठुकराये जाते हो ! लेकिन फिर-फिर सँभल के माँगने लगते हो । क्याकि एक ही तुम्हारे मन में धारणा है कि और ज्यादा, और ज्यादा मिल जाए, तो शायद सुख हो !

'और' की दौड ससार है ।

तो तुम मदिर मे भी बैठ जाओ और वहाँ भी अगर तुम माँग रहे हो तो तुम ससार मे ही हो । तुम हिमालय पर चले जाओ, वहाँ भी आँख बद करके अगर तुम माँग ही रहे हो, परमात्मा से कह रहे हो, 'और द, स्वर्ग दे, मोक्ष दे,' इससे कोई फर्क नही पडता कि तुम क्या माँगते हो । ससार का कोई सबध इससे नही है कि तुम क्या माँगते हो, ससार का सबध बस इससे है कि तुम माँगते हो ।

इस बात को ठीक से समझ लेना, अन्यथा ससार छोडने का ढोग भी हो जाता है और ससार छूटता भी नही ।

ससार तुम्हारे भीतर है, बाहर नही । ससार तुम्हारी इस माँग मे है कि 'मै जैसा हूँ वैसा काफी नही हूँ, कुछ चाहिए जो मुझे पूरा करे, मै अधूरा हूँ, अतृप्त हूँ, असतुष्ट हूँ, कुछ मिल जाए जो मुझे पूरा करे, तृप्त करे, सतुष्ट करे !'

स्वय को अधूरा मानने में और आशा रखने मे कि कुछ मिलेगा जो पूरा कर देगा, बस वहाँ ससार है ।

माँग छूटी• ससार छूटा ! तब कोई घर छोडने की जरूरत नही है, न पत्नी को छोडने की जरूरत, न पति को, न बच्चो को – उनका कोई कसूर नही है । .. घर मे रहते तुम ससार से मुक्त हो जाते हो । पत्नी के पास बैठे तुम ससार से मुक्त हो जाते हो । बच्चो को सजाते-सँभालते तुम ससार से मुक्त हो जाते हो । क्योकि ससार से मुक्त होने का केवल इतना ही अर्थ है कि अब तुम तृप्त हो, जैसे हो, जो हो, तुम्हारे होने मे अब कोई माँग नही है, तुम्हारे होने मे अब कोई आकांक्षा नही है, तुम्हारा होना कामनातुर नही है, तुम अब एक कामनाओ का फैलाव नही हो, विस्तार नही हो – तुम बस हो तृप्त, यही क्षण, और जैसे तुम हो, पर्याप्त से भी ज्यादा है !

तब तुम्हारी प्रार्थना धन्यवाद बन जाती है, माँग नही । तब तुम मदिर कुछ माँगने नही जाते, तुम उसे धन्यवाद देने जाते हो कि 'तूने इतना दिया, अपेक्षा से ज्यादा दिया, जो कभी माँगा नही था वह दिया । तेरे देने का कोई अत नही ! हमारा पात्र ही छोटा पडता जाता है और तू भरे जा रहा है !'

तब भी तुम रोते हो जा के मदिर मे, लेकिन तब तुम्हारे आँसुओ का सौंदर्य और !

जब तुम माँग से रोते हो, तब तुम्हारे आँसू गदे है, दीन है, दरिद्र है । जब तुम अहोभाव से रोते हो, तुम्हारे आँसुओ का मूल्य कोई मोती नही चुका सकते । तब तुम्हारा एक-एक आँसू बहुमूल्य है, हीरा है । आँसू वही है, लेकिन अहोभाव से भरे हुए हृदय मे जब आता है, तो रूपान्तरित हो जाता है ।

तुम जरा फर्क करके देखना । तुम दुख मे भी रोये हो, पीडा मे रोये हो, असतोष में रोये हो, शिकायत मे रोये हो, कभी अहोभाव मे भी रो कर देखना, कभी आनद मे भी रो के देखना– और तुम पाओगे तुम्हारे बदलने ही आँसुओ का ढग भी बदल जाता है । तब आँसू फूलो की तरह आते है । तब आँसुओ मे एक सुगध होती है जो इस लोक की नही है ।

मीरा भी रोती है, पर मीरा के आँसू भिखारी के आँसू नही है । चैतन्य भी रोते है, लेकिन चैतन्य के आँसू दीन-दरिद्र नही है कुछ माँग से नही निकल रहे है, किसी अभाव मे पैदा नही हुए है–किसी बडी गहन भाव-दशा से जन्मे हैं ! गगा का जल भी उतना पवित्र नही है !

'वह भक्ति कामनायुक्त नही है, क्योकि वह निरोधस्वरूपा है।'

निरोधस्वरूपा !–

साधारणत भक्ति-सूत्र पर व्याख्या करने वालो ने निरोधस्वरूपा का अर्थ किया है कि जिन्होने सब त्याग दिया, छोड दिया। नही, मेरा वैसा अर्थ नही है। ज़रा-सा फर्क करता हूँ, लेकिन फर्क बहुत बडा है। समझोगे तो उससे बडा फर्क नही हो सकता।

निरोधस्वरूपा का अर्थ यह नही है कि जिन्होने छोड दिया–निरोधस्वरूपा का अर्थ है कि जिनसे छूट गया। निरोध और त्याग का वही फर्क है। त्याग का अर्थ होता है छोडा, निरोध का अर्थ होता है छूटा, व्यर्थ हुआ। जो चीज व्यर्थ हो-जाती है उसे छोडना थोडे ही पडता है, छूट जाती है।

सुबह तुम रोज घर का कूडा-कर्कट इकट्ठा करके बाहर फेंक आते हो तो तुम कोई जा के अखबारो के दफ्तर मे खबर नही देते कि आज फिर त्याग कर दिया कूडे-कर्कट का, ढेर-का-ढेर त्याग कर दिया! तुम जाओगे तो लोग तुम्हे पागल समझेगे। अगर कूडा-कर्कट है तो फिर छोडा, इसकी बात ही क्यो उठाते हो?

तो जो आदमी कहता है, 'मैंने त्याग किया', वह आदमी अभी भी निरोध को उपलब्ध नही हुआ। क्योकि त्याग करने का अर्थ ही यह होता है कि अभी भी सार्थकता शेष थी।

अगर कोई कहता है कि मैंने बडा स्वर्ण छोडा, बडे महल छोडे, गौर से देखना स्वर्ण अभी भी स्वर्ण था, महल अभी भी महल थे। 'छोडा'! छोडना बडी चेष्टा से हुआ। चेष्टा का अर्थ ही यह होता है कि रस अभी कायम था, फल पका न था, कच्चा था, तोडना पडा।

पका फल गिरता है, कच्चा फल तोडना पडता है।

तो त्यागी तो सभी कच्चे है। निरोध को उपलब्ध व्यक्ति पका हुआ व्यक्ति है। त्याग और निरोध का यही फर्क है।

नारद कह सकते थे, 'त्यागस्वरूपा है', पर उन्होने नही कहा। 'निरोध-स्वरूपा'! व्यर्थ हो गयी जो चीज़, वह गिर जाती है, उसका निरोध हो जाता है।

सुबह तुम जागते हो तो सपनो का त्याग थोडे ही करते हो, कि जाग के तुम कहते हो, 'बस रात भर के सपने छोडता हूं।' जागे कि निरोध हुआ। जागते ही तुमने पाया कि सपने टूट गये, सपने व्यर्थ हो गये, सपने सिद्ध हो गये कि सपने थे, बात समाप्त हुई, अब उनकी चर्चा क्या करनी है!

जो त्याग का हिसाब रखते हैं, समझना, भोगी ही हैं–शीर्षासन करते हुए, उलटे खडे हो गये है, भोगी ही है।

एक सन्यासी को मै जानता हूँ जो भूलते ही नही। कोई चालीस साल

पहले उन्होने छोडा था ससार—छोडा था, निरोध नहीं हुआ था—चालीस साल बीत गये, अभी भी छूटा नही। छोडा हुआ कभी छूटता ही नही। वे अभी भी कहते रहते है कि मैंने लाखो रुपये पे लात मार दी। मैंने उनसे एक दिन कहा कि लात लग नही पायी, तुमने मारी होगी, चूक गयी! उन्होंने कहा, 'क्या मतलब ?'

'चालीस साल हो गये छूट गया, छूट गया! इसकी चर्चा क्यो खींचते हो, इसे रोज़-रोज याद क्यो करते हो ? रस कायम है। लाखो मे अभी भी मूल्य है। अभी भी तुम दूसरो को भूलते नही बताना कि मैंने लाखो पे लात मारी। तुमने बैंक-बैलेंस कायम रखा है। गिनती जारी है। नही, यह त्याग तो है, निरोध नही।'

त्याग झूठा सिक्का है निरोध का। निरोध बडी अद्‌भुत घटना है!

रामकृष्ण के पास एक आदमी आया, हजार सोने की अशर्फियाँ लाया था, दान करने, उनको देने। उन्होंने कहा, 'मुझे जरूरत नही। तू एक काम कर, गगा मे फेंक आ।' वह गया, लेकिन घटा-भर हो गया, लौटा नही, तो रामकृष्ण ने आदमी भेजे कि देखो, क्या हुआ, कही दुख मे डूब तो नही मरा! गये तो वह एक-एक अशर्फी को बजा-बजा के फेक रहा था, भीड इकट्ठी हो गयी थी, लोग चमत्कृत हो रहे थे। ना उन्होंने आ के कहा कि वह एक-एक अशर्फी गिन-गिन के फेंक रहा है।

तो रामकृष्ण गये और उससे कहा, 'नासमझ! जब कोई इकट्ठा करता है तब तो गिनना समझ मे आता है। लेकिन जब फेंकना ही है तो क्या गिन के फेंकना! नौ सौ निन्नानबे थी कि हजार थी, क्या फर्क पडता है! कोई हिसाब रखना है पीछे कि कितनी फेंकी, कि कितनी दान की ? अगर हिसाब रखना है तो फेंक ही मत, अपने घर ले जा। जब हिसाब ही नही छूटता है तो अशर्फियाँ छोडने से कुछ भी न होगा। असली चीज हिसाब का छूटना है, असली चीज अशर्फियो का छूटना नही है।'

जीसस ने कहा है 'तुम्हारा एक हाथ जो दान करे, दूसरे हाथ को पता न पडे।'

सूफी फकीर कहते है 'नेकी कर, कुएँ मे डाल। हिसाब मत रख। किया भूल, कुए में डाल दे। बात खत्म हो गयी, जैसे कभी हुई ही न थी।'

लेकिन तुम जाओ अपने त्यागियो के पास, महात्माओ के पास, तुम उनके पास पूरा हिसाब पाओगे। हिसाब ठीक भी नही पाओगे, बहुत बढाया-चढाया हुआ है। हजार छोडे होगे तो लाख हो गये हैं। अब पूछना कौन है ? और त्याग की परीक्षा भी क्या है, कसौटी भी क्या है ? तुम्हारे पास लाख रुपये हैं तो तुम रुपये दिखा सकते हो, लेकिन जिसने लाख छोडे है उसके पास प्रमाण क्या है कि उसने लाख

छोडे कि दस लाख छोडे ? न केवल महात्मागण ऐसा करते है, महात्माओ के शिष्य उसको बढाते चले जाते है।

महावीर ने महल छाडा, धन-सम्पत्ति छोडी, जैनियो ने जो शास्त्र लिखे हैं, उनमे इतना बढा-चढा के लिखा है, वह सरासर झूठ है। क्योकि महावीर का साम्राज्य बडा छोटा-सा था, कोई बडा नही था। महावीर के समय भारत में दो हजार राज्य थे। कोई बहुत बडा नही था, एक छोटी डिस्ट्रिक्ट से ज्यादा नही, एक छोटे जिले से ज्यादा नही था। इतने हाथी-घोडे जितने जैनियो ने लिखे है, अगर होते तो आदमियो के रहने की जगह न रह जाती। लेकिन बढ-चढ जाता है।

कुरुक्षेत्र के मैदान मे युद्ध हुआ। हिन्दू उसकी जो कहानी बताते है, उसको अगर सुनो तो ऐसा लगता है कि उस युद्ध के लिए पूरी पृथ्वी कम पडेगी। कुरुक्षेत्र का छोटा-सा मैदान, उसमे अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ बन नहीं सकती लडना तो दूर, अगर वे प्रेम भी करना चाहे, शात खडे हो कर, तो भी सभव नही है। लडने के लिए थोडी जगह चाहिए, स्थान चाहिए! लेकिन बढता जाता है।

बुद्ध के भक्तो ने जो लिखा है वह सच नही है, क्योकि बुद्ध की भी जगह बडी छोटी थी, वह कोई बहुत बडा साम्राज्य नही था। लेकिन जिस तरह की कहानिया है और कहानियाँ बढती चली गयी है।

क्या ? इन कहानियो को बढाने का कारण क्या है ? कारण साफ है कि हम त्याग को भी धन की मात्रा से ही समझ पाते है, और कोई उपाय नही है।

समझो, अगर महावीर फकीर के घर पैदा होते और पास धन न होता, तो तुम कैसे जानते कि उन्होने त्याग किया ? वे घर छोड देते, लेकिन त्यागी तो नही हो सकते थे। महात्यागी तुम कैसे कहते ? था ही नही कुछ तो छोडा क्या ?

तुम्हे भीतर के रहस्य तो दिखायी नही पडते बस बाहर की चीजे दिखायी पडती है। तब तो इसका अर्थ हुआ कि केवल धनी ही त्यागी हो सकते है। तब तो इसका अर्थ हुआ कि त्यागी होने के पहले बहुत धनी हो जाना जरूरी है। तब तो इसका अर्थ हुआ कि परमात्मा के जगत मे भी अन्तत धन का ही मूल्य है, उसी से हिसाब लगेगा।

एक फकीर ने सब छोड दिया, उसके पास दो पैसे थे। महावीर ने भी सब छोड दिया, उनके पास करोड रुपये थे। परमात्मा के सामने हिसाब मे महावीर जीत जाएगे, गरीब हार जाएगा। दो पैसे छोडे! इन्होने करोड छोडे!

नहीं, परमात्मा के राज्य मे तुमने क्या छोडा, इसका सवाल नहीं है, छोडा या नही छोडा, बस इसका ही सवाल है, छोडा या छूटा, इसका ही सवाल है।

निरोध का अर्थ है छूट जाता है।

जिन्होने ससार के सत्य को देखा, उनके जीवन मे निरोध आ जाता है। उस निरोध को नारद ने भक्ति का स्वभाव कहा।

'वह भक्ति कामनायुक्त नही है, और निरोधस्वरूपा है।' उसका स्वरूप है निरोध।

जैसे ही ससार से कामना हटती है, वही कामना परमात्मा की दिशा में प्रार्थना बन जाती है, वही ऊर्जा! कोई अलग ऊर्जा नही है। वे ही हाथ जो भिक्षा-पात्र बने थे, प्रार्थना मे जुड जाते है। वही हृदय जो धन-सम्पत्ति को माँगता फिरता था, परम अहोभाव मे झुक जाता है। वही जीवन-ऊर्जा जो नीचे की तरफ भागती थी, खाई-खड्ड खोजती थी, आकाश की तरफ उठने लगती है।

'तेरी राह किसने बतायी न पूछ
दिले मुज्तरब राहबर हो गया।'

—तेरी राह किसने बतायी, यह मत पूछ—प्यासा दिल सद्गुरु हो गया, व्याकुल हृदय मार्गदर्शक बन गया!

'तेरी राह किसने बतायी न पूछ
दिले मुज्तरब राहबर हो गया।'

जिस दिन ससार मे तुम्हारा रस टूटता है, व्याकुलता जगती है परमात्मा की। वही मार्गदर्शक हो जाता है। वही तुम्हे ले चलता है। उसी के सहारे लोग पहुँचते है।

ससार की माँग करता हुआ व्यक्ति उन हजार चीजो की माँग मे चाहे तो परमात्मा की माँग को भी जोड सकता है, लेकिन वह फेहरिश्त मे एक नाम होगा—लम्बी फेहरिश्त मे! और मेरे खयाल से आखिरी होगा। अगर तुम्हारी फेहरिश्त में हजार नाम हैं तो वह एक हजार एक होगा।

मेरे पास लोग आते है और वे कहते है, 'हम प्रार्थना करना चाहते हैं, समय कहाँ!' इन्ही लोगो को मैं सिनेमा मे बैठे देखता हूँ। इन्ही लोगो को मैं क्लब-घर मे ताश खेलते देखता हूँ। इन्ही लोगो को अखबार को पढते देखता हूँ सुबह से उठ के। इन्ही लोगों को व्यर्थ की गपशप मे सलग्न देखता हूँ। ये ही लोग हजार तरह के उपद्रव में जुड जाते है, लडाई-झगडो मे जुड जाते है। हिन्दू मुसलमानो को काटने लगते हैं, मुसलमान हिन्दुओ को काटने लगते है। ये ही लोग! लेकिन जब प्रार्थना का सवाल उठता है तो कहते है, 'समय कहाँ!'

वे क्या कह रहे है? वे यह कह रहे है कि और बडी चीजे है परमात्मा से, समय पहले उनको दे, फिर बच जाए तो परमात्मा को दे। वे यह नही कह रहे हैं कि समय नही है, वे यह कह रहे है, समय तो है—समय तो सभी के पास बराबर है—लेकिन और चीजे ज्यादा जरूरी है। परमात्मा क्यू मे बिलकुल अन्तिम खडा

है। पहले धन इकट्ठा कर लें, मकान बना ले, इज्जत-प्रतिष्ठा सम्हाल लें, फिर । ऐसे परमात्मा प्रतीक्षा ही करता रहता है, 'फिर' कभी आता नही – आयेगा ही नही, क्योकि इस ससार की दौड कभी पूरी नही होती।

यहाँ कुछ भी पूरा होने वाला नही है। यहाँ तो जितना पियो उतनी प्यास बढती जाती है। यहाँ तो जितना भोजन करो उतनी भूख बढती जाती है। यहाँ तो जितनी तिजाडी भरती जाए, उतना ही आदमी भीतर कृपण होता चला जाता है। दुनिया बडी अद्भुत है! यहाँ गरीब के पास तो अमीर का दिल मिल भी जाए, अमीर के पास बिलकुल गरीब का दिल होता है।

इन हजार उपद्रवो मे अगर तुम सोचते हो कि परमात्मा को भी एक आकांक्षा बना लेगे, तो सम्भव नही है। परमात्मा तो अभीप्सा बने, तो ही तुम अधिकारी होते हो। अभीप्सा का अर्थ होता है सारी इच्छाएँ उसी की इच्छा मे परिणत हो जाएँ, सारे नदी-नाले उसी के सागर मे गिर जाएँ, उसके अतिरिक्त कुछ भी न सूझे, उसके अतिरिक्त हृदय मे कोई आवाज न रहे, उसके अतिरिक्त श्वासो में कोई स्वर न बजे, उसका ही एकतारा बजने लगे!

फकीरो के पास तुमने एकतारा देखा है। कभी सोचा न होगा, एकतारा प्रतीक है : परमात्मा के लिए एक ही तार काफी है। सितार मे और बहुत तार होते हैं, वीणा मे बहुत तार होते है और सारगी मे बहुत तार होते है – वे ससार के प्रतीक हैं, एकतारा परमात्मा का।

बस एकतारा! एक ही अभीप्सा का स्वर बजने लगे, दूसरी कोई ध्वनि भी न रह जाए, तो ही –

'रग रग में नेशे इश्क है, ऐ चारागर मेरे!
यह दर्द वह नही, कि कही हो, कही न हो।'
'रग रग मे नेशे इश्क है, ऐ चारागर मेरे!
यह दर्द वह नही, कि कही हो, कही न हो।'

जब परमात्मा का दर्द तुम्हारे रग-रग में समा जाता है, जब तुम्हारा रोआँ-रोआँ उसी को पुकारता है, सोते और जागते अहर्निश उसका ही स्मरण बना रहता है, करो कुछ भी, याद उसकी ही, जाओ कही, याद उसकी ही, बैठो कि उठो कि सोओ, याद उसकी ही – जब रग-रग मे ऐसा समा जाता है, तभी तुमने पात्रता पायी, तभी तुम अधिकारी हुए।

और ध्यान रखना, आज नही कल, इस महा क्राति मे उतरना ही पडेगा। लाख तुम कोशिश करो इस ससार को घर बना लेने की, सफलता मिलने वाली नही है। कोई कभी सफल नही हो पाया। सपने को सच कितना ही मानो, सपना एक दिन टूटता ही है। सपने का स्वभाव ही टूट जाना है। तुम उसे सच मान के थोडी-बहुत

देर नीद ले सकते हो, लेकिन सदा के लिए यह नीद नही हो सकती । सपने का स्वभाव ही शुरू होना, समाप्त होना है । इस ससार को, तुम लाख कोशिश करो हम सब कोशिश कर रहे है हम, हमारी सारी कोशिश यही है कि बुद्ध, नारद, मीरा, इन सबको हम गलत सिद्ध कर दे ।

हम सबकी कोशिश क्या है ? हमारी कोशिश यही है कि हम सिद्ध कर देंगे, ससार मे सुख है, हम सिद्ध कर देंगे कि परमात्मा आवश्यक नही है, हम सिद्ध कर देंगे कि जीवन परमात्मा के बिना पर्याप्त है, हम सिद्ध कर देंगे कि धन में है कुछ, कि यह सपना नही है, माया नही है, सत्य है ।

छोडो इस मूढता को, कभी कोई कर नही पाया ! लेकिन इस करने की कोशिश में लोग अपने जीवन को गँवा देते है ।

'हजार तरह तखय्युल ने करवटें बदली
कफस कफस ही रहा, फिर भी आशिया न हुआ ।'

नही, यह घर न बन पाएगा । यह जगह कारागृह है, यह घर न बन पाएगी । यहाँ तुम अजनबी हो । यहाँ तुम लाख उपाय करो, और कल्पनाएँ कितनी ही करवटे बदले हजार तरह से कल्पनाएँ सपने को सँजोएँ, लेकिन यह जाल कल्पना का ही रहेगा ।

कल्पना तुम्हारी है, सत्य परमात्मा का है । जब तक तुम सोचोगे-विचारोगे, तब तक तुम सपने मे रहोगे । जब तुम सोच-विचार छोडोगे और जागोगे, तब तुम जानोगे, सत्य क्या है ।

सत्य मुक्तिदायी है । और जो मुक्त करे वही घर है । जहाँ स्वतत्रता हो वही घर है ।

कारागृह मे और घर मे फर्क क्या है ? दीवाले तो उन्ही ईंटो की बनी हैं, दरवाजे उन्ही लकडियो के बने हैं ।

कारागृह और घर मे फर्क क्या है ? घर मे तुम मुक्त हो, कारागृह में तुम मुक्त नही हो – बस इतना ही फर्क है ।

घर स्वतत्रता है, कारागृह गुलामी है ।

'हजार तरह तखय्युल ने करवटें बदली
कफस कफस ही रहा, फिर भी आशिया न हुआ ।'

कारागृह में तुम बदलते रहो कल्पनाएँ अपनी, सोचते रहो, जाले बुनते रहो सपनो के, सजाते रहो भीतर से कारागृह को – नही, घर न हो पाएगा ।

जो जितनी जल्दी जाग जाए इस सम्बध मे उतना ही सौभाग्यशाली है, जितनी देर लगती है उतना ही समय व्यर्थ जाता है, जितनी देर लगती है उतनी ही गलत आदतें मजबूत होती चली जाती हैं; जितनी देर लगती है उतने ही बधन

और भी सख्त होते चले जाते है और तुम्हारी शक्ति क्षीण होती चली जाती है उन्हे तोडने की । इसलिए बुढापे की प्रतीक्षा मत करना । अगर समझ आए तो जब समझ आ जाए, क्षण-भर भी स्थगित मत करना उस समझ को ।

' लौकिक और वैदिक समस्त कर्मों के त्याग को निरोध कहते है । '

सस्कृत का मूल बहुत अद्भुत है । हिन्दी मे अनुवाद जो लोग करते हैं, उन्हे त्याग और निरोध का कोई भेद साफ नही है ।

सस्कृत का मूल कहता है

लोक, वेद, व्यापार, इस सबका निरोध हो जाए, त्याग हो जाए, वही भक्ति है ।

इसे समझे हम ।

' इस लोक और परलोक के व्यापार का निरोध हो जाए । '

इस लोक का व्यापार है धन की दौड है, पद की दौड है । परलोक का भी व्यापार है सुख, आनद, मोक्ष, वे भी यात्रा ही है, वे भी दौड है । किसी तरह इस ससार मे तुम ऊबते हो, ऊब नही पाए कि तुम दूसरे ससार के सपने देखने शुरू कर देते हो । इसी तरह सपने देखने वालो ने स्वर्ग बनाये, स्वर्ग मे हजार कल्पनाओं को जगह दी, जो-जो यहाँ पूरा नही हो पाया है, वह-वह वहाँ रख लिया है । और कभी-कभी तो कल्पनाएँ बडी मूढतापूर्ण मालूम होती है कि विचारो तो बडी हैरानी होती है ।

मुसलमान कहते है, उनके स्वर्ग मे बहिश्त में, शराब के चश्मे बह रह हैं । यहाँ पीने नही देते । यहाँ कहते है पाप और वहाँ चश्म बहाते है । तुम सोच सकते हो, बात बिलकुल सीधी है, यह चश्मा की कल्पना किसने की होगी । यह उन्होने की है जिनका यहा पीने मे रस था और त्याग कर दिया । यह सीधी-सी बात है, सीधा मनोविज्ञान है । यहाँ पीना चाहते थे, लेकिन डर की वजह से पी न पाये । यहाँ पीना चाहते थे, लेकिन धार्मिक शिक्षण की वजह से पी न पाये । यहाँ पीना चाहते थे लेकिन हिम्मत न जुटा पाये, तो अब स्वर्ग मे चश्मे बहा रहे है । यहाँ चुल्लू-चुल्लू मिलती है, वहाँ डुबकी लगाएँगे ।

' जाहिद के कस्रे-जुहद की बुनियाद है यही
मस्जिद बहुत करीब थी, मैखाना दूर था । '

वह जिनको तुम त्यागी समझते हो, उनके त्याग में अधिकतर तो त्याग यही है कि मस्जिद करीब थी और मधुशाला दूर थी इतना ही । इसका अर्थ यह हुआ कि धर्म का शिक्षण देने वाले लोग तो पास थे, शराब का विज्ञापन करने वाले लोग दूर थे । माँ-बाप, समाज, परिवार, मदिर-मस्जिद, स्कूल-विद्यालय, वे सब शराब के खिलाफ है, वे सब मदिर और मस्जिद के पक्ष मे है । इसलिए बैठ तो

गये मंदिर मे, बैठ तो गये मस्जिद में, लेकिन मन का राग, मन की कामना, कोई शिक्षण से थोड़े ही मिटती है, अनुभव से मिटती है। सोचते तो शराब की ही हैं, यहाँ नही मिली, तो अब कल्पना मे फैलाव करते है स्वर्ग में मिलेगी!

हिन्दुओं का स्वर्ग है . ।

और बड़े मजे की बात है, अगर तुम किसी भी जाति का स्वर्ग ठीक से पहचान लो तो तुम यह भी समझ जाओगे उस जाति ने किन चीजो की वर्जना की है। उस जाति के शास्त्रो को पढ़ने की जरूरत नही, उनका स्वर्ग समझ लो, फौरन पता चल जाएगा कि इस जाति ने किन-किन चीजो को जबरदस्ती त्यागा है।

हिन्दुओ के स्वर्ग में कल्पवृक्ष है, जहाँ सभी कामनाएँ पूरी हो जाती है, बैठ जाओ उसके नीचे बस! ऐसा भी नही कि कुछ समय का फासला पड़ता हो, समय लगता ही नही है। तुमने यहाँ कामना की कि वहाँ पूरी हुई! तुमने कहा, 'भोजन आ जाए', थाल आ गये! बस तुम यहाँ कह भी नही पाये थे और थाल मौजूद हो गये।

हिन्दुओ के स्वर्ग मे कल्पवृक्ष है — क्यो? क्योकि हिन्दुओं ने सभी इच्छाओं के त्याग का आग्रह किया है। सभी इच्छाओ का त्याग! स्वभावत जो किसी तरह अपने को समझा-बुझा के त्यागी हो जाएगा, वह इसी आशा मे जी रहा है कि कभी तो मरेंगे, यह देह तो कोई ज्यादा दिन चलने वाली नही है, और कुछ साल बीत जाएँ, फिर कल्पवृक्ष है! फिर उसके नीचे बैठ जाएँगे!

तुमने कभी देखा, दिन में कभी उपवास कर लो तो तुम रात-भर भोजन के सपने देखते हो! ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो तो सपने में स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ दिखायी पड़ती है।

ये सपने है कल्पवृक्ष! शराब के चश्मे! ये इस बात की खबर दे रहे है कि तुमने किस-किस चीज को जबरदस्ती छोड़ दिया है — अनुभव से नही, पक कर नही। संस्कार, शिक्षण, दबाव ।

'मस्जिद बहुत करीब थी, मैखाना दूर था!' उतने दूर जाने की तुम हिम्मत न जुटा पाये। जाते तो प्रतिष्ठा दाँव पे लगती थी। तो तुमने एक तरकीब निकाली कि यहाँ मस्जिद मे रहो, स्वर्ग मे मैखाने मे रह लेंगे। ऐसे तुमने अपने को समझाया। ऐसे तुमने समझौता किया।

तुम्हारे स्वर्ग तुम्हारी कल्पनाओ के जाल हैं, और तुम्हारे नरक ? स्वर्ग तुमने अपने लिए बनाये है और नरक दूसरो के लिए — वे भी बड़े विचारणीय है।

हिन्दुओ का नरक है, तो वहाँ भयंकर आग जल रही है, सतत अग्नि जलती है, बुझती नही। उसमें जलाये जा रहे हैं लोग। भारत गरमी से पीड़ित देश है।

यहाँ सूर्य तपता है। तो शीतलता स्वर्ग मे शीतलमद बहार बहती है। सुबह ही बनी रहती है स्वर्ग मे, दुपहर नही आती। बस सुबह की ही ताजगी बनी रहती है। फूल खिलते है, मुरझाते नही। और शीतल हवा बहती रहती है। नरक में भयकर लपटे हे। वह गरम देश की धारणा है।

तिब्बती, वे नही बनाते, वे नही कहते कि नरक में लपटें हैं। उनका स्वर्ग गरम और ऊष्ण है क्योकि ठढे मुल्क के लोग मरे जा रहे है ठढ से, नरक में बर्फ-ही-बर्फ जमी हे, उसमें लोग गल रहे है बर्फ मे।

न तो कही कोई स्वर्ग है, न कही कोई नरक है। स्वर्ग तुम बनाते हो अपने लिए। जो-जो कामनाएँ तुम पूरी करना चाहते थे और नही कर पाये, तो तुम स्वर्ग मे कर लेते हो। स्वर्ग हिन्दुओ का बिलकुल एयरकडीशड है, वातानुकूलित है। वहाँ कोई ताप नही लगती। पसीना नही आता स्वर्ग मे – पसीना आता ही नही।

और जो तुम छोड दिये हो, अपने लिए कल्पना कर रहे हो, और दूसरो ने नही छोडा समझो कि तुम शराब पीना चाहते थे और नही पी पाये, तो तुमने अपने लिए तो स्वर्ग मे इनजाम कर लिया और जो पी रहे है, उनके लिए क्या करोगे? उनको भी दण्ड तो मिलना ही चाहिए, क्योकि तुमने त्याग किया, उन्होने त्याग नही किया, तो उनको नरक की लपटो मे जलाया जाएगा। और वहाँ शराब तो दूर, पानी भी पीने को न मिलेगा। आग की लपटे होगी, कण्ठ आग से भरा होगा, और पानी नही मिलेगा। पानी की बूँद नही मिलेगी।

इससे पता चलता है तुम्हारे मन का, तुम्हारी खुद की परेशानी का, तुम्हारी हिसा का, तुम्हारी वासना का। न किसी स्वर्ग का इससे पता चलता है, न किसी नरक का इससे पता चलता है।

भक्ति तो उसे उपलब्ध होती है जिसको न इस ससार की कोई कामना रही न उस ससार की। जिसकी कामना का व्यापार निरुद्ध हो गया, जिसने कहा, 'अब हमे कुछ माँगना ही नही है, न यहाँ न वहाँ', माँग ही छोड दी – उसे सब मिल जाता है 'यही'।

'उस प्रियतम भगवान में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषय मे उदासीनता को भी निरोध कहते हैं।'

बिलकुल ठीक!

'उस प्रियतम भगवान में अनन्यता' . ! जैसे हम उसके साथ एक हो गये, अनन्य! जरा भी भेद न रह जाए! रत्ती-भर भी फासला न रह जाए! मैं और तू का भी फासला न रह जाए!

'उस प्रियतम में अनन्यता अपने-आप ही उसके प्रतिकूल विषय मे उदासीनता बन जाती है।'

'उदासीनता' शब्द को समझ लेना जरूरी है। उदासीनता निरोध का मार्ग है।

जिसको तुम त्यागी कहते हो, वह उदासीन नही होता। जो आदमी शराब का त्याग करता है, वह शराब के प्रति उदासीन नही होता, शराब के प्रति बडे विरोध मे होता है – उदासीन कैसे होगा ? – विरोध मे होता है।

उदासीन का तो अर्थ है हमें कोई प्रयोजन नही। विरोध का अर्थ है शराब जहर है।

जो आदमी कामवासना मे उदासीन होता है, वह कामवासना के विरोध में नही होता। अगर कोई दूसरा कामवासना मे जा रहा है तो इससे उसके मन में निंदा पैदा नही होती – 'यह उसकी मर्जी है! यह उसको समझ है! उसका समय न आया होगा, कभी आयेगा।' उस पे करुणा आ सकती है, क्रोध नही आता।

जो आदमी धन मे उदासीन है, उसके मन मे धन की कोई निंदा नही होती। वह धन को पाप नही कहता। वह इतना ही कहता है कि धन की उपयोगिता है, लेकिन वह उपयोगिता बडी क्षणिक है। वह इतना ही कहता है कि धन सब कुछ नही है। वह यह नही कहता कि धन कुछ भी नही है। वह इतना ही कहता है, संसार मे उपयोगी होगा, लेकिन संसार सब कुछ नही है। वह धन के विरोध मे नही है।

ऐसे त्यागी है कि अगर उनके सामने तुम रुपये ले जाओ तो वे आँख बद कर लेते है। अब यह उदासीनता न हुई। ऐसे त्यागी है जो धन को हाथ से नही छूते। यह उदासीनता न हुई।

एक आदमी मुझे मिलने आया – एक सन्यासी। कोई दो वर्ष हुए। तो मैने उन्हे कहा कि ठीक है, कभी एक शिविर मे आ जाओ तो ध्यान करो। उन्होने कहा कि यह जरा मुश्किल है। उनके साथ एक आदमी और था। तो मैने पूछा, 'इसमें क्या मुश्किल है ?'

उन्होने कहा, 'मै पैसा नही छूता। तो ट्रेन मे सफर करो तो टिकट भी खरीदनी पडती है।'

तो मैने कहा, 'तुम यहाँ तक कैसे आये ?'

तो वे बोले, 'यह आदमी साथ है। पैसे यह रखता है, मै छूता भी नही। तो यह साथ आने को तैयार हो तो ही मै शिविर मे आ सकता हूँ।'

अब यह तो पैसे से भी ज्यादा बडी गुलामी हो गयी। पैसा, और यह आदमी भी उलटा! इससे तो अकेले पैसे की गुलामी भी ठीक थी, अब यह कम-से-कम आदमी एक और उपद्रव है। और पैसे इन्ही के है, रखता वह है! यह दोहरी गुलामी हुई।

उदासीनता का अर्थ है हो तो हो ठीक, न हो तो न हो ठीक। उदासीनता मे कोई पक्षपात नही है। उदासीनता बडी अद्‌भुत बात है। वह वैराग्य का परम लक्षण है।

इसलिए अगर तुम किसी विरागी मे पाओ उदासीनता की जगह विरोध, तो समझना कि चूक हो गयी। अगर वह घबडाये तो समझना कि रस कायम है, जिस चीज मे, घबडाता है उसी का रस कायम है। अगर धन छूने से डरे तो समझना कि धन का लोभ भीतर मौजूद है। अगर स्त्री को देखने से डरे तो समझना कि कामवासना भीतर मौजूद है। क्योकि हम उसी से डरते है जिसमे गिरने की हमे सभावना मालूम होती है, शका मालूम होती है।

उदासीनता का अर्थ है कोई फर्क नही पडता।

ऐसा हुआ कि बुद्ध एक वृक्ष के नीचे ध्यान करते थे, पूर्णिमा की रात थी, और पास के नगर से कुछ युवक, धनपतियो के लडके, एक वेश्या को ले के जगल में आ गये थे – मौज-रग करने। वे तो शराब पी के मस्त हो गये, वेश्या ने मौका देखा कि वे तो शराब पी के होश खो दिये है, वह भाग खडी हुई।

जब सुबह होने के करीब आयी और उनको ठढ लगी और होश आया और देखा कि वह वेश्या तो भाग गयी है, तो वे उसकी खोज मे निकले। उसी रास्ते पर बुद्ध ध्यान करते थे, उनके पास आगे और उन्होने कहा कि 'यहाँ से कोई स्त्री तो नही निकली ?'

बुद्ध ने कहा, 'कोई निकला जरूर, लेकिन स्त्री थी या पुरुष, यह जरा कहना मुश्किल है – क्योकि मेरा रस ही न रहा। कोई निकला जरूर, लेकिन स्त्री थी या पुरुष, इसमे मेरा रस न रहा।'

यह उदासीनता है।

बुद्ध ने कहा कि जब तक मेरा रस था, तब तक गौर से देखता भी था कौन कौन है! अब मेरा कोई रस नही है।

जब रस खो जाता है तो सिर्फ एक उदासीनता होती है, एक शाति तुम्हें घेर लेती है। उसमें कोई पक्षपात नही होता।

'उस प्रियतम मे अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषय मे उदासीनता को भी निरोध कहते हैं।'

'पीना-न-पीना एक है जाहिद! खता मुआफ
नीयत जब एतबार के काबिल नही रही।'

जब तक नीयत पर एतबार न हो, जब तक अपने भीतर की स्थिति पे भरोसा न हो तब तक तुम कसमे भी ले लो, तो कुछ फर्क नही पडता, व्रत धारण कर लो, कोई फर्क नही पडता। क्योकि असली बात तो नीयत है। तुम

पियो-न पियो, इससे कोई फर्क नही पडता, घर मे रहो कि बाहर रहो, इससे कोई फर्क नही पडता, पूजा करो कि न करो, इससे कोई फर्क नही पडता – असली सवाल तुम्हारे भीतर की नीयत का है। अगर नीयत साफ है तो तुम कही भी रहो, मदिर ही पाओगे। अगर नीयत साफ नही है, तो तुम मदिर में रहो, तुम वेश्या-गृह में ही रहोगे। क्योकि आदमी अपनी नीयत मे रहता है, अपने भीतर की मनोदशा में रहता है।

'उस प्रियतम मे अनन्यता...।'

'कैसी तलब, कहाँ की तलब, किसलिए तलब
हम है तो वह नही है, वह है तो हम नही।'

एक ही बच सकता है प्रेम मे, दो नही। या तो परमात्मा बचेगा तो तुम न बचोगे, या तुम बचोगे तो परमात्मा न बचेगा।

'कैसी तलब, कहाँ की तलब, किसलिए तलब
हम है तो वह नही है, वह है तो हम नही।'

अनन्यता का अर्थ है एक ही बचेगा।

'प्रेम गली अति साकरी तामे दो न समाय' – उसमें दो नही समा सकते।

तो भक्त धीरे-धीरे भगवान हो जाता है, भगवान धीरे-धीरे भक्त हो जाता है।

रामकृष्ण पूजा करते हैं तो भोग लगाने के पहले खुद चख लेते है। मदिर के ट्रस्टियो ने बुलाया कि 'यह तो पूजा न हुई। किस शास्त्र मे लिखा है? भगवान को भोग पहले लगाओ, फिर जो बचे, वह तुम भोजन करो। लेकिन यह तो बात तो गलत हो रही है। यह उलटा हो रहा है। तुम भगवान को झूठा भोग लगा रहे हो! तुम पहले चखते हो।'

रामकृष्ण ने कहा, 'सम्हाल लो फिर अपनी नौकरी, मै चला। क्योकि मेरी माँ जब भी भोजन बनाती थी तो पहले खुद चखती थी, फिर मुझे देती थी। जब माँ का प्रेम इतनी फिक्र करता था तो यह प्रेम तो उससे भी बडा है। मै बिना चखे भोग नही लगा सकता भगवान को, पता नही लगाने योग्य है भी या नही!'

ऐसी अनन्यता, ऐसी निकटता, इतनी समीपता, कि धीरे-धीरे सीमाएँ खो जाएँ।

तो कभी ऐसा होता कि रामकृष्ण दिन-भर नाचते रहते और कभी ऐसा होता कि पखवाडा बीत जाता और मदिर में न जाते। फिर बुलाये गये कि यह क्या मामला है, मदिर खाली पडा रहता है, पूजा नही होती! रामकृष्ण कहते, 'जब होती है तब होती है, जब नही होती तब नही होती। जब 'वह' बुलाता है और जब अनन्यता का भाव जगता है तभी ..। जब दूरी रहती है, तब क्या

सार ? जब मैं रहता हूँ तब पूजा किसकी ? जब वही बचता है तभी होती है। अब यह मेरे हाथ मे नही है कि वही बचे। जब होना है तब होता है। सहजस्फूर्त है।'

रामकृष्ण जैसा पुजारी फिर किसी मंदिर को न मिलेगा। दक्षिणेश्वर के भगवान धन्यभागी हैं कि रामकृष्ण जैसा पुजारी मिला।

अनन्य-भाव का अर्थ है 'मै' और 'तू' दो नही, एक ही बचता है। वस्तुत दानो तरफ से प्रेमी-प्रेयसी या भक्त और भगवान, दोनो खोते जाते है और दोनो के बीच मे एक नये सत्य का आविर्भाव होता है, एक नये ज्योतिर्मय चैतन्य का आविर्भाव होता है, जिसमे भक्त भी खो गया होता है एक कोने से, दूसरे कोने से भगवान भी खो गया होता है।

भक्त और भगवान तो द्वैत की भाषा है, भक्ति तो अद्वैत है।

'उस प्रीतम मे अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषय मे उदासीनता को भी निरोध कहते है।'

और जिसने भी उसके साथ ऐसी एकतानता साध ली, वह ससार के प्रति उदासीन हो जाता है, छोडना नही पडता ससार, त्यागना नही पडता ससार, सब छूट जाता है, व्यर्थ हो जाता है, सार्थकता ही नही रह जाती, छोडने को क्या बचता है!

'अपने प्रीतम को छाड कर दूसरे आश्रयो के त्याग का नाम अनन्यता है।'

परमात्मा तुम्हे ऐसा भर दे कि तुम्हारे भीतर कोई रत्ती-भर जगह न बचे जो उससे भरी हुई नही है, तुम लबालब उससे भर जाओ, तुम ऊपर से बहने लगो ऐसे भर जाओ, कोई दूसरा आश्रय न बचे, किसी दूसरे की तरफ कोई और लगाव न रह जाए, सभी लगाव उस एक के प्रति ही समर्पित हो जाए।

'अपने प्रीतम को छाड कर दूसरे आश्रयो के त्याग का नाम अनन्यता है।'

'देखता था मैं निगाहो से हर एक जा तुझको
देखता था मैं निगाहो मे हर एक जा तुझको
और उन्ही मे तू निहा था, मुझे मालूम न था।'

'आँखो से खोजता था तुझे सब जगह और यह मुझे पता नही था कि तू मेरी आँखो मे ही बैठा हुआ है! तू खोजने वाले मे ही छिपा है। तू मेरे देखने में ही छिपा है। और मैं निगाहो से खोजता था हर एक जा तुझको, और यह पता न था।'

तुम जब तक परमात्मा को बाहर खोज रहे हो, खोज न पाओगे। वह उन निगाहो में ही छिपा है, उस दृष्टि मे ही, उस देखने की क्षमता मे ही! वह तुम्हारे होश में छिपा है। वह तुम्हारे होने मे छिपा है।

'देखता था मै निगाहो से हर एक जा तुझको

और उन्ही मे तू निहा था, मुझे मालूम न था।'

तुम मदिर हो।

परमात्मा को खोजने किसी और मदिर में जाने की जरूरत नही है, अपने ही भीतर डूब कर पाया है जिन्होने भी पाया है।

अगर तुम सारे आसरे छोड दो, सारे सहारे छोड दो, तुम अपने मे ही डूब जाओगे। जो भी तुम पकडे हो आसरे की तरह, वही तुम्हें अपने से बाहर अटकाये हुए है। घन का आसरा है, पद का आसरा है, मित्र का आसरा है, सगी-साथियो का, परिवार का आसरा है, पति-पत्नी का आसरा है! जिन-जिन आसरो को तुम सोच रहे हो कि ये सहारे हैं, सुरक्षा है, वही तुम्हें बाहर अटकाये है।

छोड दो सब आसरे!

बे-आसरे हो जाओ!

बे-सहारा हो जाओ!

असहाय हो जाओ!

और अचानक तुम पाओगे तुम्हें अपने ही भीतर वह भूमि मिल गयी जिसे जन्मो-जन्मो खोजते थे और न पाते थे, अपने ही भीतर वह हाथ मिल गया जो शाश्वत है। अब किसी और आसरे की कोई जरूरत न रही।

'लौकिक और वैदिक कर्मों मे भगवान के अनुकूल कर्म करना ही उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता है।'

और फिर ऐसा व्यक्ति, जिसकी अनन्यता सध गयी परमात्मा से, जिसका तार मिल गया, तन्मयता बँध गयी, एक सामजस्य आ गया, हाथ परमात्मा के हाथ में हो गया जिसका—ऐसा व्यक्ति फिर उसके ही अनुकूल कर्म करता है 'वह' जो करवाता है वही करता है। फिर उसका अपना कर्ता-भाव चला जाता है। फिर वह कहता है, 'जो वह करवाये! जो उसकी मर्जी! जो नाच नचाये, वही मेरा जीवन है।' फिर अपनी तरफ से निर्णय लेना, अपनी तरफ से विचार करना, सम्भव नही है।

'विधि-निषेध से अतीत अलौकिक प्रेमप्राप्ति का मन मे दृढ निश्चय हो जाने के बाद भी शास्त्र की रक्षा करनी चाहिए, अन्यथा गिर जाने की सभावना है।'

यह सूत्र महत्त्वपूर्ण है, क्योकि ऐसा घटना है। जब तुम्हे ऐसा लगता है कि तुम परमात्मा के अनुसार चलने लगे, जब तुम्हे ऐसा लगता है कि अब तो तुम एक हो गये, तो सारी विधि-निषेध के पार हो गये, अब समाज का कोई नियम तुम पे लागू नही होता।

सच है, कोई नियम लागू नही होता, लेकिन इसका यह अर्थ नही कि तुम नियम छोड के चलने लगो। तुम पर नियम नही लागू होता, समाज तो अब भी

नियम मे जीता है। तुम जिस समाज में हो, उस समाज के लिए तुम अड़चन मत बनो, सहारा बनो, उस समाज के लिए तुम उपद्रव का कारण न बनो, मार्ग बनो।

इसलिए नारद कहते है, 'विधि-निषेध से अतीत ।' कोई नियम लागू नही होता प्रेम पर, भक्त पर। वह पहुँच गया वहां, सब नियमो के पार, परम नियम उसे मिल गया प्रेम का, अब उस पे कोई नियम लागू नही होता। लेकिन फिर भी, अगर वह रास्ते पे चले तो उसे बाएँ ही चलना चाहिए, क्योंकि सारा ट्रैफिक बाएँ ही चल रहा है। अगर वह दाएँ चलने लगे, वह कहे कि हम तो भक्ति को उपलब्ध हो गये, तो खतरा है—खतरा है पतन का। असल में इस तरह का आग्रह वही आदमी करेगा जो अभी उपलब्ध ही नही हुआ है, वस्तुत उपलब्ध नही हुआ है। क्योंकि उपलब्ध हो के तो कोई नही गिरता, असम्भव है गिरना।

इसे थोड़ा गौर से समझ लेना।

जो उपलब्ध नही हुआ है परमात्मा को, वही इस तरह का आग्रह करेगा कि मुझ पे तो कोई नियम लागू नही होता। यह अहकार की नयी उद्घोषणा है। यह अहकार का नया खेल शुरू हुआ। एक नया ससार चला अब। वह कहेगा, 'मुझ पे कोई नियम लागू नही होता। मै तो अब उसके ही सहारे जीता हूँ। इसलिए जो 'वह' करवाता है वही करता हूँ।'

इसकी आड मे कही तुम अपने अहकार को मत छिपा लेना। कही ऐसा न हो कि यह भी धोखा हो तुम्हारा।

इसलिए सूत्र कहता है सजग रहना। ऐसी स्थिति भी आ जाए कि तुम विधि-निषेध के पार हो जाओ, तो भी शास्त्र की रक्षा जारी रखना। उस रक्षा में तुम्हारी रक्षा है। उस रक्षा मे दूसरो की रक्षा तो है ही, तुम्हारी भी रक्षा है। क्यो? क्योकि तुम अपने अहकार को सजाने-सँवारने का नया उपाय न पा सकोगे।

और स्मरण रखना, जो विधि-निषेध के पार हो गया, वह विधि निषेध को तोडने की चिंता मे नही पडता। जो पार ही हो गया, वह चिंता क्या करेगा तोडने की! वह कमल जैसा पार हो जाता है पानी के। जो पार हो गया है वह जीवन को चुपचाप स्वीकार कर लेता है जैसा है, लोग जैसे जी रहे है, ठीक है।

छोटे बच्चे खिलौनो से खेल रहे है, तुम वहां जाते हो, तुम जानते हो, वे खिलौने है, तुम जानते हो, खेल के नियम सब बनाये हुए है। लेकिन बाप भी छोटे बच्चो के साथ जब खेलता है तो खेल के नियम मानता है। वह यह नही कह सकता कि मै कोई छोटा बच्चा नही हूँ, मै नियम के बाहर हूँ। छोटे बच्चे के साथ छोटे बच्चो की तरह ही व्यवहार करेगा—यही प्रौढ का लक्षण है।

तो जो व्यक्ति वस्तुत भक्ति के परम सूत्र को उपलब्ध होता है, वह तोड नही देता जीवन की व्यवस्था को। वह कोई अराजकता नही ले आता।

जीसस ने कहा है कि मैं शास्त्र को खंडित करने नहीं, पूर्ण करने आया हूँ।

वह शास्त्र के मूल स्वभाव का पुनः पुनः उद्घाटन करता है। वह शास्त्र के खो गये सूत्रों को पुनः पुनः पुनरुज्जीवित करता है। वह शास्त्र पर जम गयी धूल को हटाता है। वह शास्त्र के दर्पण को निखारता है ताकि फिर तुम शास्त्र के दर्पण में अपने चेहरे को देख सको, फिर तुम अपने को पहचान सको। सदियों में शास्त्र पर जो धूल जम जाती है, सदियों में शास्त्र पर जो व्याख्या की परतें जम जाती हैं, उनको फिर वह अलग कर देता है, लेकिन शास्त्र की रक्षा करना है। क्योंकि शास्त्र तो उनके वचन हैं जिन्होंने जाना। वे बुद्धपुरुषों के वचन हैं। व्याख्याएँ कितनी ही गलत हो गयी हों, लोगों ने कितना ही गलत अर्थ लिया हो, लेकिन मूल तो बुद्धपुरुषों से आता है, मूल तो गलत नहीं हो सकता।

मुझसे लोग पूछते हैं कि मैं क्यों शास्त्रों की व्याख्या कर रहा हूँ। इसीलिए कि जो धूल जमी हो वह अलग हो जाए, ताकि मैं तुम्हें उनका खालिस सोना जाहिर कर सकूँ। अगर मैं तुम्हें कभी शास्त्र के विपरीत भी मालूम पड़ूँ, तो समझना कि तुम्हारे समझने में कहीं भूल हो गयी है, तो समझना कि तुमने शास्त्र का जो अर्थ समझा था वह अर्थ शास्त्र का न था, इसलिए मैं विपरीत मालूम पड़ रहा हूँ। अन्यथा मैं भी तुमसे कहता हूँ कि शास्त्र का खंडन करने नहीं, शास्त्र का शुद्धतम स्वरूप आविष्कृत करने की सारी चेष्टा है।

'लौकिक कर्मों को भी तब तक (बाह्य ज्ञान रहने तक) विधिपूर्वक करना चाहिए, पर भोजनादि कार्य, जब तक शरीर रहेगा, होते रहेंगे।'

जो बाह्य कर्म हैं, उन्हें साधारणतः जैसी विधि हो, जैसी समाज की धारणा हो, वैसे ही करते जाना चाहिए—बाह्य ज्ञान रहने तक! क्योंकि भक्ति में ऐसी घड़ियाँ भी आती हैं जब बाह्य ज्ञान बिलकुल खो जाता है, तब सूत्र लागू नहीं होता। क्योंकि ऐसी भी घड़ियाँ आती हैं जब मस्ती ऐसे शिखर छूती है कि बाह्य ज्ञान ही नहीं रह जाता। रामकृष्ण छह-छह दिन के लिए बेहोश हो जाते थे। तब फिर अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। तब वे अपने में इतने लीन हो जाते थे, इतने दूर निकल जाते थे कि उनके शरीर को ही सम्हाल के रखना पड़ता था।

'लेकिन भोजनादि कार्य तब तक होते रहेंगे जब तक शरीर है।'

इस सूत्र से यह समझ लो कि जीवन में वासना तो हटनी चाहिए, जरूरतें हटाने का सवाल नहीं है। भोजन तो जरूरी है। वस्त्र जरूरी है। छप्पर जरूरी है। जो जरूरी है उसका कोई निषेध नहीं है, निषेध है गैरजरूरी का, जो कि केवल मन की आकांक्षा से पैदा होता है, जिसके बिना तुम रह सकते थे, मजे से रह सकते थे, जिसके बिना कोई अड़चन न पड़ती थी, शायद और भी मजे से रह सकते।

एक बहुत बड़ा विचारक हुआ अल्डुअस हक्सले। कैलीफोर्निया में उसका

मकान था, और जीवन-भर उसने बड़ी बहुमूल्य चीजे इकट्ठी की थी—पुराने शास्त्र, बहुमूल्य अनूठी किताबे, चित्र, पेंटिंग, मूर्तियाँ, शिल्प। बड़ा सवेदनशील व्यक्ति था। उसके पास बहुमूल्य भण्डार था अनूठी चीजो का। सारे ससार से उसने इकट्ठा किया था। उसकी कीमत कूतनी आसान नही। अचानक एक दिन आग लग गयी और सब जल के राख हो गया।

अल्डअस हक्सले ने कहा कि मैंने तो सोचा था कि मैं मर जाऊँगा इसके दुख मे, लेकिन अचानक, जिसकी कभी अपेक्षा भी न की थी, ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे एक बोझ हलका हो गया। एक बोझ! वह खुद भी चौंका यह अनुभव देख के। सामने ही जल रहा है उसका विशाल सग्रहालय और वह सामने खड़ा है लपटो के, और उसने कहा कि मुझे लगा कि मैं एकदम हलका हो गया हू और मुझे ऐसा लगा जैसे मै स्वच्छ हो गया हू। 'आइ फैल्ट क्लीन'। एक ताजगी!

तुम्हें पता नही है कि बहुत-सी गैरजरूरी चीजो ने तुम्हे जीवन तो नही दिया है, बोझ दिया है। उनके बिना तुम ज्यादा स्वस्थ हो सकते थे। उनके बिना तुम ज्यादा प्रसन्न हो सकते थे। उन्होने सिर्फ तनाव दिया है, चिंता दी है।

जरूरत को छोड़ने का कोई सवाल नही है। भक्ति कोई जबरदस्ती त्याग नही सिखाती। यह भक्ति की खूबी है और उसकी स्वाभाविकता है। जीवन की सामान्य जरूरते पूरी होनी ही चाहिए।

तो भक्ति कोई जबरदस्ती नही करती कि तुम नग्न खड़े हो जाओ, तुम उपवास करो, तुम शरीर को सताओ व्यर्थ—ऐसी दुष्टता, ऐसी हिंसा भक्ति नही सिखाती।

भक्ति कहती है यह जो परमात्मा का मदिर है तुम्हारा घर, इसकी साज-सम्हाल जरूरी है। यह उसका घर है। इसे तुम्हे 'उसके' योग्य स्वच्छ और ताजा और सुदर रखना चाहिए। लेकिन जरूरत और वासना मे फर्क समझना आवश्यक है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम मे था, शादी करना चाहता था। तो उस स्त्री ने कहा, 'नसरुद्दीन, और तो सब ठीक है, एक बात मैं पूछना चाहती हूँ, कि तुम उन पुरुषो मे तो नही हो जो शादी के बाद पत्नी को दफ्तरो मे काम करवाते है या नौकरी करवाते है?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'भूल के भी इस तरह का मत सोच। कभी भी मेरी पत्नी काम पे जाने वाली नही है। हाँ, एक बात और, अगर कपड़ा, रोटी, मकान जैसी विलास की चीजो की तूने माँग की तो फिर मैं नही जानता । विलास की चीजे—कपड़ा, रोटी, मकान! अन्यथा मेरी पत्नी कभी काम करने जाने वाली नही है। लेकिन रोटी, कपड़ा, मकान, ऐसी विलास की चीजे मत माँगना।'

विलास और जरूरत में फर्क करना जरूरी है।

भक्ति स्वस्थ सहज मार्ग है। स्वाभाविक, अस्वाभाविक नहीं। भक्ति तुम जैसे हो, तुम्हारी जरूरतों को स्वीकार करती है। कहीं कोई अकारण अपने को कष्ट देना, पीड़ा देना, व्यर्थ के तनाव खड़े करने, उनसे आदमी परमात्मा के प्रेम को उपलब्ध नहीं होता, उनसे तो और सघन अहंकार को उपलब्ध होता है।

भक्ति त्याग नहीं है, निरोध है जो अपने से छूट जाए। जो व्यर्थ है छूट जाएगा, जो सार्थक है, जरूरी है, शेष रहेगा।

इसलिए आखिरी सूत्र है 'लौकिक कर्मों को भी तब तक (बाह्य ज्ञान रहने तक) विधिपूर्वक करना चाहिए, पर भोजनादि कार्य जब तक शरीर रहेगा, होते रहेंगे।'

भक्ति की यह स्वाभाविकता ही उसके प्रभाव का कारण है।

भक्ति बड़ी संवेदनशील है। वह जीवन को कुरूप करने के लिए उत्सुक नहीं है, जीवन का सौंदर्य स्वीकार है। क्योंकि जीवन अन्यथा परमात्मा का ही है, अन्ततः वही छिपा है! उसको ध्यान में रख कर ही चलना उचित है।

जो व्यर्थ है वह छूट जाए, जो सार्थक है वह सम्हल जाए, जो कूड़ा-कर्कट है, वह अपने-आप गिर जाए, जो बहुमूल्य है वह बचा रहे।

भक्ति को अगर तुम ठीक से समझो तो तुम पाओगे धर्म की उतनी सहज, स्वाभाविक और कोई व्यवस्था नहीं है।

आज इतना ही।

चौथा प्रवचन

दिनांक १४ जनवरी, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना

सहजस्फूर्त अनुशासन है भक्ति

पहला प्रश्न जीवन की व्यर्थता का बोध ही क्या जीवन में अर्थवत्ता का प्रारम्भ-बिन्दु बन जाता है ?

बन सकता है, न भी बने। सम्भावना खुलती है, अनिवार्यता नहीं है। जीवन की व्यर्थता दिखायी पड़े तो परमात्मा की खोज शुरू हो सकती है-शुरू होगी ही, ऐसा जरूरी नहीं है।

जीवन की व्यर्थता पता चले तो आदमी निराश भी हो सकता है, आशा ही छोड़ दे, व्यर्थता में ही जीने लगे, व्यर्थता को स्वीकार कर ले, खोज के लिए कदम न उठाये-तो जीवन तो दूभर हो जाएगा, बोझ हो जाएगा, परमात्मा की यात्रा न होगी।

इतना तो सच है कि जिसने जीवन की व्यर्थता नहीं जानी, वह परमात्मा की खोज पर नहीं जाएगा, जाने की कोई जरूरत नहीं है। अभी जीवन में ही रस आता हो तो किसी और रस की तरफ आख उठाने का कारण नहीं है।

फिर जीवन की व्यर्थता समझ में आये तो दो सम्भावनाएं हैं या तो तुम उसी व्यर्थता में रुक के बैठ जाओ और या उस व्यर्थता के पार सार्थकता की खोज करो-तुम पर निर्भर है।

नास्तिक और आस्तिक का यही फर्क है, यही फर्क की रेखा है।

नास्तिक वह है जिसे जीवन की व्यर्थता तो दिखायी पड़ी, लेकिन आगे जाने की, ऊपर उठने की, खोज करने की सामर्थ्य नहीं है, रुक गया, 'नहीं' में रुक गया, 'हां' की तरफ न उठ सका, निषेध को ही धर्म मान लिया, विधेय की बात ही भूल गया।

आस्तिक नास्तिक से आगे जाता है।

आस्तिक नास्तिक का विरोध नहीं है, अतिक्रमण है। आस्तिक के जीवन में भी नास्तिकता का पड़ाव आता है, लेकिन उस पे वह रुक नहीं जाता। वह उसे पड़ाव ही मानता है और उससे मुक्त होने की चेष्टा में संलग्न हो जाता है। क्योंकि जहाँ 'नहीं' है वहाँ 'हाँ' भी होगा। और जिस जीवन में हमने व्यर्थता

पहचान ली है, उस जीवन के किसी तल की गहराई पर सार्थकता भी छिपी होगी, अन्यथा व्यर्थता का भी क्या अर्थ होता है ?

जिसने दुख जाना वह सुख को जानने में समथ है, अन्यथा दुख को भी न जान सकता। जिसने अधकार को पहचाना उसके पास आँखे है जो प्रकाश को भी पहचानने में समथ है ।

अधो को अँधेरा नही दिखायी पडता । साधारणत हम सोचते है कि अधे अँधेरे मे जीते होगे-गलत है खयाल । अँधेरे को देखने के लिए भी आँख चाहिए। अँधेरा भी आँख की ही प्रतीति है । तुम्हे अँधेरा दिखायी पडता है आँख बद कर लेने पर, क्योकि अँधेरे को तुमने देखा है । जन्म से अधे, जन्माध व्यक्ति को अँधेरा भी दिखायी नही पडता । देखा ही नही है कुछ, अँधेरा कैसे दिखायी पडेगा ?

तो जिसको अँधेरा दिखायी पडता है, उसके पास आख है, अँधेरे मे ही रुक जाने का कोई कारण नही है । और जब अँधेरा अँधेरे की तरह मालूम पडता है तो साफ है कि तुम्हारे भीतर छिपा हुआ प्रकाश का भी कोई स्रोत है, अन्यथा अँधेरे को अँधेरा कैसे कहते ? कोई कसौटी है तुम्हारे भीतर, कही गहरे मे छिपा मापदण्ड है।

अँधेरे पे कोई रुक जाए तो नास्तिक, अँधेरे का पहचान के प्रकाश की खोज में निकल जाए तो आस्तिक । अँधेरे को देख के कहने लगे कि अँधेरा ही सब कुछ है तो नास्तिक, अँधेरे का जान के अभियान पर निकल जाए, खोजने निकल जाए, कि प्रकाश भी कही होगा, जब अँधेरा है तो प्रकाश भी होगा । क्योकि विपरीत सदा साथ मौजूद होते है ।

जहाँ जन्म है वहाँ मृत्यु होगी । जहा अँधेरा है वहाँ प्रकाश होगा । जहाँ दुख है वहाँ सुख होगा । जहाँ नरक अनुभव किया है तो खोजने की ही बात है, स्वर्ग भी ज्यादा दूर नही हो सकता ।

स्वर्ग और नरक पडोस-पडोस मे है, एक-दूसरे मे जुडे हैं।

अगर तुमने जीवन मे क्रोध का अनुभव कर लिया तो समझ लेना कि करुणा भी कही छिपी है – खोजने की बात है । तुमने पहली परत छू ली करुणा की ! क्रोध पहली परत है करुणा की। अगर तुमने घृणा को पहचान लिया तो प्रेम को पहचानने मे देर भला लगे, लेकिन असम्भावना नही है।

प्रश्न महत्त्वपूर्ण है ।

जीवन की व्यर्थता तो अनिवार्य है, लेकिन पर्याप्त नही है। उतने को ही परमात्मा की शुरुआत मत समझ लेना । उतने मे ही 'अथातो' का बिन्दु न आ जाएगा । उतना जरूरी है । उतना तो चाहिए ही । पर उस पर तुम रुक भी सकते हो ।

पश्चिम में बडा विचारक है ज्याँ पाल सार्त्र । वह कहता है, 'अँधेरा ही

सब कुछ है। दुख ही सब कुछ है। दुख के पार कुछ भी नही है। दुख के पार तो सिर्फ मनुष्यो की कल्पनाओ का जाल है। विषाद सब कुछ है। सताप सब कुछ है। बस नरक ही है, स्वर्ग नही है।'

बुद्ध ने भी एक दिन जाना था दुख है। सार्त्र ने भी जाना कि दुख है। यहाँ तक दोनो साथ-साथ है, फिर राहे अलग हो जाती हैं। फिर बुद्ध ने खोजा कि दुख क्यो है। और दुख है तो दुख के विपरीत दुख का निरोध भी होगा। तो वे खोज पर गये। दुख का कारण खोजा। दुख मिटाने की विधियाँ खोजी, और एक दिन उस स्थिति को उपलब्ध हो गये, जो दुख-निरोध की है, आनद की है।

सार्त्र पहले कदम पे रुक गया। बुद्ध के साथ थोडी दूर तक चलता है, फिर ठहर जाता है। वह कहता है, 'आगे कोई मार्ग नही है, बस यही सब समाप्त हो जाता है।'

तो सार्त्र अधकार को ही स्वीकार करके जीने लगा, ऐसे ही तुम भी जी सकते हो। तब तुम्हारा जीवन एक बडी उदासी हो जाएगी। तब तुम्हारे जीवन मे सारा रस सूख जाएगा। तब तुम्हारे जीवन में कोई फूल न खिलेंगे, काँटे-ही-काँटे रह जाएँगे। अगर कोई फूल खिलेगा भी तो तुम कहोगे कि कल्पना है, तुम उसे स्वीकार न करोगे। अगर किसी और के जीवन मे फूल खिलेगा तो तुम इनकार करोगे कि झूठ होगा, आत्मवचना होगी, धोखा होगा, बेईमानी होगी, फूल होते ही नही। तो तुमने अपने ही हाथ अपने को कारागृह मे बद कर लिया। फिर तुम तडपोगे। कोई दूसरा तुम्हे इस कारागृह के बाहर नही ले जा सकता। अगर तुम्हारी ही तडफ तुम्हें बाहर उठने की सामर्थ्य नही देती और तुम्हारी ही पीडा तुम्हे नयी खोज का सम्बल नही बनती, तो कौन तुम्हे उठायेगा? लेकिन एक-न-एक दिन उठोगे, क्योकि पीडा को कोई शाश्वत रूप से स्वीकार नही कर सकता। एक जन्म में कोई सार्त्र हो सकता है, सदा-सदा के लिए कोई सार्त्र नही हो सकता, आज सार्त्र हो सकता है, सदा-सदा के लिए सार्त्र नही हो सकता, क्योकि दुख का स्वभाव ऐसा है कि उसे स्वीकार करना असम्भव है।

दुख का अर्थ ही यह होता है कि जिसे हम स्वीकार न कर सकेंगे। घडी-भर को समझा ले, बुझा ले कि ठीक है, यही सब कुछ है, इससे आगे कुछ भी नही, लेकिन फिर-फिर मन आगे जाने लगेगा। क्योकि मन जानता है गहरे मे, सुख है। उसी आधार पर तो हम पहचानते हैं दुख को। हमने जाना है, शायद गहरी नीद मे सुख का थोडा-सा स्वाद मिला है।

पतजलि ने योग-सूत्रो मे समाधि की व्याख्या सुषुप्ति से की है कि वह प्रगाढ निद्रा है। जैसा सुषुप्ति में सुख मिलता है सुबह उठ कर, रात गहरी नीद सोये, कुछ याद नही पडता, लेकिन एक भीनी-सी सुगध सुबह तक भी तुम्हे घेरे रहती है।

कुछ याद नही पडता कहाँ गये, क्या हुआ, लेकिन गये कही और आनद से सरोबोर हो के लौटे।

कही डुबकी लगायी।
अपने मे ही कोई गहरा तल छुआ।
कही विश्राम मिला।
कोई छाया के तले ठहरे।
वहाँ धूप न थी।
वहाँ गहरी शाति थी।
वहाँ कोई विचारो की तरगें भी न पहुचती थी।
कोई स्वप्न के जाल भी न थे।

अपने में ही कोई ऐसी गहरी शरण, कोई ऐसा गहरा शरण-स्थल पा लिया।

सुबह उसकी सिर्फ हलकी खबर रह जाती है। दूर सुने गीत की गुन-गुन रह जाती है।

रात गहरी नीद सोये तो सुबह तुम कहते हो, 'बडी गहरी नीद आयी, बडे आनदित उठे।'

शायद गहरी निद्रा में तुम वही जाते हो जहाँ योगी समाधि मे जाता है। गहरी निद्रा मे तुम वही जाते हो जहाँ भक्ति भाव की अवस्था मे पहुँचाती है। गहरी निद्रा मे तुम उसी तल्लीनता को छूते हो जिसका भक्त भगवान में डूब के पाता है। थोडा फर्क है। तुम बेहोशी मे पाते हो, वह होश मे पाता है। वही फर्क बडा फर्क है।

इसलिए सुबह तुम इतना ही कह सकते हो, 'सुखद है! अच्छी रही रात।' लेकिन भक्त नाचता है, क्योंकि यह कोई बेहोशी मे नही पाया अनभव, होश में पाया।

तो कभी नीद के किन्ही क्षणो में तुमने भी जाना है, तभी तो तुम दुख को पहचानते हो, नही तो पहचानोगे कैसे? शायद बचपन के क्षणो मे जब मन भोला-भाला था और ससार ने मन विकृत न किया था, वासनाएँ अभी जगी न थी, कामनाओ ने अभी खेल शुरू न किया था, अभी तुम ताजे-ताजे परमात्मा के घर से आये थे – तब शायद सुबह की धूप मे बैठे हुए, फूलो को बगीचे मे चुनते हुए, या तितलियो के पीछे दौडते हुए, तुमने कुछ सुख जाना है जो विचार के अतीत है, तुमने कोई तल्लीनता जानी है जहाँ तुम खो गये थे, कोई विराट सागर रह गया था, बूंद ने अपनी सीमा छोड दी थी! फिर अब भूली-सी बात हो गयी, भूली-बिसरी बात हो गयी। अब याद भी नही आता।

बस इतना ही लोग कहे चले जाते है कि बचपन बडा स्वर्ग जैसा था। कोई

जोर डाले तुम पर तो तुम सिद्ध न कर पाओगे कि क्या स्वर्ग था ! अगर कोई तर्कयुक्त व्यक्ति मिल जाए, कहे कि सिद्ध करो, 'क्या था बचपन मे स्वर्ग ?', तो तुम सिद्ध न कर पाओगे । वह भी गहरी नींद का अनुभव हो गया अब । अब याद रह गयी है । खुद भी तुम्हे पक्का भरोसा नही है कि ऐसा हुआ था, भूल ही गया है । क्योंकि जिसकी तुम्हारे जीवन से सगति नही बैठती वह धीरे-धीरे विस्मरण हो जाता है । धीरे-धीरे तुम उसी को याद रख पाते हो, जिसका तुम्हारे मन के ढाँचे से मेल बैठता है, बेमेल बातो को हम छोड देते हैं । बेमेल बातो को याद रखना मुश्किल हो जाता है ।

तो कही-न-कही कोई अनुभव तुम्हारे भीतर है । कभी प्रेम के गहरे क्षण मे, किसी से प्रेम हुआ हो, मन ठिठक गया हो, सौंदर्य के साक्षात्कार में, या कभी चाँदनी रात मे आकाश को देखते हुए, मन मौन हो गया, तो तुमने सुख की झलक जानी । एक किरण तुम्हारे जीवन मे कभी-न-कभी उतरी है । उसी से तो तुम पहचानते हो कि यह अँधेरा है । किरण न जानी हो तो अँधेरे को अँधेरा कैसे कहोगे ? अँधेरे की प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी, पहचान कैसे होगी ? पहचान तो विपरीत से होती है ।

तो जो रुक जाए जीवन की व्यर्थता पर, वह नास्तिक । इसलिए नास्तिक को मै आस्तिक जितना साहसी नही कहता । जल्दी रुक गया । पडाव को मुकाम समझ लिया ! आगे जाना है । और आगे जाना है !

एक बडी पुरानी सूफी कथा है कि एक फकीर जगल मे बैठा था । वह रोज एक लकडहारे को लकडियाँ काटते हुए, ले जाते लाते देखता था उसकी दीनता, उसके फटे कपडे, उसकी हड्डियो से भरी देह ! उसे दया आ गयी । वह लकडहारा जब भी निकलता था तो उसके चरण छू जाता था । एक दिन उसने कहा कि कल जब तू लकडी काटने जाए, तब आगे जा, और आगे जा ! लकडहारा कुछ समझा नही, लेकिन फकीर ने कहा है तो कुछ मतलब होगा । ऐसे कभी यह फकीर बोलता न था, पहली दफा बोला है 'आगे जा, और आगे जा ! '

तो जहाँ वह लकडियाँ काटता था, जगल मे थोडा आगे गया चकित हुआ सुगध से उसके नासापुट भर गये ! चदन के वृक्ष थे । वहाँ तक वह कभी गया ही न था । उसने चदन की लकडियाँ काटी । चदन को बेचा तो उस रात खुशी मे रोया, दुख मे भी खुशी मे भी, कि अगर यही लकडियाँ अब तक काट के बेची होती तो करोडपति हो गया होता । पर अब गरीबी मिट गयी ।

दूसरे दिन जब चदन की लकडी फिर काट रहा था तो उसे खयाल आया कि फकीर ने यह नही कहा था कि चदन की लकडी तक जा, उसने कहा था, 'और आगे, और आगे ! ' तो उसने चदन की लकडियाँ न काटी, और आगे गया, तो

देखा कि चाँदी की एक खदान है। फिर तो उसके हाथ मे एक सूत्र लग गया। फिर और आगे गया तो सोने की खदान! फिर और आगे गया तो हीरो की खदान पर पहुँच गया।

और आगे, जब तक कि हीरो की खदान न आ जाए! उसको ही हम परमात्मा कहते है।

तुम लकडहारा की तरह लकडियाँ ही बेच रहे हो, थोडी ही दूर आगे चदन के वन हैं। तुम विचारो में ही उलझे हो जहाँ लकडियाँ-ही-लकडियाँ हैं। बडी सस्ती उनकी कीमत है।

थोडे निर्विचार में चलो चदन के वन है!
बडी सुगध है वहाँ!
और थाडे गहरे चलो तो समाधि की खदान है!
और गहरे चलो तो निर्बीज समाधि, निर्विकल्प समाधि की खदाने हैं!
और गहरे चलो तो स्वय परमात्मा है!

योगी कदम-कदम जाता है, रुक-रुक के जाता है, कई पडाव बनाता है। भक्त सीधा जाता है, नाचता हुआ जाता है, रुकता नही, पडाव भी नहीं बनाता। वह सीधा तल्लीनता मे डूब जाता है।

योगी से भी ज्यादा हिम्मत भक्त की है। नास्तिक से ज्यादा हिम्मत आस्तिक की है। योगी से भी ज्यादा हिम्मत भक्त की है। क्योकि भक्त सीढियाँ भी नही बनाता, एक गहरी छलाँग लेता है जिसमे अपने को डुबा देता है, मिटा देता है।

इस अनुभव पर आना अत्यत जरूरी है कि जीवन व्यर्थ है।

'अधेरी रात तूफाने तलातुम नाखुदा गाफिल
यह आलम है तो फिर किश्ती, सरे मौजेरवा कब तक?'

— 'अँधेरी रात'! सब तरफ अँधेरा है। कुछ सूझता नही है। हाथ को हाथ नही सूझता। 'तूफाने तलातुम'! बडी आँधियाँ हैं, बडे तूफान हैं, सब उखडा जाता है, कुछ ठहरा नही मालूम पडता, बडी अराजकता है! 'नाखुदा गाफिल'! और जिसके हाथ मे कश्ती है, वह जो माँझी है, वह सोया हुआ है, बेहोश है। 'यह आलम है', ऐसी हालत है तो फिर किश्ती सरे मौजेरवा कब तक?' तो इस किश्ती का भविष्य क्या है? यह नाव अब डूबी तब डूबी! इस नाव में आशा बाँधनी उचित नही। इस नाव के साथ बँधे रहना उचित नही।

लेकिन जाओगे कहाँ? भागोगे कहाँ? यही कश्ती तो जीवन है। तुम सोये हो, मूर्च्छित, तूफान भयकर है, अँधेरी रात है, डूबने के सिवाय कोई जगह दिखायी नही पडती।

लेकिन डूबना दो ढग का हो सकता है। एक कश्ती डुबाये तब तुम डूबो

और एक, कि कश्ती में बैठे-बैठे तुम डूबने के लिए कोई सागर खोज लो। उस सागर को ही हम परमात्मा कहते हैं।

'अच्छा यकी नही है तो कश्ती डुबो के देख
एक तू ही नाखुदा नही, जालिम ! खुदा भी है।'

तो फिर हिम्मत आ जाती है, फिर आदमी कहता है कि ठीक है। तो अगर माँझी ! तू चाहता ही है कि कश्ती डुबानी है तो डुबा के देख ! तू ही अकेला नही है, माँझी ! तुझसे ऊपर खुदा भी है।

'एक तू ही नाखुदा नही, जालिम ! खुदा भी है !'

फिर अँधेरी रात, तूफान, कश्ती का अब डूबा तब डूबा होना, सब दूर की बाते हो जाती हैं। तुम भीतर कही एक ऐसी जगह लगर डाल देते हो, जहाँ तूफान छूते ही नही, जहाँ रात का अँधेरा प्रवेश ही नही करता, और जहाँ किसी नाखुदा की, किसी माँझी की जरूरत नही है, क्योकि वहाँ परमात्मा ही माँझी है।

जरूरी है कि जीवन की व्यर्थता दिखायी पड जाए। बहुत है जो जीवन की व्यर्थता बिना देखे आस्तिकता मे अपने को डुबाने की चेष्टा करते हैं, वे कभी न डूब पाएँगे। वे चुल्लू-भर पानी में डूबने की चेष्टा कर रहे हैं। वे अपने को धोखा दे रहे हैं।

जब तक तुम्हारे जीवन की जडे उखड न गयी हो, जब तक तुमने गहन झझावात नास्तिकता के न झेले हो, जब तक तुम्हारा रोआँ-रोआँ कँप न गया हो जीवन के अधकार से, जब तक तुम्हारी छाती भयभीत न हो गयी हो — तब तक तुम जिस आस्तिकता की बाते करते हो, वह सात्वना होगी, सत्य नही, तब तक तुम जिन मदिरो और मस्जिदो मे पूजा-उपासना करते हो, वह पूजा-उपासना धोखा-धडी है। वह तुम्हारा औपचारिक व्यवहार है। वह सस्कारवशात् है। उससे तुम्हारे जीवन का सीधा कोई सम्बध नही। वह मदिर तुमने अपनी प्रज्ञा से नही खोजा है, उधार है। उधार परमात्मा असली परमात्मा नही है। उसे तो तुम्हे अपने को चुका के ही, अपने को दान मे दे कर ही, अपना सर्वस्व लुटा कर ही पाना होगा। वह तो तुम जब तक सूली पर न लटक जाओ, तब तक उस सिंहासन तक न पहुँच पाओगे।

तो पहली तो स्मरण रखने की बात यह है कि कही जल्दी में आस्तिक मत हो जाना। यह कोई जल्दी का काम नही है। बड़ी गहन प्रतीक्षा चाहिए ! और यह कोई सान्त्वना नही है कि तुम ओढ लो, सक्राति है। सान्त्वना नही है परमात्मा, सक्राति है, महाक्राति है। तुम जो हो, मिटोगे, और तुम जो होने चाहिए वह प्रगट होगा।

तो सस्ती आस्तिकता कही नहीं ले जाती। सस्ती आस्तिकता से तो असली

नास्तिकता बेहतर है, कम-से-कम उस परिधि पर तो खडा कर देती है, जहाँ से आगे कदम चाहो तो उठा सकते हो ।

झूठी आस्तिकता से तो कोई कभी कही नही गया है, जा ही नही सकता । झूठी प्रार्थना कभी नही सुनी गयी है । तुम कितने ही जोर से चिल्लाओ, तुम्हारी आवाज के जोर से प्रार्थना का कोई सम्बध नही है, तुम्हारे हृदय की सच्चाई से, तुम्हारी विनम्रता से, तुम्हारे निरहकार-भाव से, तुम्हारे असहाय-भाव से, जब तुम्हारी प्रार्थना उठेगी तो पहुँच जाती है, तो जर्रा-जर्रा, कण-कण अस्तित्व का तुम्हारा सहयोगी हो जाता है !

तो पहले तो झूठी आस्तिकता से बचना, फिर नास्तिकता मे मत उलझ जाना । नास्तिक होना जरूरी है, बने रहना जरूरी नही है। एक ऐसी घडी आएगी जब अँधेरा-ही-अँधेरा दिखायी पडेगा, तूफान-ही-तूफान होगे, कही कोई सहारा न मिलेगा, सब सहारे झूठ मालूम होगे, राह भटक जाएगी, तुम बिलकुल अजनबी की तरह खडे रह जाओगे, जिसका कोई सहारा नही, जो एकाकी है—तब घबडा के बैठ मत जाना, यही से शुरुआत होती है । यही से अगर तुमने आगे कदम उठाया, तो उपासना, भक्ति ! यही से आगे कदम उठाया तो ससार के पार परमात्मा की शुरुआत होती है ।

झूठी नास्तिकता से बचना है, झूठी आस्तिकता से बचना है । नास्तिकता सच्ची हो तो भी उसको घर नही बना लेना है । असली नास्तिकता के दुख का झेलना है ताकि उस पीडा के बाहर असली आस्तिकता का जन्म हो सके ।

दूसरा प्रश्न इस विराट अस्तित्व मे मै नाकुछ हूँ, यह अप्रिय तथ्य स्वीकारने मे बहुत भय पकडता है । इस भय से कैसे ऊपर उठा जाए ?

'अप्रिय' कहोगे तो शुरू से ही व्याख्या गलत हो गयी, फिर भय पकडेगा । 'अप्रिय' कहना ही गलत है ।

फिर से सोचो नाकुछ होने मे अप्रिय क्या है ? वस्तुत कुछ होने में अप्रिय है । क्योकि जीवन के सारे दुख तुम्हारे 'कुछ होने' के कारण पैदा होते है ।

अहकार घाव की तरह है। और जब तुम्हारे भीतर घाव होता है—और अहकार से बडा कोई घाव नही, नासूर है—तो हर चीज की चोट लगती है, हर चीज से चोट लगती है, हर चीज मे पीडा आती है, जरा कोई टकरा जाता है और पीडा आती है, हवा का झोका भी लग जाता है तो पीडा आती है, अपना ही हाथ छू जाता है तो पीडा आती है ।

अहकार का अर्थ है मै कुछ हूँ ।

अगर तुम जीवन की सारी पीडाओ की फेहरिश्त बनाओ तो तुम पाओगे

कि वे सब अहकार से ही पैदा होती हैं। लेकिन तुमने कभी गौर मे इसे देखा नहीं। तुम तो सोचते हो कि पीडा तुम्हे दूसरे लोग देते हैं।

किसी ने तुम्हे गाली दी, तो तुम सोचते हो, यह आदमी गाली दे के मुझे पीडा दे रहा है। व्याख्या की भूल है। विश्लेषण की चूक है। दृष्टि का अभाव है। आँख खोल के फिर से देखो। इस आदमी की गाली मे अगर कोई भी पीडा है तो इसीलिए है कि तुम्हारे भीतर अहकार उस गाली मे छू के दुखी होता है। अगर तुम्हारे भीतर अहकार न हो तो इस आदमी की गाली तुम्हारा कुछ भी न बिगाड पाएगी। तुम उस आदमी की गाली को सुन लोगे और अपने मार्ग पर चल पडोगे। हो सकता है, इस आदमी की गाली तुम्हारे मन मे करुणा को भी जगाये कि बेचारा नाहक ही व्यर्थ की बातो मे पडा है। लेकिन गाली उसकी तुम्हे पीडा दे जाती है, क्योकि तुम्हारे पास एक बडा मार्मिक स्थल है, जो तैयार ही है पीडा पकडने को। बडा सवेदनशील है! बडा नाजुक है! और हर घडी तैयार है कि कहीं से पीडा आये ना ..वह पीडा पर ही जीता है।

तो ज़रूरी नही कि कोई गाली दे, राह पर कोई बिना नमस्कार किये निकल जाए तो भी पीडा आ जाती है। कोई तुम्हे देखे और अनदेखा कर दे तो भी पीडा आ जाती है। राह पर दो आदमी हँस रहे हो तो भी पीडा आ जाती है कि शायद मुझ पर ही हँस रहे है। दो आदमी एक-दूसरे के कान मे खुसरफुसर कर रहे हो तो पीडा आ जाती है कि शायद मेरे लिए ही ।

यह जो 'मै' है, बड़ा रुग्ण है! इसको ले के तुम कभी भी स्वस्थ और सुखी न हो पाओगे।

तो अगर 'अप्रिय' कहना हो तो अहकार को कहना।

और यही अहकार तुमसे कहता है, 'डरो, प्रेम से डरो, क्योकि प्रेम मे ऐसे छोडना पडेगा। भक्ति से डरो, क्योकि भक्ति मे तो यह बिलकुल ही डूब जाएगा, प्रेम मे क्षण-भर को डूबेगा, भक्ति मे शाश्वत, सदा के लिए डूब जाएगा। बचो!'

यह अहकार कहता है, 'ऐसी जगह जाओ ही मत जहाँ डूबने का डर हो। बच के चलो! सम्हल के चलो।'

और यही अहकार तुम्हारी पीडा का कारण है!

ऐसा समझो कि नासूर लिये चलते हो और चिकित्सक से बचते हो।

'इस विराट अस्तित्व मे मैं नाकुछ हूँ, यह अप्रिय तथ्य स्वीकारने मे बहुत भय पकडता है।'

यह भय तुम्हे नही पकड रहा है, यह भय उसी अहकार को पकड रहा है जो कि डूबने से, तल्लीन होने से भयभीत है। क्योकि तल्लीनता का अर्थ मौत है—अहकार की मौत, तुम्हारी नही! तुम्हारे लिए तो जीवन का नया द्वार खुलेगा।

उसी मृत्यु से तुम्हारे लिए परम जीवन की उपलब्धि होगी। उसी मृत्यु से तुम पहली बार अमृत का दर्शन करोगे। लेकिन तुम्हारे लिए, अहंकार के लिए नहीं!

यह जो तुम्हारे भीतर 'मैं' की गाँठ है, यह गाँठ दुख दे रही है। इस अप्रिय 'मैं' को पहचानो, तो तुम पाओगे कि निरहंकारिता से ज्यादा प्रीतिकर और कुछ भी नहीं।

और जिसे निरहंकारिता आ गयी, सब आ गया! फिर उसे किसी मंदिर में जाने की जरूरत नहीं।

निरहंकारिता का मंदिर जिसे मिल गया, वह पत्थरों के मंदिरों में जाए भी क्यों!

निरहंकारिता का मंदिर जिसे मिल गया, उसके तो अपने ही भीतर के मंदिर के द्वार खुल गये!

'अदब-आमोज है मैखाने का जर्रा-जर्रा
सैंकड़ों तरह से आ जाता है सिजदा करना।
इश्क पाबंदेवफा है, न कि पाबंदे-रसूम
सर झुकाने को नहीं कहते हैं सिजदा करना।'

'अदब-आमोज है मैखाने का जर्रा-जर्रा!'

अगर तुम गौर से देखो तो अस्तित्व का कण-कण विनम्रता सिखा रहा है। पूछो वृक्षों से, पूछो पर्वतों से, पहाड़ों से, पूछो झरनों से, पक्षियों से, पशुओं से कहीं अहंकार नहीं है!

'अदब-आमोज है मैखाने का जर्रा-जर्रा।'

एक-एक कण, पूरा अस्तित्व एक ही बात सिखा रहा है: नाकुछ हो जाओ!

'सैंकड़ों तरह से आ जाता है सिजदा करना!'

और अगर तुम इन बातों को सुनो जो अस्तित्व में गूंज रही हैं सब तरफ से, सब दिशाओं से, तो सैंकड़ों रास्ते हैं जिनसे उपासना का सूत्र तुम्हारे हाथ में आ जाएगा, सिजदा करना आ जाएगा, झुकने की कला आ जाएगी।

जरूरी नहीं है कि तुम शास्त्र ही पढ़ो, अस्तित्व के शास्त्र से बड़ा कोई और शास्त्र नहीं है। जरूरी नहीं है कि तुम ज्ञानियों से ही सीखो, तुम अगर आँख खोल कर देखो तो सारा अस्तित्व तुम्हें सिखाने को तत्पर है।

यहाँ आदमी के सिवाय कोई अहंकार से पीड़ित नहीं है और इसलिए सिवाय आदमी के यहाँ कोई भी पीड़ित नहीं है। आदमी ही परेशान है, चिंतित है। वृक्ष परेशान नहीं, सिजदा में खड़े हैं। सतत चल रही है पूजा!

आदमी की पूजा घड़ी-दो-घड़ी की होती है, अस्तित्व की पूजा सतत है।

तुम कभी आरती उतारते हो, तारे, चाँद, सूरज उतारते ही रहते हैं आरती ! चौबीस घंटे ! सतत !

तुम कभी एक फूल चढा आते हो, वृक्ष रोज ही चढाते रहते हैं फूल। तुम कभी जा के मंदिर में एक गीत गुनगुना आते हो, पक्षी सुबह से साँझ तक गुनगुना रहे है ! अगर गौर से देखो तो तुम सारे अस्तित्व को सिजदा करता हुआ पाओगे। सारा अस्तित्व झुका है, घुटनो पर हाथ जुडे है, आँखो से आँसुओं की धार बह रही है, हृदय से सुगंध उठ रही है !

फिर से देखो ! देखा तो तुमने भी है इसे, ठीक आँख से नही देखा। फिर से देखो तुम हर वृक्ष को झुका हुआ पाओगे प्रार्थना में, हर झरने का उसी का गीत गाता हुआ पाओगे।

'अदब-आमोज है मैखाने का जर्रा-जर्रा
सैंकडो तरह से आ जाता है सिजदा करना।'

'इश्क पाबदेवफा है।'

प्रेम आस्था की बात है, श्रद्धा की बात है, भरोसे की बात है।

'इश्क पाबदेवफा है, न कि पाबदे-रसूम !'

वह कोई नीति-नियम की बात नही है, कोई रसूम की बात नही है, कोई नियम के आचरण की विधि-अनुशासन की बात नहीं है – सिर्फ आस्था की बात है। कोई मुसलमान होना जरूरी नही है, कोई हिन्दू होना जरूरी नही है, कोई ईसाई होना जरूरी नही है – क्योकि ये सब तो रीति-नियम की बाते है, धार्मिक होने के लिए इनकी कोई भी जरूरत नही है, सिर्फ आस्था काफी है। आस्था न हिन्दू है न मुसलमान, आस्था न जैन है न बौद्ध – आस्था विशेषण-रहित है, उतनी ही विशेषण-रहित है जितना कि परमात्मा।

'इश्क पाबदेवफा है, न कि पाबदे-रसूम।'

तो तुम कोई रीति-नियम से प्रार्थना मत करने बैठ जाना। सीख मत लेना प्रार्थना करना, क्योकि वही अडचन हो जाएगी असली प्रार्थना के जन्म होने में।

प्रार्थना सहजस्फूर्त हो !

सूर्य के सामने सुबह बैठ जाना, जो तुम्हारे हृदय मे आ जाए, कह देना, न कुछ आये, चुपचाप रह जाना। सूरज कुछ कहे, सुन लेना, न कहे तो उसके मौन में आनंदित हो लेना।

बँधी हुई प्रार्थनाएँ मत दोहराना, क्योकि बँधी हुई प्रार्थनाएँ कण्ठो मे है, उससे नीचे नही जाती, बस कण्ठो तक जाती है, कण्ठो से आती है।

इसलिए अक्सर तुम पाओगे कि जिनको प्रार्थनाएँ याद हो गयी हैं, वे प्रार्थनाओ से वञ्चित हो गये हैं। वे प्रार्थना करते रहते है, उनके ओठ दोहराते रहते

हैं मत्रो को और उनके भीतर विचारो का जाल चलता रहता है। फिर धीरे-धीरे तो यह इतनी आदत हो जाती है दोहराने की कि उससे कोई बाधा ही नही पडती, भीतर दुकान चलती रहती है, ओठो पर मदिर चलता रहता है।

'इश्क पाबदेवफा है, न कि पाबदे-रसूम !'

प्रेम जानता ही नही रीति-नियम, क्योकि प्रेम आखिरी नियम है। किसी और व्यवस्था की जरूरत नही है, प्रेम पर्याप्त है। प्रेम की अराजकता में भी एक अनुशासन है। वह अनुशासन सहजस्फूर्त है।

'सर झुकाने को नही कहते हैं सिजदा करना !'

और सिर्फ सिर झुकाने का नाम प्रार्थना नही है, खुद के झुक जाने का नाम प्रार्थना है। सिर झुकाना तो बडा आसान है।

मेरे पास लोग बच्चो को ले के आ जाते है। वे खुद सिर झुकाते हैं, बच्चे खडे रह जाते है, तो माँ उसका सिर पकड के चरणो में झुका देती है। मै उनको कहता हूँ 'यह तुम क्या ज्यादती कर रहे हो?' वह बच्चा अकड रहा है, वह खडा है, उसे सिर नही झुकाना है, कोई कारण नही है सिर झुकाने का, उससे मेरा कुछ लेना-देना नही है, माँ उसका सिर झुका रही है, रसूम सिखाया जा रहा है, नियम सिखाया जा रहा है। वह धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाएगा। बडा होते-होते किसी को झुकाने की जरूरत न रह जाएगी, खुद ही झुकने लगेगा, लेकिन हर झुकने मे यह मा का हाथ इसकी गर्दन पे रहेगा। यह बुढापे तक जब भी झुकेगा, तब इसे कोई झुका रहा है वस्तुत, यह खुद नही झुक रहा है।

तुमने कभी खयाल किया, तुम मदिर में जा के झुकते हो, यह सिर्फ एक आदत है या आस्था है? क्योकि बचपन मे माँ-बाप इस मदिर मे ले गये थे, झुकाया था एक दिन तुम्हारी गर्दन को तुम्हे सभी को याद होगा कि किसी-न किसी दिन माँ-बाप ने तुम्हारी गर्दन को झुकाया था किसी पत्थर की मूर्ति के सामने, किसी मदिर मे, किसी शास्त्र के सामने, किसी गुरु के सामने। याद करो उस दिन को। फिर धीरे-धीरे तुम अभ्यस्त हो गये। फिर तुम भी ससार के रीति-नियम समझने लगे। फिर तुमने भी औपचारिकता सीख ली। वह बच्चा ज्यादा शुद्ध है जो सीधा खडा है। उसे झुकना नही, बात खत्म हो गयी ! झुकने का उसे कोई कारण समझ मे नही आता, बात खत्म हो गयी। माँ उसे एक झूठ सिखा रही है।

समाज सभी को झूठ सिखा रहा है, औपचारिक आचरण सिखा रहा है। धीरे-धीरे धीरे-धीरे परत पे परत जमते-जमते ऐसी घडी आ जाती है कि तुम बडी सरलता से झुकते हो, और बिना जाने कि यह भी तुम्हारा झुकना नही है। यह सरलता भी झूठी है। इस सरलता में भी समाज के हाथ तुम्हारी गर्दन को दबा रहे हैं। इस सरलता मे भी तुम्हारी गुलामी है।

और प्रेम, गुलामी से कही पैदा हुआ ? परतन्त्रता से कही पैदा हुआ ?

भक्ति तो परम स्वतन्त्रता है। इसलिए छोड दो वह सब जो तुम्हे सिखाया गया हो, ताकि 'अन-सीखे' का जन्म हो सके। हटा दो वह सब जो दूसरो ने जबरदस्ती से तुम्हारे ऊपर लादा हो ! निर्बोझ हो जाओ !

फिर से सीखना पडेगा पाठ।

तुम्हारी सलेट पर बहुत कुछ दूसरो ने लिख दिया है। खाली करो उसे ! धो डालो ! ताकि फिर से तुम अपने स्वभाव के अनुकूल कुछ लिख सको।

'इश्क पाबदेवफा है, न कि पाबदे-रसूम
सर झुकाने को नही कहते हैं सिजदा करना।'

प्रार्थना बडी अभूतपूर्व घटना है।

झुकना ! उसके आगे तो फिर कुछ और नही। वह तो आखिरी बात है। क्योकि जो झुक गया, उसने पा लिया ! जो झुक गया वह भर गया ! वह भर दिया गया !

तुम तो रोज झुकते हो, कुछ भरता नही। तुम तो रोज झुकते हो, खाली हाथ आ जाते हो। धीरे-धीरे तुम्हे ऐसा लगने लगता है कि जिसके सामने झुक रहे हैं वह परमात्मा झूठा है, क्योकि इतनी बार झुके, कुछ हाथ नही आता। मैं तुमसे कहता हूँ वह परमात्मा तो सच है, तुम्हारा झुकना झूठा है। तुम कभी झुके ही नही।

दुनिया मे नास्तिकता बढती जाती है, क्योकि झूठी आस्तिकता कब तक साथ दे ! जबरदस्ती झुकायी गयी गर्दनें कभी-न-कभी अकड के खडी हो जाएँगी। और इतने बार झुकने के बाद जब कुछ भी न मिलेगा, तो स्वाभाविक है कि आदमी कहे, 'क्या सार है ? क्यो झुके ?' और स्वाभाविक है कि आदमी कहे, 'इतनी बार झुक के कुछ न मिला, कोई परमात्मा नही है !'

यह तुम्हारी झूठी आस्तिकता का परिणाम है।

सच्ची आस्तिकता आस्था से पैदा होती है।

आस्था का अर्थ है जैसा तुम समझते हो वैसा नही। तुम समझते हो, आस्था का अर्थ है विश्वास।

नही, आस्था का अर्थ विश्वास नही है। आस्था का अर्थ है अनुभव। विश्वास तो दूसरे देते हैं; आस्था वह है जो तुम्हारे भीतर तुम्हारी स्वाभाविकता से पैदा होती है।

प्रेम सीखो !

नियम भूलो !

प्रेम पर दाँव लगाओ, जोखिम है। नियम मे कभी कोई जोखिम नही,

इसलिए तो लोग नियम मे जीते है। लेकिन जिसने जोखिम न उठायी, उसने कुछ पाया भी नही। इसलिए तो लोग बिना पाये रह जाते हैं।

पूछा है 'इस विराट अस्तित्व मे मै नाकुछ हूँ, यह अप्रिय तथ्य स्वीकार करने मे भय पकड़ता है।'

पकड़ने दो भय! भय की मौजूदगी रहने दो। भय से कहो, 'तू रह, लेकिन हम झुकते हैं।'

तुम भय को एक किनारे रखो!

मै जानता हूँ कि भय को एकदम मिटा न सकोगे, लेकिन एक किनारे रख सकते हो। भय के रहते हुए भी तुम झुक सकते हो। भय की सुनना जरूरी नही है। तुम सुनते हो, स्वीकार करते हो, मान लेते हो, इसलिए भय मालिक हो जाता है।

भय से कहो, 'ठीक, तेरी बात सुन ली, फिर भी झुक के देखना है। तू कहता है, जोखिम है! होगी। लेकिन जोखिम उठा के देखनी है। तू कहता है, मिट जाओगे! सही। रह के देख लिया, अब मिट के देखना है। रह-रह के कुछ न पाया, अब यह आयाम भी खोज ले मिटने का!

कोई भय को दबाने की जरूरत नहीं है, ध्यान रखना। दबाया हुआ भय तो फिर-फिर उभरेगा। न, भय को पूरा स्वीकार कर लो कि ठीक हो। माना, तुम्हारी बात मे भी बल है। तुम्हारे तर्क से कोई इनकार नही। लेकिन तुम्हारे साथ रह के इतने दिन देख लिया और जीवन का कोई अनुभव न हुआ, अब कुछ और भी कर लेने दो।

तर्क उठेंगे मन मे। उनसे कहो, ठीक है। तुम्हारी बात जँचती थी, इसलिए तो इतने दिन तक तुम्हारा संग-साथ रहा। इतने दिन तक तुम्हे ओढ़ा, लेकिन कुछ पाया नही, हाथ खाली है, हृदय कोरा है, आत्मा रिक्त है। अब बहुत हुआ, अब तुमसे विपरीत दिशा में भी थोड़ा जा के देख लेने दो।

डर तो लगेगा ही, क्योंकि जिस दिशा मे कभी न गये, उस दिशा मे जाते मन घबड़ाता है, पैर कँपते है। मन चाहता है 'जाने-माने रास्ते पर चलो। कहाँ जंगल मे जा रहे हो बियाबान मे? भटक जाओगे! भीड़ जहाँ चलती है वही चलो! कम-से-कम संगी-साथी तो है! भीड है, तो राहत है, अकेले नही है।'

पर एक-न-एक दिन भीड के रास्तो को छोड़ कर पगडंडी की राह लेनी ही पड़ती है।

परमात्मा तक कोई राजपथ नही जाता, बस पगडंडियाँ जाती हैं। कोई राजपथ परमात्मा तक नही जाता, अन्यथा समाज परमात्मा तक पहुच जाए। व्यक्ति ही पहुँचते हैं, समाज कभी नही।

पगडंडियाँ! पगडंडियाँ भी ऐसी कि तुम चलो तो बनती है, कोई तैयार

नही हैं पहले से, कि किसी ने तुम्हारे लिए बना रखी हो। तुम्हारे चलने से ही बनती हैं। जितना तुम चलते हो उतनी ही निर्मित होती हैं।

यह राह ऐसी है कि तैयार नही है, चलने से तैयार होती है। और बडा सुन्दर है यह तथ्य। नही तो आदमी एक परतत्रता हो जाए राह तैयार है, उस पे तुम्हे चले जाना है! तब तो तुम रेलगाडियो के डब्बो जैसे हो जाओ। लोहे की पटरियो पे दौडते रहो। फिर तुम्हारे जीवन मे गगा की स्वतत्रता न हो। फिर वह मौज न रह जाए, जो अपनी ही खोज से आती है।

गगा सागर पहुँचती है – लोहे की पटरियो पर नही, चलती है, चल-चल के अपनी राह बनाती है, मार्ग बनाती है अनजान की खोज पर! सागर है भी आगे, इसका भी क्या पक्का पता है!

तो भय स्वाभाविक है। लेकिन भय के साथ रह के हम बहुत दिन देख लिये। अब भय को कहो, 'सुनी तेरी बहुत, अब हमे कुछ और भी करने दो।'

रहने दो भय को एक किनारे – तुम चलो!

कँपते हुए पैरो से सही, पगडडी पर उतरो!

डरते हुए, धडकते हुए हृदय से सही, भीड को छोडो!

घबडाहट होगी, लौट-लौट जाने का मन होगा – कोई चिता नही।

कभी लौट जाने का मन हो, कभी घबडाहट हो तो इतना ही याद रखना कि भय की और मन की मान के बहुत दिन चले थे, कही पहुँचे न थे।

नये को एक अवसर दो!

जिस दिन तुम नये को अवसर देते हो उसी दिन तुम परमात्मा को अवसर देते हो। जब तक तुम पुराने को दोहराते हो, लीक को पीटते हो, लकीर के फकीर हो, तब तक तुम समाज के हिस्से होते हो, भीड के हिस्से होते हो।

व्यक्ति बनो!

अकेले होने का साहस जुटाओ!

और सबसे बडा साहस यही है इस तथ्य का स्वीकार कर लेना कि मै इस विराट का अश हू, अलग-थलग नही हूँ, द्वीप नही हूँ, इस पूरे विराट का एक अश हूँ। मै नही हूँ, अस्तित्व है!

यही तो भक्ति की सारी-की-सारी व्यवस्था है कि भक्त खो जाए भगवान मे, कि भगवान खो जाए भक्त में, कि एक ही बचे, दो न रह जाएँ।

तीसरा प्रश्न आपसे मिल कर भी यदि हमारा उद्धार न हुआ, तब तो शायद असम्भव ही है। कम-से-कम मुझ निरीह पर तो रहम खाइये। न तो मुझसे ध्यान सधता है न भक्ति। भक्ति की लहरियाँ आती है अवश्य, पर बहुत झीनी, और वह भी कभी-कभी, और ससार का भयकर तूफान तो सदा हावी है।

ध्यान साधना होता है, भक्ति साधनी नहीं होती।

भक्ति की जो छोटी-छोटी लहरियाँ आ रही है उनमें डूबो, उनमें रस लो। तुम्हारे डूबने से लहरें बड़ी होने लगेंगी। दूर किनारे पे मत बैठे रहो, अन्यथा लहरें आएँगी और खो जाएँगी और तुम अछूते रह जाओगे। उतरो! लहरों को तुम्हारे तन-प्राण पर फैलने दो। अगर छोटी-छोटी लहरें आ रही है तो भरोसा रखो, लहरों में सागर ही आया है। छोटी-से-छोटी लहर में विराट-से-विराट सागर छिपा है!

ध्यान साधना पड़ता है। ध्यान साधना है। भक्ति! भक्ति साधना नहीं है, उपासना है।

भेद समझ लो।

साधना का अर्थ है: तुम्हें कुछ करना है। उपासना का अर्थ है: तुम्हें सिर्फ परमात्मा को मौका देना है। साधना में तुम्हें चेष्टा करनी पड़ती है, उपासना में तुम बेसहारा हो के अपने को परमात्मा पे छोड़ देते हो – तुम कहते हो, 'अब जो तेरी मर्जी! अब तू जैसे रखे! अब तू जो करवाये! डुबाये तो वही किनारा! अब मैं नहीं हूं।'

भक्ति साधनी नहीं पड़ती। साधने में तो तुम बने रहते हो। उपासना में तुम खो जाते हो, तुम जैसे-जैसे पास आते हो।

उपासना शब्द का अर्थ है: परमात्मा के पास आना। उप + आसन = 'उसके' पास बैठना। बस बैठना ही काफी है। तुम 'उसे' मौका दो। तुम बैठ जाओ – 'उसके' पास! 'उस' पर छोड़ कर! और 'उसे' मौका दो।

बिलकुल ठीक हो रहा है: 'भक्ति की लहरियाँ आती हैं अवश्य, पर बहुत झीनी, और वह भी कभी-कभी।'

इसे भी सौभाग्य समझो कि आती हैं। बस उन लहरों को ही पकड़ो, उनमें डूबो! एक धागा भी हाथ में आ जाए तो बस काफी है। इसीलिए तो भक्ति के इस शास्त्र को भक्ति-सूत्र कहा है, योग के शास्त्र को योग-सूत्र कहा है – धागा! सूत्र यानी धागा। यह पूरा शास्त्र नहीं है, बस सूत्र है। पर सूत्र हाथ में पकड़ आ गया, तो बात खत्म। उसी सूत्र के सहारे चलते-चलते तो!

एक किरण पकड़ लो सूरज की तो सूरज तक पहुँचने के लिए सहारा मिल गया। उसी किरण के सहारे चलते जाना, तो उसके स्रोत तक पहुँच जाओगे, जहाँ से किरण आती है।

मगर हमारा मन बड़ा लोभी है। वह कहता है: 'कभी-कभी!' कभी-कभी आती हैं, यह भी कोई कम सौभाग्य है? एक बार भी जीवन में लहर आ जाए और तुम अगर होशियार हो, तुम अगर जरा समझदार हो तो तुम उस एक ही लहर के सहारे उसके सागर को पा लोगे।

'कभी-कभी आती हैं!' – जरूरत मे ज्यादा आ रही हैं।

तुम्हारी पात्रता क्या है? योग्यता क्या है? कमाई क्या है? कुछ भी नही है। उसकी अनुकंपा से आती होगी। प्रसादस्वरूप आती होगी।

धन्यवाद दो, शिकायत मत करो! शिकायत करोगे तो जो लहरे आती हैं वे भी धीरे-धीरे खो जाएँगी। क्योकि शिकायती चित्त के पास उपासना असम्भव है। जितनी ज्यादा तुम्हारी शिकायत होगी उतना ही परमात्मा मे फासला हो जाएगा। बिना शिकायत उसके पास बैठे रहो। धन्यवाद दो!

मैंने सुना है, मुसलमान बादशाह हुआ महमूद। उसका एक नौकर था। बडा प्यारा था। इतना उसे प्रेम था उस नौकर से और उस नौकर की भक्ति-भाव मे, उसके अनन्य समर्पण से कि महमूद उसे अपने कमरे में ही सुलाता था। उस पर ही एक भरोसा था उसको।

दोनो एक दिन शिकार करके लौटते थे, राह भटक गये, भूख लगी। एक वृक्ष के नीचे दोनो खडे थे। एक फल लगा था – अपरिचित, अनजान। महमूद ने तोडा। जैसी उसकी आदत थी, चाकू निकाल के उसने एक टुकडा काट के अपने नौकर को दिया, जो वह हमेशा देता था, पहले उसे देता था फिर खुद खाता था। नौकर ने खाया। बडे अहोभाव से कहा कि 'एक कली और!' एक कली और दे दी, उसने फिर कहा, 'एक कली और।' तो तीन हिस्से तो वह ले चुका, एक हिस्सा ही बचा। महमूद ने कहा, 'अब एक मेरे लिए छोड।' पर उसने कहा कि नही मालिक, यह फल तो पूरा ही मै खाऊँगा। महमूद को भी जिज्ञासा बढी कि इतना मधुर फल है, ऐसा इसने कभी आग्रह नही किया! तो छीना-झपटी होने लगी। लेकिन नौकर ने छीन ही लिया उसके हाथ से।

उसने कहा, 'रुक! अब यह जरूरत से ज्यादा हो गयी बात। तीन हिस्से तू खा चुका। एक ही फल है वृक्ष पर। मै भी भूखा हूँ। और मेरे मन में भी जिज्ञासा उठती है कि इतनी तो तूने कभी किसी चीज के लिए माँग नही की। यह मुझे दे वापस।'

नौकर ने कहा, 'मालिक, मत ले, मुझे खा लेने दे।'

पर महमूद ने न माना तो उसे देना पडा। उसने चखा तो वह तो जहर था। ऐसी कडवी चीज उसने अपने जीवन में कभी चखी ही न थी। उसने कहा, 'पागल! यह तो जहर है, तूने कहा क्यो नही।'

तो उसने कहा कि जिन हाथो से इतने स्वादिष्ट फल मिले, उन हाथो से एक कडवे फल की क्या शिकायत!

शिकायत दूर ले जाएगी, धन्यवाद पास लाएगा।

थोडा सोचो उस दिन वह नौकर महमूद के हृदय के जितने करीब आ

गया । महमूद रोने लगा । वह तो बिलकुल जहर था फल । वह तो मुंह में ले जाने योग्य न था । और उसने इतने अहोभाव से, इतनी प्रसन्नता से उसे स्वीकार किया, छीना-झपटी की ! वह नही चाहता था कि महमूद चखे । क्योकि चखेगा तो महमूद को पता चल जाएगा कि फल कडवा था । यह तो कहने का ही एक ढग हो जाएगा कि फल कडवा है – न कहा लेकिन कह दिया । यह तो शिकायत हो जाएगी । इसलिए छीन-झपट की । जिन हाथो से इतने मधुर फल मिले, उस हाथ से एक कडवे फल की क्या चर्चा करनी ! वह बात ही उठाने की नही है ।

परमात्मा ने इतना दिया है कि जो शिकायत करता है वह अधा है ।

थोडी लहरे आती है, उन लहरो मे डूबो ! और लहरे आएँगी ।

धन्यवाद, अनुग्रह का भाव बडी लहरे आएँगी ! एक दिन सागर-का-सागर तुम में उतर आएगा । एक दिन तुम्हे बहा के ले जाएगा । सब कूल किनारे टूट जाएगे ।

लेकिन सूत्र यही है कि तुम उसके प्रसाद को पहचानो और अनुग्रह के भाव को बढाते चले जाओ ।

होता अक्सर ऐसा है कि जो तुम्हे मिलता है तुम उसके प्रति अधे हो जाते हो, तुम उसे स्वीकार ही कर लेते हो कि ठीक है, यह तो मिलना ही है, और चाहिए !

अक्सर ऐसा होता है, जितना ज्यादा तुम्हे मिल जाता है, उतने ही तुम दरिद्र हो जाते हो । क्योकि उसको तो तुम स्वीकार ही कर लेते हो, उसकी तो तुम बात ही भूल जाते हो जो मिल गया ।

एक मनोविज्ञानशाला मे बदरो पर कुछ प्रयोग किया जा रहा था । तो एक कटघरे म दस बदर रखे गये थे जिनका रोज नहलाना-धुलाना होता था । ठीक भोजन मिलता था । बडी उस कटघरे मे सफाई रखी गयी थी, एक मक्खी न थी ।

दूसरे कटघरे मे दस उन्ही के साथी बदर थे । उनको नहलाया-धुलाया न जाता था । उन पे गदगी इकट्ठी हो गयी थी, जूँ पड गये थे, मक्खियाँ भनभनाती रहती थी । सफाई का कोई इन्तजाम नही किया गया था । यह तो प्रयोग था एक ।

तीन महीने मे मनोवैज्ञानिको ने जो निष्कर्ष निकाला वह यह था कि वे जो गदे बदर थे, जिन पे मक्खियाँ झूमती रहती थी और जिनके शरीर मे जूँ पड गयी थी, और जिनको नहलाया-धुलाया न गया था – वे ज्यादा शात और ज्यादा प्रसन्न ! और जिनको नहलाया-धुलाया जाता था, ठीक भोजन दिया जाता था, वक्त पे दिया जाता था, और सब तरह की साज-सम्हाल रखी गयी थी, एक मक्खी नही जाने दी गयी थी – वे बडे परेशान !

फिर यही प्रयोग कुत्तो पे भी दोहराया गया और यही परिणाम पाया गया ।

तो मनोवैज्ञानिको ने यह निष्कर्ष निकाला कि जब तुम्हारी जिंदगी में बहुत परेशानी होती है, तब तुम ज्यादा शात होते हो। तुम परेशानी में उलझे होते हो, अशात होने की भी तुम्हे सुविधा नही होती। जैसे-जैसे तुम्हारे पास सुविधा होती जाती है, वैसे-वैसे तुम अशात होते जाते हो, क्योंकि सुविधा होती है, व्यस्तता नही होती, उलझाव नही होता—करो भी तो करो क्या ! तो तुम शिकायतो मे पड जाते हो।

यह मेरा अनुभव है कि जिनके जीवन में भी ध्यान की थोडी-सी शान्ति आनी शुरू होती है, वे और लोभ से भर जाते हैं। जिनको भक्ति की थोडी-सी झलक मिलती है, वे और लोभ मे भर जाते हैं। जिनको नही मिली है, वे उतने लोभ मे भरे नही हैं, वे ज्यादा प्रसन्न मालूम पडते हैं। जिंदगी का उलझाव काफी है। उन्हे स्वाद ही नही मिला तो लोभ कहाँ से लगे ?

तुम गौर करो, गरीब आदमी को तुम ज्यादा शात पाओगे अमीर आदमी की बजाय। कारण साफ है वही जो बदरो के कटघरे में हुआ। अमीर को सब मिल रहा है, अब वह करे क्या ! शिकायत ही करता है।

जो बाहर की अमीरी-गरीबी के सम्बध में सच है, वही भीतर की अमीरी-गरीबी के सम्बध मे भी सच है।

अगर तुम्हे झलके मिल रही है थोडी, झीनी सही झीनी भी तुम कहते हो, वह भी तुम्हारा शिकायती चित्त है, जो उन्हें झीनी बता रहा है। 'कभी-कभी मिलती है,' चलो कभी-कभी सही। कभी-कभी भी तुम कहते हो, वह भी तुम्हारा शिकायती चित्त है। उसमे भी लोभ है। जो मिलता है वह तो स्वीकार कर लिया। वह तो जैसे तुम मालिक थे, मिलना ही चाहिए था, तुम अधिकारी थे उसके ! बाकी जो नही मिल रहा है उसकी शिकायत है। तो तुमने भक्ति का राज नही समझा, तुम्हें उपासना की कला न आयी।

जो नही मिलता उसकी बात ही मत उठाओ। वह बात उठानी अशिष्ट है। उससे असस्कार पता चलता है। जो मिलता है उसकी बात करो, उसका गुणगान करो, उसकी महिमा गाओ, उसके गीत गुनगुनाओ। और तुम जल्दी ही पाओगे और द्वार खुलने लगे। तुम जल्दी ही पाओगे और नयी हवाएँ आने लगी, और नयी झलकें मिलने लगी।

जैसे-जैसे आदमी को मिलना शुरू होता है कुछ, वैसे-वैसे उसके पैर शिथिल होने लगते है। यह भी मन की प्रकृति समझ लेनी जरूरी है।

तुमने कभी खयाल किया, अगर तुम कही यात्रा पर गये हो, पदयात्रा पर, किसी तीर्थयात्रा पर, जैसे-जैसे मदिर करीब आने लगता है, वैसे-वैसे पैर शिथिल होने लगते हैं। अक्सर ऐसा है, अक्सर तुमने देखा होगा या अनुभव भी किया होगा कि ठेठ मदिर के सामने जा के यात्री सीढियो पे बैठ जाता है। अब ज्यादा दूर

नही है मामला। अब पाँच सीढियाँ, दस सीढियाँ चढनी हैं, और मदिर ! दस मील चल आया, पहाड चढ आया, अभी बठा नही बीच में कही, ठीक मदिर के सामने आ के बैठ जाता है। लगता है आ ही गये !

लेकिन तुम मदिर की सीढियो पर बैठो या हजार मील दूर मदिर से बैठो, फर्क क्या है ? सीढियो पर जो है वह भी मदिर के बाहर है। हजार मील दूर जो है, वह भी मदिर के बाहर है।

और परमात्मा का मदिर कुछ ऐसा है कि तुम बैठे कि चूके। यह कोई जड-पत्थर का मदिर नही है कि तुम सीढियो पर बैठे रहे तो मदिर भी वहाँ रुका रहेगा, यह तो चैतन्य मदिर है तुम बैठे कि चूके ! तुम बैठे कि मदिर दूर गया ! तुम रुके कि खोया !

'सामने मजिल है और आहिस्ता उठते है कदम
पास आ कर दूर हो रहे हैं मजिल से हम।'

सावधान रहना !

जब ध्यान की लहरें उठने लगे, भक्ति की उमग आने लगे, थोडी रसधार बहे, थोडी मस्ती छाये, तो दो खतरे है। एक खतरा यह है, जो इस प्रश्न करने वाले ने पूछा है, वह खतरा यह है कि तुम कहो कि यह तो कुछ भी नही है, और चाहिए ! तो भी तुम दूर हो जाओगे। दूसरा खतरा यह है कि तुम कहो, 'बस हो गया ! पहुँच गये।' और बैठ जाओ, तो भी तुम खो गये !

फिर करना क्या है ?

चलते जाना है और शिकायत नही करनी है !

चलते जाना है और अहोभाव से भरे रहना है !

चलते जाना है और धन्यवाद देते जाना है !

ओठ पर गीत रहे धन्यवाद का, और पैर, पैर रुके न ! धन्यवाद तुम्हारा रुकावट न बन जाए !

अक्सर ऐसा होता है कि शिकायती चलते है और धन्यवादी बैठ जाते हैं। दोनो खतरे है।

पहुँचता वही है जिसने उस गहरे सयोग को साध लिया, धन्यवादी है, और चलता है। बडा गहरा सतुलन है, लेकिन अगर होश रखो तो सध जाता है।

चौथा प्रश्न कल के सूत्र में कहा गया कि लौकिक और वैदिक कर्मों के त्याग को निरोध कहते है और निरोध भक्ति का स्वभाव है। और फिर यह भी कहा गया कि भक्त को शास्त्रोक्त कर्म विधिपूर्वक करते रहना चाहिए। कृपया इस विरोध को स्पष्ट करे।

विरोध नही है, दिखायी पडता है। जो भी पढ़ेगा, तत्क्षण दिखायी पडेगा

कि पहले तो कहा लौकिक और वैदिक कर्म, सबका त्याग हो जाता है, निरोध हो जाता है, छूट जाते हैं, और फिर कहा, करते रहना चाहिए।

विरोध दिखायी पडता है, विरोध है नहीं। जान के ही दूसरा सूत्र रखा गया है कि जब तुम्हारे जीवन से लौकिक और वैदिक, इस लोक के और परलोक के, सारी आकांक्षाएँ और सारे कर्म छूट जाते हैं, तो कहीं ऐसा न हो कि तुम कर्मों को छोड ही दो। कर्म तो छूट जाते हैं, लेकिन तुम करते रहना। इसका अर्थ हुआ कि अब तक तुमने कर्ता की तरह किया था, अब अभिनेता की तरह करना। फिर तत्क्षण विरोध खो जाता है। अब तक तुमने किया था कि मै कर्ता हूँ, अब तुम अभिनेता की तरह करना। क्योंकि जिस विराट समूह के तुम हिस्से हो, वह मानता है कि ये कर्म उचित हैं। इनका अभिनय करना है। तुम्हारे लिए इनका कोई मूल्य नहीं है।

ऐसा ही समझो जब शहर मे आते हो तो बाएँ चलने लगते हो, जगल मे जा के फिर बाएँ-दाएँ का हिसाब रखने की कोई जरूरत नहीं। जगल मे तुम अकेले हो बाएँ चलो, दाएँ चलो, बीच मे चलो, जैसा चलना हो चलो, क्योंकि वहाँ कोई पुलिस वाला नहीं खडा है, रास्ते पे कोई तख्तियाँ नहीं लगी है। वहाँ कोई और है ही नहीं तुम्हारे सिवाय।

अगर जगल मे भी जा के तुम बाएँ-ही-बाएँ चलो तो तुम पागल हो, फिर तुम्हारा दिमाग खराब है। क्योंकि बाएँ चलने का कोई सबध चलने से नहीं है, बाएँ चलने का सबध भीड मे चलने से है। जब अकेले हो तब मुक्त हो।

तो, जो व्यक्ति भक्त की दशा को उपलब्ध हुआ, अपने भीतर अपने एकात मे तो सभी नियमो के बाहर हो जाता है। वहाँ न तो कोई शास्त्र है, न कोई नियम है, न कोई रीति है, न कुछ पाना है, न कहीं जाना है। वह तो अपने भीतर परम अवस्था को उपलब्ध हो गया है। वह तो परमात्मा के साथ एकरस हो गया! भीतर, जहाँ सब एकात है, वहाँ तो अद्वैत हो गया, वहाँ तो अनन्यता सध गयी!

लेकिन बाहर, जब वह राह पर जाएगा, तब? तब बाएँ चलेगा। कहीं ऐसा न हो कि जो तुमने भीतर अनुभव किया है, तुम उसे बाहर भी थोपने की चेष्टा मे न पड जाओ, इसीलिए स्पष्ट सूत्र पीछे दिया है करने चाहिए! 'उस व्यक्ति को शास्त्रोक्त कर्म विधिपूर्वक करने चाहिए।' जान के, होश से, उन नियमो का पालन करना चाहिए। वे अभिनय होंगे अब। उनकी कोई अर्थवत्ता नहीं है।

लेकिन अगर तुम अधो के बीच रहते हो तो अधो के नियम मानो। अगर तुम अज्ञानियो के बीच रहते हो तो अज्ञानियो के नियम मानो।

इसे थोड़ा समझने जैसा है।

भारत में एक बडी प्राचीन धारणा है कि जब व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो जाए तो वह चेष्टापूर्वक नियमों को वैसा ही मानता रहे जैसा पहले मानता था जब ज्ञान का उपलब्ध न हुआ था। शायद यही कारण है कि भारत मे महावीर, बुद्ध, पतजलि, नारद, कबीर, किसी का भी जीसस जैसी सूली नही लगानी पडी, सूली पे नही लटकाना पडा, और न सुकरात जैसा जहर पिला के मारना पडा।

इसके पीछे बहुत-से कारणो मे एक बुनियादी कारण यह भी है कि बुद्ध ने जो भीतर पाया, उसे जबरदस्ती उन लागो पे नही थोपा जो अभी उसको समझ भी न सकते थे। भीड से अकारण सघर्ष न लिया। भीड को फुसलाया, समझाया, जगाने की चेष्टा की, ऊपर उठाने के उपाय किये, लेकिन अकारण सघर्ष न लिया।

जीसस सीधे सघर्ष में आ गये। शायद जीसस के मुल्क मे, यहूदियो के समाज में, ऐसा कोई सूत्र नही था। ऐसे किसी सूत्र का मै अब तक नही देख पाया हूँ यहूदियो के किसी भी शास्त्र मे, जिसमे यह कहा गया हो कि परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति समाज के नियमो को मान कर चले। टकराहट स्वाभाविक हो गयी।

और जब टकराहट होगी तो एक बात पक्की है कि ज्ञानी तो एक है, अज्ञानी करोड है। भीड उनकी है। वे ज्ञानी को मार डालेगे। ज्ञानी अज्ञानियो को तो न उठा पाएगा, अज्ञानी ज्ञानी को मिटा देगे।

तो, भीड को मान कर चलना सिर्फ अपनी सुरक्षा ही नही है — क्योंकि ज्ञानी को अपनी सुरक्षा की क्या चिन्ता! — भीड को मान कर चलना, भीड पर करुणा है। अन्यथा भीड तुम्हारे विपरीत हो जाएगी, तुम उसे फुसला भी न सकोगे, राजी भी न कर सकोगे, तुम उसे दिशा भी न दे सकोगे।

ऐसा समझो कि तुम मेरे साथ हो, तुम्हारी निन्नानवे बाते मै मान लेता हूँ तो तुम भी मेरी एक बात मानने को तैयार हो सकते हो, हालाकि मेरी एक तुम्हे बिलकुल बर्बाद कर देगी, तुम जहाँ हो वहाँ से उखाड देगी। और तुम्हारी निन्नानवे मेरा कुछ बिगाडने वाली नही है। तुम्हारी निन्नानबे मेरे लिए अभिनय होगी। मेरी एक तुम्हारे लिए जीवन-क्रान्ति हो जाएगी।

आखिरी प्रश्न : जिसे भक्ति मे अनन्यता कहा है, क्या वही दर्शन का अद्वैत नही है?

अर्थ तो वही है, लेकिन स्वाद मे बडा भेद है।

अनन्यता मे रस है। अद्वैत बडा रूखा-सूखा शब्द है। अद्वैत तर्क का शब्द है, अनन्यता प्रेम का।

अनन्यता कहती है : एक हो गये!

अद्वैत कहता है : दो न रहे।

बात तो वे एक ही कहते हैं। लेकिन 'दो न रहे', इसमें बड़ा तर्क है। अद्वैत यह भी नही कहता कि 'एक' हो गये, क्योंकि 'एक' कहने से 'दो' का खयाल आ सकता है। 'एक' मे 'दो' का खयाल छिपा ही है। इसलिए कान को सीधा न पकड़ के तर्कशास्त्र हाथ घुमा के उलटा पकडता है 'दो' न रहे, इसलिए अद्वैत। क्या हुआ, इसके सबध में बात नही कही जा रही है।

'अनन्यता' सीधी खबर है कि क्या हुआ।

'अद्वैत' बाहर-बाहर मे खबर है।

अद्वैत ऐसा है जैसा कोई तुमसे पूछे कि 'प्रेम क्या', और तुम कहो, 'घृणा नही'। निषेध मे कहा जा रहा है। माना कि प्रेम घृणा नही है, यह सच है, लेकिन प्रेम घृणा के न होने मे बहुत ज्यादा है।

'अनन्यता' बडा प्यारा शब्द है। दूसरा दूसरा न रहा अनन्य का अर्थ है। अन्य अन्य न रहा, अनन्य हो गया! दूसरा दूसरा न रहा, एक हो गये! अद्वैत मे ज्यादा है यह बात। इसमे थोडा रस है जो अद्वैत में नहो है।

'अद्वैत' गणित और तर्क का शब्द है, 'अनन्यता' प्रेम और काव्य का। अद्वैत पर किताब लिखनी हो तो रूखी-सूखी होगी। अनन्यता पर किताब लिखनी हो तो काव्य होगा, तो गीत होगा।

अनन्यता प्रगट करनी हो तो नाच के प्रगट हो सकती है, जैसे नर्तक नृत्य से एक हो जाता है, ऐसा अनन्य। अनन्यता प्रगट करनी हो तो मस्ती से प्रगट होगी। अद्वैत प्रगट करना हो तो मस्ती की कोई जरूरत नही, नृत्य की जरूरत ही नही है, नृत्य को बीच मे लाने मे बाधा पडेगी, सीधे तर्क के नियम काफी हैं।

इसलिए वेदात के शास्त्र बडे रूखे-सूखे है, मरुस्थल जैसे है! वे भी परमात्मा के ही शास्त्र हैं, क्योकि मरुस्थल भी परमात्मा के ही है। लेकिन वहाँ हरियाली नही उगती। वहाँ फूल नही लगते और पक्षियो का कोई कलरव नही होता। झरनो का कलकलनाद वहाँ नही है। राह मे गुजरोगे तो मरुस्थल में भी खजूर के पेड मिल जाते है, वे भी वेदात मे न मिलेंगे।

इसलिए वेदात ने एक बडा रूखा-सूखा शास्त्र दिया है। इसलिए वेदाती तर्क करते रहे, खडन-मडन करते रहे, शास्त्रार्थ करते रहे। भक्त नाचा! उतना समय उसने इसमे न गँवाया।

चैतन्य नाचे! ले लिया तबूरा, गाँव-गाँव नाचे! नही किया कोई विवाद।
मीरा नाची!
पग घुघरू बाँध नाची!
कोई विवाद नही किया!
विवाद मे कहाँ वह स्वाद जो पग-घुघरुओ मे है!

विवाद मे कहाँ वह स्वाद जो वीणा की झँकार मे है!

और जब इतने मधुर उपाय उपलब्ध हो तो क्या तर्क जैसा रूखा-सूखा उपाय खोजना!

मीरा बरसी!

जिसने देखा वह डूबा!

जो पास आया, भूला!

विस्मृत किया अपने का!

एक डुबकी लगायी!

कुछ ले के गया!

चैतन्य के जीवन में तो दोनो घटनाएँ है, क्योकि पहले वे बडे तर्कशास्त्री थे, न्यायविद् थे। और एक ही काम था उनके जीवन मे विवाद। उन जैसा विवादी नही था। बगाल मे उनकी बडी ख्याति थी। बडे-बडे पडितो को उन्होने हराया। लेकिन धीरे-धीरे एक बात समझ मे आयी पडित हार जाते है, वे जीत जाते है — लेकिन भीतर कोई रसधार नही बह रही, इस जीत का भी इकटठा करके भी क्या करेगे! ऐसे जीवन बीता जाता है। यह प्रमाण-पत्र इकट्ठे करके क्या होगा कि कितने लोगो को जीत लिया और कितने लोगो को तर्क मे पराजित किया! यह तर्क के जाल से क्या होगा!

एक दिन होश आया कि यह तो समय को गवाना है। फिर उन्होने सब तर्क छोड दिया। शास्त्र नदी में डुबा दिये। ले लिया मजीरा, नाचने लगे! तब उन्होने किसी और ढग से लोगो को जीता। तर्क से नही जीता, प्रेम से जीता! तब उनके चारो तरफ एक, एक अलग ही माहौल चलने लगा! उनकी हवा में एक और गध आ गयी! जहाँ उनके पैर पडे, वही विजय-यात्रा हुई। जिसने उन्हे देखा, वही हारा। लेकिन इस हार मे कोई हराया न गया। इस हार मे कोई अहकार न था जीतने वाले का। इस हार मे हारने वाले का पीडा न हुई। यह प्रेम की हार थी जो कि जीतने का एक ढग है।

प्रेम की हार मे कोई हारता ही नही, दोनो जीतते हैं।

प्रेम मे जीते तो जीत, हारे तो जीत। वहाँ हार-जीत मे भेद नही है।

अनन्यता बडा मधुर शब्द है, अद्वैत बिलकुल रूखा-सूखा!

अनन्यता ऐसा है जैसा हरा फल, रस-भरा!

अद्वैत ऐसा है जैसे सूखा फल, झुर्रियाँ पडा, सब रस खो गया!

गुठली-ही-गुठली है अद्वैत!

पर अद्वैत की भाषा अहकार को जमती है, क्योकि अहकार को गँवाने की शर्त नही है वहाँ।

इसलिए तुम देखोगे अद्वैतवादी सन्यासी हैं भारत में, उनको तुम बडा अहम्मन्य पाओगे, बडे अहकार से भरा हुआ पाओगे। क्योकि सारी पकड तर्क की है। तुम भक्त की कमनीयता उनमें न पाओगे। भक्ति की लोच, भक्त का सौंदय, वहाँ उसका अभाव होगा।

भारत ने अद्वैत के नाम पर बहुत खोया। भारत अकडा अद्वैत के कारण, अहकारी हुआ, दम्भ बढा, शास्त्र बढे, तर्कजाल फैला। लेकिन भारत का हृदय धीरे-धीरे रस से शून्य होता चला गया। तो ऐसा कुछ हो गया जैसे कि उत्तप्त गर्मी के दिन आते हैं, सूरज तपता है और पृथ्वी सूख जाती है और दरारें पड जाती हैं।

भक्ति की वर्षा चाहिए।

—ताकि फिर दरारें खो जाएँ।

—धरती का कण्ठ फिर भीगे।

—धरती के प्राण तृप्त हो।

—तृषा मिटे।

—और धरती धन्यवाद में आकाश को हजारो-हजारो वृक्षो के फूल भेट करे!

भक्ति वर्षा है। अद्वैत उत्तप्त सूर्य है।

पर अपनी-अपनी मौज। अद्वैत से भी कोई पहुँचना चाहे तो पहुँच जाता है। लेकिन तब बडा ध्यान रखना जरूरी है कि कही यह तर्कजाल अहकार को मजबूत न करे।

भक्ति सुगम है। और भक्ति मे भटकना कम सभव है। क्योकि भक्ति की पहली ही शर्त है अहकार को छोडना।

भक्ति का सारा जोर 'उस' पर है।

अद्वैत कहता है : 'अह ब्रह्मास्मि! मै ब्रह्म हूँ!' ठीक है बिलकुल बात। अगर जोर ब्रह्म पे हो तो ठीक है, कही जोर 'मै' पे हुआ तो बिलकुल गलत है। कौन तय करेगा, किस पे जोर है? 'अहं ब्रह्मास्मि! मै ब्रह्म हूँ!'— जब मै यह कहूँ कि मै ब्रह्म हूँ तो तुम कैसे तय करोगे कि मेरा जोर कहाँ है 'मै' पर या ब्रह्म पर? अगर ब्रह्म पे हुआ तो सब ठीक, अगर मै पे हुआ तो सब गलत। वाक्य वही है।

लेकिन भक्ति 'मै' पर बात ही नही उठाती। भक्ति कहती है 'उसके' अनन्य प्रेम में डूब जाना, 'उसके' परम प्रेम में डूब जाना भक्ति है। 'उसके'!

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

दिनांक १५ जनवरी, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना

कलाओं की कला है भक्ति

विराट का अनुभव – मुश्किल! पर अनुभव से भी ज्यादा मुश्किल है अभिव्यक्ति। जान लेना बहुत मुश्किल – जना देना और भी ज्यादा मुश्किल! क्योंकि व्यक्ति मिट सकता है बूंद खो सकती है सागर मे, और अनुभव कर ले सकती है सागर का, लेकिन दूसरी बूंदो को कैसे कहे, जिन्होने मिटना नही जाना, जो अभी अपनी पुरानी सीमाओ मे आबद्ध है उनको कैसे कहे!

एक पक्षी उड सकता है खुले आकाश मे अपने पिंजरे से, लेकिन जो पिंजरे मे बद है, उन्हे खुले आकाश की खबर कैसे द!

खुला आकाश एक अनुभव है – बडा सूक्ष्म! प्राणो में उसका स्पर्श होता है, गहरे मे उसकी अनुभति होती ह – लेकिन शब्दो में कैसे उसे कोई बाँधे!

शब्द मे बँधते ही आकाश आकाश नही रह जाता। शब्द मे बँधते ही विराट विराट नही रह जाता। इधर शब्द मे बाँधा कि उधर अनुभव झूठा हुआ।

इसलिए बहुत है जो जान के चुप रह गये है। बहुत हैं जो जान के गूंगे हो गये हैं। गूंगे थे नही, जानने ने गूंगा बना दिया। बहुत थोडे-से लागो ने हिम्मत की है – दूर की खबर तुम तक पहुचाने की। वह हिम्मत दाद देने के योग्य है। क्योंकि असभव है चेष्टा। माध्यम इतने अलग हैं!

समझे जैसे देखा सौदर्य आँख से, और फिर किसी को बताना हो और वह अधा हो, तो क्या करियेगा? फिर कोई और माध्यम चुनना पडेगा, आँख का माध्यम तो काम न देगा। तुमने तो आँख से देखा था सौदर्य सुबह का, या रात का तारो से भरे आकाश का, अधे को समझाना है, आँख का माध्यम तो काम नहीं देगा, तो सितार पर गीत बजाओ! धुन बजाओ! नाचो! पैरो में घूंघर बाँधो! लेकिन माध्यम अलग हो गया जो देखा था, वह सुनाना पड रहा है।

तो जो देखा था, वह कैसे सुनाया जा सकता है? जो आँख ने जाना, वह कान कैसे जानेगा?

इससे भी ज्यादा कठिन है बात सत्य के अनुभव की। क्योंकि अनुभव होता है निर्विचार में और अभिव्यक्ति देनी पडती है विचार मे। विचार सब झूठा कर देते हैं।

तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ॥ १५ ॥

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्य ॥ १६ ॥

कथादिष्विति गर्ग ॥ १७ ॥

आत्मरत्यविरोधेनेति शाडिल्य ॥ १८ ॥

नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता

तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ॥ १९ ॥

अस्त्येवमेवम् ॥ २० ॥

यथा व्रजगोपिकानाम् ॥ २१ ॥

तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवाद ॥ २२ ॥

तद्विहीन जाराणामिव ॥ २३ ॥

नास्त्येव तस्मिस्तत्सुखसुखित्वम् ॥ २४ ॥

फिर भी हिम्मतवर लोगो ने चेष्टा की है करुणा के कारण, शायद किसी के मन मे थोडी भनक पड जाए, न सही पूरी बात, न सही पूरा आकाश, थोडी-सी मुक्ति की सुगबुगाहट आ जाए, थोडी-सी पुलक पैदा हो जाए, न सही पूरा दृश्य स्पष्ट हो, प्यास ही जग जाए, सत्य न बताया जा सके न सही, लेकिन सत्य की तरफ जाने के लिए इशारा, इगित किया जा सके—उतना भी क्या कम है !

'हजारो साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है
बडी मुश्किल से होता है चमन मे दीदावर पैदा।'

हजारो साल तक नर्गिस रोती है, कोई उसकी रोशनी को देखने और दिखाने वाला नही। फिर कही कोई दीदावर पैदा होता है, कही कोई एक आँख वाला पैदा होता है।

नर्गिस को तो शायद एक आँख वाला भी, उसकी रोशनी के लिए बोध दिला देता होगा कि मत रो, तू सुन्दर है, लेकिन सत्य के लिए तो और भी कठिनाई है। हजारो साल मे कभी कोई दीदावर वहाँ भी पैदा होता है। फिर वह जो कहता है, वह कोई गीत जैसा नही है, हकलाने जैसा है, वह नाच जैसा नही है, लगडाने जैसा है। और नाच मे और लगडे की गति मे जितना अतर है, किसी के मधुर गीत में और किसी के हकलाने मे जितना अतर है, उतना ही अतर सत्य को देखने मे और सत्य को कहने मे है।

बहुत तो चुप रह गये। उन्होने यह झझट न ली। लोगो ने पूछा भी ऐसे चुप रह जाने वालो से। वे तो ढोग कर गये कि दीवाने है। वे तो पागल बन गये। उन्होने तो अपने चारो तरफ एक पागलपन का अभिनय कर लिया। धीरे-धीरे लोग समझ गये कि पागल हो गये है, छोडो भी !

'चलो अच्छा हुआ काम आ गयो दीवानगी अपनी
वर्ना हम जमाने-भर को समझाने कहाँ जाते।'

बहुत है जिन्होने सत्य को जान कर अपने को पागल घोषित कर दिया है। सूफी उनको मस्त कहते है। दुनिया उनको पागल समझ लेती है। झझट मिटी ! अब कोई पूछने भी नही आता कि क्या जाना। पागल से कौन पूछता है !

लेकिन कुछ थोडे-से लोग इतना आसान रास्ता नही लेते। वे लाख तरह की चेष्टा करते हैं कि तुम्हे किसी तरह जतला दे। तुम्हारा हाथ पकड के चलाने की कोशिश करते हैं। तुम्हारे भीतर तुम्हारे प्रेम की आग को जलाने की कोशिश करते हैं। ईंधन बन जाते हैं तुम्हारे हृदय मे कि लपटे लगे। हजार तरह के झूठ भी बोलते है, सिर्फ इसीलिए कि सत्य की तरफ थोडा इशारा हो जाए। तो, यह पाप करने जैसा है।

लाओत्सु ने कहा है 'सत्य बोला नहीं कि झूठ हुआ नही। जो भी बोला जाएगा वह झूठ हो जाएगा।'

इसका यह अर्थ हुआ कि बुद्धपुरुष झूठ बोलते रहे, बोले तो झूठ ही बोले, क्योंकि बोलने मे सच तो आता नही, बोलने मे ही झूठ हो जाता है।

जैसे तुमने कभी देखा, लकडी सीधी, पानी मे डालो, तिरछी दिखायी पडने लगती है। झूठ हो गया। बाहर खीचो, सीधी-की सीधी है। पानी मे डालो, फिर तिरछी दिखायी पडने लगती है। क्या हो जाता है? पानी का माध्यम हवा के माध्यम से भिन्न है। तो हवा के माध्यम मे लकडी का जो रूप है, रग है, वह पानी मे नही रह जाता। जानते हो तुम भलीभाँति कि लकडी सीधी है, तुमने ही डाली है, लेकिन तुम्ही को तिरछी दिखायी पडने लगती है।

उनकी तो बात ही छोड दो – सुनने वालो की– जब सत्य को जानने वाला सत्य बोलने की कोशिश करता है, उसका खुद ही तिरछा दिखायी पडने लगता है। भाषा का माध्यम, अभिव्यक्ति का माध्यम !

नारद ने इन सूत्रो मे, भक्ति की कितने-कितने ढगो से व्याख्या की गयी है, उनके थोडे-से उदाहरण दिये है।

'अब नाना मतो के अनुसार उस भक्ति के लक्षण बताते है।'

भक्ति तो एक है, मत नाना है। क्योंकि जिसको जैसा सूझा, वैसी उसने अभिव्यक्ति दी है। जिसको जैसी समझ आयी, जिसका जैसा ढग था, उसने वैसे रग भरे। ये लक्षण भक्ति के नही है, अगर गौर से समझो तो ये लक्षण, जिस भक्त ने भक्ति का गीत गाया, उसके है। ये देखने के ढग के सम्बध मे खबर देते है, जो देखा गया उस सम्बध मे कुछ भी खबर नही देते।

बहुत मत है। बहुत मत होंगे ही, क्योंकि भक्ति अनत है। उसके बहुत किनारे है, और कही से भी घाट बना के तुम अपनी नौका को छोड दे सकते हो सागर मे। फिर जब तुम सागर की गहराइयो मे पहुँचोगे, मध्य मे पहुँचोगे, उस पार पहुँचोगे, तो स्वभावत तुम उसी घाट की बात करोगे जिससे तुमने नाव छोडी थी। और तुम कहोगे कि जिसको भी नाव छोडनी हो, वही घाट है। तुम्हे और घाटो का पता भी नही है। एक घाट काफी है। तुम अपने ही घाट का वर्णन करोगे। दूसरा किसी और घाट से उतरा था सागर मे। सागर के घाटो का कोई हिसाब है! कोई हिन्दू की तरह उतरा था, कोई मुसलमान की तरह उतरा था, कोई ईसाई की तरह उतरा था। ये सब घाट हैं, तीर्थ। फिर जो जहाँ से उतरा था, उसी की बात करेगा। दूसरे पर पहुँच कर भी, तुमने जिस किनारे से नाव छोडी थी, तुम्हारे दूसरे किनारे की अभिव्यक्ति मे उस किनारे का हाथ रहेगा।

तो ये लक्षण जो भक्ति के हैं, भक्तो ने बताये हैं, इन मे ध्यान रखना जो

जहाँ से पहुँचा उसने उसी की बात की। यह चर्चा मंजिल की कम, यात्रा की ज्यादा है, यह आखिरी कदम की नही, पहले कदम की है। और ठीक भी है, क्योकि तुम, जो चले नही हो, उन्हे पहले कदम की ही जरूरत है, आखिरी कदम की जरूरत भी नही है। दूसरे किनारे की चर्चा हो नही सकती, हो भी तो तुम्हारे किसी काम की नही है। अभी तो इस किनारे मे भी तुम दूर खडे हो। अभी तो इस किनारे पे आने के लिए भी तुम्हे हिम्मत जुटानी पडेगी।

और निश्चित ही, सभी घाटो से नाव छोडने की कोई जरूरत नही है, एक ही घाट पर्याप्त है। सभी से छोडना भी चाहोगे तो कैसे छोडोगे? जब भी छोडोगे, एक ही घाट मे छोडोगे।

किसी घाट पर पत्थर जडे है। किसी घाट पर हीरे जडे होगे। किसी घाट पर आकाश को छूते वृक्ष खडे है। किसी घाट पे मरुस्थल होगा, रेत का विस्तार होगा। किसी घाट पर आदमी ने कुछ व्यवस्था कर ली होगी सीढियाँ लगा ली होगी। किसी घाट पर कोई व्यवस्था न होगा, अराजक होगा। पर इसमे क्या फर्क पडता है! नाव छूट जाती है सभी घाटो से।

'शोरे-नाकूसे-बरहमन हो कि बागे-हरम
छुपके हर आवाज मे तुझको सदा देता हूँ मै।'

जो जानते हैं, वे कहते है यह मंदिर के पुजारी के घंटो की आवाज हो कि मस्जिद के मुल्ला की, सुबह की बाग हो, इसमे कोई फर्क नही पडता।

'छुपके हर आवाज़ मे तुझको सदा देता हूँ मै।'

हर आवाज मे, हर ढंग मे, हर व्यवस्था मे, खोजने वाला तो वही चैतन्य है, वही प्राण है – प्यासे, प्रेम के लिए आतुर!

'अब नाना मतो के अनुसार उस भक्ति के लक्षण बताते है।'

'पराशर के पुत्र व्यास के अनुसार भगवान की पूजा आदि में अनुराग होना भक्ति है।'

पूजा का अर्थ होता है परमात्मा को प्रतिस्थापित करना, एक पत्थर की मूर्ति है या मिट्टी की मूर्ति है, परमात्मा को उसमे आमंत्रित करना, परमात्मा को कहना कि 'इसमे आओ और विराजो – क्योकि तुम हो निराकार कहाँ तुम्हारी आरती उतारूँ? हाथ मेरे छोटे है, तुम छोटे बनो! तुम हो विराट कहाँ धूप-दीप जलाऊँ? मै छोटा हूँ, सीमित हूँ, तुम मेरी सीमा के भीतर आओ! तुम्हारा ओर-छोर नही कहाँ नाचूँ? किसके सामने गीत गाऊँ? तुम इस मूर्ति मे बैठो!'

पूजा का अर्थ है परमात्मा की प्रतिस्थापना सीमा मे, आमंत्रण। इसलिए पूजा का प्रारंभ उसके बुलाने से है।

अँगरेजी मे शब्द है 'गॉड' भगवान के लिए। वह शब्द बडा अनूठा है!

उसका मूल अर्थ है – जिस मूल धातु से वह पैदा हुआ है, भाषाशास्त्री कहते हैं, उस मूल धातु का अर्थ है – 'जिसको बुलाया जाता है'। बस इतना ही अर्थ है। जिसको बुलाया जाता है, जिसको पुकारा जाता है – वही भगवान।

दूसरा, जिसने कभी पूजा का रहस्य नही जाना, देखेगा तुम्हे बैठे पत्थर की मूर्ति के सामने, समझेगा 'नासमझ हो! क्या कर रहे हो?' उसे पता नही कि पत्थर की मूर्ति अब पत्थर की नही – मृण्मय चिन्मय हो गया है! क्योंकि भक्त ने पुकारा है! भक्त ने अपनी विवशता जाहिर कर दी है। उसने कह दिया है कि 'मै मजबूर हूँ। तुम जैसा विराट मैं न हो सकूँगा, तुम कृपा करो, तुम तो हो सकते हो मेरे जैसे छोटे! मेरी अडचने हैं। मेरी शक्ति नही इतनी बडी कि तुम जैसा विराट हो सकूँ। दया करो! तुम ही मुझ जैसे छोटे हो जाओ ताकि थोडा सवाद हो सके, थोडी गुफ्तगूं हो सके, दो बाते हो सके। मै फूल चढा सकूं, आरती उतार सकूं, नाच लूं तुम्हारा कुछ न बिगडेगा। सभी रूप तुम्हारे है, यह एक और रूप तुम्हारा सही! मुझे बहुत कुछ मिल जाएगा, तुम्हारा कुछ खोएगा नही।'

भक्त की आंख से देखना मूर्ति को, नही तो तुम मूर्ति को न देख पाओगे, तुम्हें पत्थर दिखायी पडेगा, मिट्टी दिखायी पडेगी। भक्त ने वहाँ भगवान को आरोपित कर लिया है। और जब परिपूर्ण हृदय से पुकारा जाता है, तो मिट्टी भी उसी की है। मिट्टी उससे खाली तो नही। पत्थर उसके बाहर तो नही। वह वहाँ छिपा ही पडा है। जब कोई हृदय से पुकारता है तो उसका आविर्भाव हो जाता है।

इसलिए भक्त जो देखता है मूर्ति मे, तुम जल्दी मत करना, तुम नही देख सकते। देखने के लिए भक्त की आँखे चाहिए।

'बडी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा
हजारो साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है।'

पत्थर रोते है हजारो साल, तब कही कोई पत्थर में परमात्मा को देखने वाला पैदा होता है।

आँख चाहिए!

पूजा का प्रारम्भ है आमत्रण में कि आओ, विराजो, प्रतिस्थापना मे!

मूर्ति तो झरोखा है, वहाँ से हम विराट में झाँकते हैं।

तुम अपने घर में खडे हो, झरोखे से आकाश में झाँकते हो। तुम चाँद-तारों की बात करो, दूर फैले नील-गगन की बात करो, और कोई दूसरा हो जिसको सिर्फ चौखटा ही दिखायी पडता हो खिडकी का, वह कहे, 'कहाँ की बाते कर रहे हो? पागल हो गये हो? लकडी का चौखटा लगा है, और तो कुछ भी नही। कहाँ के चाँद-तारे?'

तो, जब तुम्हे मूर्ति में कुछ भी न दिखायी पडे तो जल्दी मत करना, तुम्हे चौखटा ही दिखायी पड रहा है।

भक्त जब हृदयपूर्वक बुलाता है तो मूर्ति खुल जाती है, उसके पट बद नही रहते। भक्त को उस मूर्ति के माध्यम से कुछ दिखायी पडने लगता है। उसे देखने के लिए भक्त की ही आँखे चाहिए।

कहते है कि मजनू जब बिलकुल पागल हो गया लैला के लिए, तो उस देश के सम्राट ने उसे बुलवाया। उसे भी दया आने लगी, द्वार-द्वार गली-गली कूचे-कूचे वह पागल 'लैला-लैला' चिल्लाता फिरता है! गॉव-भर के हृदय पसीज गये। लोग उसके आँसुओ के साथ रोने लगे। सम्राट ने उसे बुलाया और कहा, 'तू मत रो।' उसने अपने महल से बारह सुदरियॉ बुलवाई और उसने कहा, 'इस पूरे देश में भी तू खोजेगा, तो ऐसी सुदर स्त्रिया तुझे न मिलेगी। कोई भी तू चुन ले।'

मजनू ने आँख खोली। आँसू थमे। एक-एक स्त्री को गौर से देखा, फिर आँसू बहने लगे और उसने कहा कि लैला तो नही है। सम्राट ने कहा, 'पागल! तेरी लैला मैने देखी है, साधारण-सी स्त्री है। तू नाहक ही बावला हुआ जा रहा है।'

कहते है, मजनू हँसने लगा। उसने कहा, 'आप ठीक कहते होगे, लेकिन लैला को देखना हो तो मजनू की ऑख चाहिए। आपने देखी नही। आप देख ही नही सकते, क्योकि देखने का एक ही ढग है लैला को—वह मजनू की ऑख है। वह आपके पास नही है।'

भगवान को देखने का एक ही ढग है, वह भक्त की आँख है।

तो कोई अगर मदिर मे पूजा करता हो तो नाहक हँसना मत।

मूर्ति-भजक होना बहुत आसान है, क्योकि उसके लिए कोई सवदेनशीलता तो नही चाहिए। मूर्तियो को तोड देना बहुत आसान है, क्योकि उसके लिए कोई हृदय की गहराई तो नही चाहिए।

मूर्ति मे अमूर्त को देखना बडा कठिन है! वह इस जगत की सबसे बडी कला है। आकार मे निराकार को झॉक लेना, शब्द में शून्य को सुन लेना, दृश्य मे अदृश्य को पकड लेना—उससे बडी और कोई कला नही है।

इसलिए प्रेम कलाओ की कला है, सरताज है! उसके पार फिर कुछ भी नही है।

पूजा का अर्थ है आकार में निमत्रण निराकार को।

और अगर तुमने कभी पूजा की है तो तुम जानोगे, तुम्हारे बुलाने के पहले मूर्ति साधारण पत्थर का टुकडा है, तुम्हारे बुलाने के बाद नही।

रामकृष्ण पूजा करते थे। अनेक दिन बीत गये, वे रोज रोते, घटो पूजा करते, फिर एक दिन गुस्से मे आ गये। तलवार टँगी थी काली के मदिर में मूर्ति के

सामने, तलवार उतार ली, और कहा, 'बहुत हो गया! इतने दिन से बुलाता हूँ! अगर तू प्रगट नहीं होती तो मैं अप्रगट हुआ जाता हूँ। या तो तू दिखायी दे, तू हो, या मैं मिटता हूँ।' तलवार खींच ली। एक क्षण और, और गर्दन पे मारे लेते थे, कि सब कुछ बदल गया। मूर्ति जीवित हो उठी! वहाँ काली न थी। मातृत्व साकार हो उठा! ओंठ जो बंद थे, पत्थर के थे, मुस्कराये! आँखें जो पत्थर की थीं, और जिनसे कुछ दिखायी न पड़ता था, उन्होंने रामकृष्ण में झाँका। तलवार झनकार के साथ फर्श पर गिर गयी।

रामकृष्ण छह दिन बेहोश रहे। भक्त घबड़ा गये। मित्र परेशान हुए। डर तो पहले ही था कि यह आदमी थोड़ा पागल-सा है, यह अब और क्या हो गया! छह दिन की बेहोशी के बाद जब होश में आये, तो जो पहली बात कही, वह यही कही कि इतने दिन होश में रखा, अब फिर क्यों बेहोशी में भेजती है? इतने दिन होश में रखा—छह दिन—अब क्यों बेहोशी में भेजती है? फिर से बुला ले! जा मत! रुक!'

इतना विराट था, इतना प्रगाढ़ था अनुभव कि अपने को सम्हाल न सके। डगमगा गये!

बूँद में जब सागर उतरे तो ऐसा होगा ही। तुम्हारे आँगन में जब पूरा आकाश उतर आये तो तुम्हारे आँगन की दीवालें कहाँ तक सम्हली रहेंगी, गिर जाएँगी!

उन छह दिनों रामकृष्ण ने चिन्मय का जलवा देखा। वे छह दिन सतत परमात्मा के साक्षात्कार के दिन थे। वह उनकी पहली समाधि थी।

लेकिन पूजा का अर्थ यही है : पहले परमात्मा को आमंत्रित करो, फिर अपने को उसके चरणों में चढ़ा दो रामकृष्ण जैसे, कि कह दो कि तू ही है, अब मैं नहीं!

तुम जितनी दूर तक परमात्मा को बुलाते हो, जितनी गहराई तक बुलाते हो, उतनी दूर तक, उतनी गहराई तक वह आता है। तुम जब अपने को मिटाने को भी तत्पर हो जाते हो तो तुम्हारे अंतरतम को छू लेता है। तुम्हारी बिना आज्ञा के वह तुम में प्रवेश न करेगा। वह तुम्हारा सम्मान करता है। वह कभी भी किसी की सीमा में आक्रमण नहीं करता। बिनबुलाया मेहमान परमात्मा कभी नहीं होता। तुम बुलाते हो, मनाते हो, समझाते-बुझाते हो, तो मुश्किल से आता है।

भक्ति खो गयी है जगत से, क्योंकि भक्ति की कला बड़ी कठिन है—सब कुछ दाँव पर लगाने की कला है, जूआ है। बड़ी हिम्मत चाहिए। आँख के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए।

'पराशर के पुत्र व्यास के अनुसार भगवान की पूजा में अनुराग होना भक्ति है।'

पूजा तो बहुत लोग करते है, अनुराग होना चाहिए। सस्कारवशात् है तो फिर भक्ति नही है। चूकि पीढी-दर-पीढी तुम्हारे घर के लोग मदिर मे जाते रहे तो तुम मदिर जाते हो, मस्जिद जाते रहे तो मस्जिद जाते हो, आकार को पूजा तो आकार को पूजते हो, निराकार को पूजा तो निराकार को पूजते हो — औपचारिक, परम्परागत, लकीर के फकीर, दूसरो के पदचिह्नो पर चलने वाले! नही, ऐसे न होगा।

उधार कोई परमात्मा तक कभी नही पहुँचता। तुम्हारी प्यास चाहिए, परपरा नही। तुम्हारी आँख चाहिए, लकीर की फकीरी और उसका अधापन नही।

तो शर्त है पूजा मे अनुराग! प्रेम चाहिए! वैसा ही प्रेम चाहिए जैसे जब तुम किसी के प्रेम मे पड जाते हो, तो सब औपचारिकता खो जाती है, सब शिष्टाचार खो जाता है। पहली दफा तुम किसी और ही गहराई मे बोलना शुरू करते हो। इसके पहले भी बोलते रहे थे, लेकिन वह ओठो की बात थी। अब हृदय बोलता है! पहली दफा तुम किसी और ही हवा मे और किसी और ही माहौल मे जीते हो। क्या हो जाता है?

साधारण प्रेम में क्या होता है? दूसरे मे तुम्हे कुछ दिखायी पडने लगता है जो अब तक तुम्हे कभी किसी मे दिखायी न पडा था, तुम्हारी आँख खुलती है!

तुमने कभी खयाल किया, प्रेमी दूसरो को पागल मालूम पडते है! अगर कोई दूसरा किसी के प्रेम मे पड जाए और दीवाना हो जाए, तो तुम हँसोगे, तुम कहोगे, 'पागल है, नासमझ है। समझ में आ! होश मे आ! क्या कर रहा है?'

सारी दुनिया हँसती है प्रेमी पर, क्योकि सारी दुनिया अधी है और प्रेमी के पास आँख आ गयी है, उसे कुछ दिखायी पडता है जो किसी को दिखायी नही पडता।

'हम खुदा के भी कभी काइल न थे
उनको देखा तो खुदा याद आया।'

प्रेमी पहली दफा किसी साधारण व्यक्ति में परमात्मा के दर्शन कर लेता है, कोई झलक पाता है। तुम जिसके प्रेम में पड जाते हो, वही तुम्हें परमात्मा की थोडी-सी झलक पहली दफा मिलती है, तुम्हारा आस्तिक होना शुरू हुआ।

प्रेम आस्तिकता की पहली गध, पहली लहर। प्रेम आस्तिकता की तरफ पहला कदम! क्योकि कम-से-कम चलो एक मे ही सही, परमात्मा दिखा तो! और एक मे दिखा तो सब मे भी दिख सकता है, न भी दिखे तो भी इतना तो तुम समझ ही सकते हो कि एक मे दिखा तो सब में भी होगा।

लेकिन जल्दी ही तुम्हारी प्रेम की आँख धुधली हो जाती है जिसमे तुम्हे परमात्मा दिखा था, वह भी एक ख्वाब, एक सपना हो जाता है, जल्दी ही तुम भूल जाते हो, धूल जम जाती है ।

जब प्रेम की घटना घटे तो जल्दी करना उसे पूजा बनाने की, अन्यथा समय ढाँक देगा ।

इसलिए मै कहता हूँ, जवानी पूजा के दिन हैं । लेकिन लोग कहते है, पूजा बुढापे मे करेगे । वे कहते हैं, जवानी मे प्रेम करेंगे, बुढापे मे पूजा करेगे । इतना फासला प्रेम मे और पूजा में होगा तो प्रेम तो मर ही जाएगा, पूजा आ न पाएगी । लोग यही कह रहे है कि प्रेम तो जवानी मे करेंगे, जब प्रेम मरने लगेगा, मर ही जाएगा, तब फिर पूजा कर लेंगे ।

और असलियत यह है कि प्रेम ही पूजा बनता है । प्रेम के मरने से पूजा नही आती, प्रेम के पूरे निखरने से पूजा बन जाती है । एक मे जो दिखायी पडा है, अब इस सूत्र को पकड लेना और इसको औरो मे भी देखने की कोशिश करना । जब आँख ताजी हो, लहर नयी हो, उमग अभी जोश-भरी हो, उत्साह युवा हो, तो जल्दी कर लेना । जो तुम्हे अपनी प्रेयसी मे, प्रेमी मे दिखा हो, बच्चे मे दिखा हो, अपने बेटे मे दिखा हो, मित्र मे दिखा हो, जल्दी करना, क्योकि उस वक्त तुम्हारे पास आख है, उस वक्त सारे जगत को गौर स देख लेना तुम अचानक पाओगे, वह सभी के भीतर छिपा है, क्योकि उसके अतिरिक्त और कोई भी नही है ।

'पूजा मे अनुराग' ।

पूजा करते तुम बहुत लोगो को देखोगे, लेकिन अनराग नही है, प्रेम नही है, पूजा तो है, विधि-विधान है । सात दफा आरती उतारनी है तो तुम सात दफा आरती उतारते हो, गिनती से उतारते हो, कही आठ न हो जाए । वहाँ भी कजूसी है ।

रामकृष्ण पूजा करते तो कभी-कभी दिन-दिन-भर करते, खाना-पीना भूल जाते । उनकी पत्नी शारदा द्वार पर खडी है, वह कहती है कि परमहस देव, समय निकला जा रहा है, सूर्यास्त हुआ जा रहा है, दिन-भर से आप भूखे हैं । मगर वहाँ कोई परमहस देव है कि सुनें ! वे नाच रहे हैं ! भूख की खबर किसको लगे ! भूख की याद किसको आये ! जो भगवान का भोग लगा रहा हो, ससार के भोजन उसे क्या याद आएँ ! गिर पडते, तभी उठा के लाये जाते, अपने से न आते । बहुत दफे उन्हे कहा गया, 'ऐसा न करें ! पूजा ठीक है, घडी-दो-घडी की ठीक है ।' पर रामकृष्ण कहते कि घडी-दो-घडी की याद रह जाए तो पूजा होती ही नही ।

तुमने कभी अपने को पूजा करते देखा, बीच-बीच मे तुम घडी देख लेते

हो ! घडी को वही रख आया करें जहाँ जूते छोड आते हो। जूते भी आ जाएँ, मदिर खराब न होगा, घडी नही आनी चाहिए। जूतो मे ऐसा कुछ भी नही है, घडी नही आनी चाहिए। क्यो ? क्योकि परमात्मा है शाश्वतता। समय को अपने साथ लिये तुम उसे न छू सकोगे। वह है अनत, तुम क्षणो को साथ लिये बैठे हो। और तुम्हारा मन बार-बार देख रहा है कि कब दुकान जाएँ, कब दफ्तर जाएँ, कब बाजार जाएँ ! तो अच्छा है, जाना ही मत। ऐसा समय जो तुमने मदिर में बिताया, और बाजार के सोच मे बिताया, बिलकुल व्यर्थ गया, इसका उपयोग बाजार में ही कर लेना, कुछ तो लाभ होगा। यह तो कुछ भी लाभ न हुआ।

मैंने देखा है लोगो को पूजा करते, नमाज पढते।

मै राजस्थान जाता था अक्सर, तो चितौडगढ पर गाडी बदलती है। साँझ की नमाज का समय होता, कोई घटे-भर गाडी रुकती, तो जितने भी मुसलमान होते ट्रेन मे, वे उतर के नमाज करने लगते, बिछा लेते अपनी चादर, बैठ जाते नमाज करने, मगर हर मिनट-दो-मिनट मे पीछे लौट के देखते रहते कि कही गाडी छूट तो नही गयी। यह मैंने बहुत बार देखा।

एक मुसलमान मित्र मेरे साथ यात्रा कर रहे थे। वे भी पूजा के लिए गये। नल के पास प्लेटफार्म पर उन्होने अपनी चादर बिछा ली, पूजा करने बैठ गये, मै उनके पीछे खडा हो गया। जब उन्होने गर्दन पीछे मोडी तो मैंने उनकी गर्दन वापस पकड के उस तरफ मोड दी। बहुत नाराज हुए। उस वक्त तो कुछ बोल न सके। जल्दी-जल्दी उन्होने नमाज पूरी की। कहा, 'यह क्या मामला है ? आपने क्यो मेरी गर्दन इस तरफ मोडी ?'

'इस तरफ अगर गर्दन रखनी हो तो इसी तरफ रखो, उस तरफ रखनी हो तो उसी तरफ रखो। यह कैसी नमाज हुई ? यह कैसी पूजा हुई कि बीच-बीच मे खयाल है कि गाडी छूट न जाए ? गाडी छूट न जाए, इसमें परमात्मा छूटा जा रहा है', मैंने उनसे कहा, 'तुम या तो गाडी पकड लो या परमात्मा को पकड लो। कोई जरूरत नही है, मत करो नमाज – झूठी तो मत करो। कम-से-कम इतने सच्चे तो रहो कि नही है हृदय मे तो न करेगे।'

रामकृष्ण बहुत दिन तक मदिर न जाते। वे कहते, 'जब भीतर ही नही है तो कैसे जाऊँ, कैसे धोखा दूँ – परमात्मा को कैसे धोखा दूँ ? किस मुँह से भीतर जाऊँ ?' द्वार के बाहर से ही, बाहर-बाहर, क्षमा माँग के लौट आते, मदिर में भीतर न जाते, सीढियो पर से क्षमा माग लेते 'माफ कर, भाव नही है। करूँगा तो धोखा होगा, झूठ होगा।'

लेकिन तुम्हारा सब झूठ हो गया है। जिससे तुम्हे प्रेम नही है, उसे तुम कहते हो, प्रेम है। जिसे देख के तुम्हारे भीतर कोई मुस्कराहट नही आती, तुम

मुस्कराते हो। जिसे देख कर भीतर अभिशाप देने का भाव उठता है, उसको आशीर्वाद देते हुए अपने को दिखलाते हो। इन झूठो से घिरे तुम अगर परमात्मा के पास भी जाओगे तो तुम इन्ही झूठा का प्रयोग वहाँ भी करोगे। फिर पूजा वैसी ही हो जाएगी जैसी सारी दुनिया में हो रही है।

कितने लोग हैं, अनगिनत, पूजा कर रहे हैं, और पूजा की गध कही भी नही अनुभव मे आती ! कितने लोग प्रार्थनाएँ कर रहे हैं ! अगर सच में ही इतनी प्रार्थनाएँ हो तो जैसे आकाश मे भाप उठ-उठ के बादल बन जाते हैं, ऐसे प्रार्थनाओ के बादल बन जाएँ। सब प्रार्थना बरसने लगे ! मेघ घने हो जाएँ आकाश में ! जल ही न बरसे, प्रार्थना भी बरसे ! नदी-नाले प्रार्थना से भर जाएँ !

जितने लोग प्रार्थना करते हैं, अगर ये सच मे ही प्रार्थना करते हो ।

ठीक है व्यास की भी परिभाषा ठीक है

'भगवान की पूजा मे अनुराग भक्ति है।'

फिर 'गर्गाचार्य के मत मे भगवान की कथा मे अनुराग भक्ति है।'

पूजा मे कुछ करना होना है। निश्चित ही व्यास थोडे सक्रिय वृत्ति के रहे होगे। कुछ करना पडना है आरती उतारनी पडती है, फूल चढाने पडते हैं, घटी बजानी पडती है – कुछ करना पडता है।

इसे समझ ले।

व्यास निश्चित ही सक्रिय प्रकृति के रहे होगे। गर्गाचार्य निष्क्रिय प्रकृति के रहे होगे। क्योकि व्यास जहाँ कहते हैं, 'पूजा आदि मे अनुराग' वहाँ गर्गाचार्य कहते हैं, 'भगवान की कथा में , कोई सुनाये हम सुने, रस से सुनें, डूब के सुनें, मिट के सुने – पर कोई सुनाए, हम सुने !'

'भगवान की कथा मे अनुराग !'

तुमने कभी खयाल किया कथाओ में तो तुम्हे भी अनुराग है, भगवान की कथा मे नही है ! पडोसी की पत्नी किसी के साथ भाग गयी, इस कथा को तुम कितने रस से सुनते हो ! खोद-खोद के बाते निकलवा लेते हो। हज़ार काम हो, रोक देते हो।

छोटे गाँव मे एकाध स्त्री भाग जाए तो पूरे गाँव मे काम धधा बद हो जाता है उस दिन, पूरा गाँव उसी चर्चा मे लग जाता है।

किसी के घर चोरी हो जाए कुछ भी हो जाए ।

अखबार तुम पढते हो, वह कथा का रस है। लेकिन भगवान की कथा में अब कोई रस नही है। और अगर कभी तुम भगवान की कथा मे भी रस लेते हो तो वह रस भगवान की कथा का नही होता। उसमे भी कारण वही होगे, जिन कारणो से तुम और कथाओ में रस लेते थे। कोई की स्त्री किसी के साथ भाग

गयी, राम की स्त्री को रावण भगा ले गया, तो तुम उसमे भी रस लेते हो। लेकिन तुम खयाल करना, रस तुम्हारा रावण सीता को भगा ले गया है, इसमे है, राम की कथा मे नही है।

गर्गाचार्य कहते है, 'भगवान की कथा मे अनुराग'। ऐसे सुनना जैसे प्यासा जल पीता है। ऐसे सुनना जैसे तुम बिलकुल खाली हो – कान ही हो गये, तुम्हारा सारा अस्तित्व बस कान पर ठहर गया। हृदयपूर्वक सुनना, तो परमात्मा का स्मरण अनेक-अनेक रूपो मे तुम्हे भर देगा। कुछ करने की जरूरत नही है, तुम अगर शात बैठ के सुन भी सको ।

तुम यहाँ मुझे सुन रहे हो . यह भगवान की कथा है। यहाँ तुम ऐसे भी सुन सकते हो, जैसे और साधारण बाते सुनते हो। तुम ऐसे भी सुन सकते हो, जैसे तुम्हारा पूरा जीवन दाँव पर लगा हैं, जीवन और मृत्यु का सवाल है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी को कहा था कि आज मैं आराम चाहता हूँ, किसी को मिलाना मत, कोई आ भी जाए तो कह देना घर पर नही है। लेकिन वह बैठा ही था आराम करने कुर्सी पे, कि पत्नी आयी, उसने कहा, 'सुना, एक आदमी दरवाजे पे खडा है।'

मुल्ला ने कहा, 'अभी मैंने कहा, अभी देर भी नही हुई कि मुझे आज दिन-भर विश्राम करना है। अभी शुरुआत भी नही हुई, मै कुर्सी पे ठीक से बैठ भी नही पाया।'

तो उसकी पत्नी ने कहा, 'लेकिन वह आदमी कहता है, जीवन-मरण का सवाल है।'

तब तो मुल्ला भी उठ आया, जब जीवन-मरण का सवाल हो तो कैसा विश्राम! बाहर गया, तो पाया कि वह इन्शारेंस कपनी का एजेंट है। जीवन-मरण का सवाल

जीवन-मरण का सवाल हो, तभी तुम उठोगे, तभी तुम जगोगे।

भगवान तुम्हारे लिए जीवन-मरण का सवाल है या नही? अगर नही है, तो फिर बिलकुल मत सुनो, क्योकि वह समय व्यर्थ ही गया। तुम जो सुनोगे वह किसी सार का नही होगा। क्योकि सार तो तुम्हारे सुनने मे छिपा है। सार कहने मे नही छिपा है, सार तुम्हारे सुनने मे छिपा है।

अगर तुम सुनने के लिए ही परिपूर्ण तैयार हो कर नही आ गये हो, अगर यह सवाल तुम्हारे जीवन-मरण का नही है, अगर तुम अभी भी परमात्मा को किनारे पे टाल के अपने ससार मे लगे रह सकते हो, अच्छा है तुम ससार मे ही लगे रहो। कभी-न-कभी ऊबोगे। कभी-न-कभी लौटोगे। कभी तो वह घडी आयेगी, जब तुम्हारी अँधेरी रात तुम्हे दिखायी पडेगी और सुबह की पुकार तुम्हारे

मन मे उठेगी । कभी तो वह घडी आएगी, तुम अपने कूडा-कर्कट से घिरे-घिरे किसी दिन तो दुर्गंध को अनुभव करोगे, फूलो की गध की तलाश शुरू होगी ।

लेकिन जल्दी मत करो, अगर दुर्गंध मे अभी लगाव बाकी है, तो भोग ही लो दुर्गंध को । चुक ही जाओ । रिक्त ही हो जाने दो उस अनुभव से अपने को। नही तो तुम सुन न पाओगे ।

मै एक पजाबियो की सभा मे बोलने गया । उस सभा के बाद फिर मेरा किसी सभा मे जाने का मन न रहा । कृष्णाष्टमी थी । और पजाबी हिन्दुओ का मोहल्ला था । मै तो चकित हुआ, वहाँ व्याख्यान देने वाले व्याख्यान दे रहे थे, और ऐसी भी स्त्रियाँ थी उस सभा में – स्त्रियाँ ही ज्यादा थी – जो बोलने वालो की तरफ पीठ किये आपस मे गपशप कर रही थी । वहाँ झुड-के-झुड बने थे । बडी भीड थी । मुझसे भी उन्होने प्रार्थना की । मैने कहा, 'तुम पागल हो ! यहाँ कोई सुनने वाला ही नही है । यहाँ लोग अपनी बातचीत मे लगे है और बोलने वाले बोले जा रहे हैं ।'

मैने कहा, 'मुझे जाने दो । इनकी कोई तैयारी सुनने की नही है । सुनने कोई इनमे आया भी नही है । कृष्ण से इन्हे कुछ लेना-देना नही है ।'

तुम मदिरो मे जाओ, स्त्रियाँ जो चर्चा मदिरो में कर रही है, पुरुष जो बातचीत मदिरो मे कर रहे है, उसका मदिर से कुछ लेना-देना नही है, वही राजनीति, वही उपद्रव बाहर के, वहाँ भी ले आते है, वे ही घर के, बाहर के झगडे वहाँ भी ले आते है ।

परमात्मा की कथा तो तुम तभी सुन सकते हो जब तुम पूरे रिक्त हो कर सुनो ।

ठीक कहते है गर्गाचार्य, 'भगवान की कथा मे अनुराग ।' और जिस दिन इस कथा मे अनुराग आता है उसी दिन ससार की कथा मे अनुराग खो जाता है ।

तुम व्यर्थ की बाते मत सुनो, क्योकि यह सिर्फ सुनना ही नही है, जो तुम सुनते हो वह तुम्हारे भीतर इकट्ठा हो रहा है ।

थोडा सोचो, अगर पडोसी तुम्हारे घर मे कूडा फेंक दे तो तुम झगडा करने को तैयार हो जाते हो । और पडोसी तुम्हारे मन मे हजार कूडा फेकता रहे तो तुम झगडा तो करते नही, तुम रोज प्रतीक्षा करते हो कि कब आओ, कब थोडी चर्चा हो ! तुम्हे घर के कूडा-कर्कट से भी इतनी समझ है, उतनी समझ तुम्हें भीतर के कूडा-कर्कट की नही है ।

रोको अपने को व्यर्थ की बात सुनने से, नही तो सार्थक को सुनने की क्षमता खो जाएगी । अकारण, आवश्यक न हो, ऐसा सब सुनना त्याग दो, ताकि तुम्हारी

सवेदनशीलता तुम्हे फिर से उपलब्ध हो जाए, और भगवान का नाम तुम्हारे कान मे पडे, तो वह बहुत-से विचारो की भीड मे न पडे, अकेला पडे। वह चोट अकेली हो तो तुम्हारे हृदय के झरने फिर से खुल सकते हैं।

'शाडिल्य के मत से आत्मरति के अविरोधी विषय मे अनुराग होना ही भक्ति है।'

व्यास सक्रिय घाट से उतरे होगे। गर्गाचार्य निष्क्रिय घाट से उतरे होगे। पर दोनो सरल व्यक्ति रहे होंगे, बडे विचारक नही, सीधे-सादे, इनोसेंट, निर्दोष, भोले-भाले! शाडिल्य विचारक मालूम होते है। उनकी परिभाषा दार्शनिक की परिभाषा है। वे कहते है, 'आत्मरति के अविरोधी विषय मे अनुराग होना ही भक्ति है।' दार्शनिक व्याख्या है।

अपने मे साधारणत आदमी को रस होता है। साधारणत! उसे तुम स्वार्थ कहते हो। स्वार्थ अपने मे रस है, लेकिन बिना समझ का। चाहते तो तुम हो कि सुख मिले, मिलता नही! चाह तो ठीक है, जो तुम करते हो उस चाह के लिए, उसमे कही गलती है।

स्वार्थ और आत्मरति मे यही फर्क है। स्वार्थ भी अपने सुख की खोज करता है, लेकिन गलत ढग से, परिणाम हाथ मे दुख आता है। आत्मरति भी अपने सुख की खोज करती है, लेकिन ठीक ढग से, परिणाम सुख आता है।

तुम भी अपने ही सुख के लिए जी रहे हो, लेकिन अभी तुमने अपने को जो समझा है वह अहकार है, आत्मा नही। अभी तुम्हारा 'स्व' अहकार है, झूठा है। जिस दिन तुम्हारा 'स्व' वास्तविक होगा, आत्मा होगी, उस दिन तुम पाओगे स्वार्थ ही परमार्थ है। उस दिन अपने आनद की खोज कर लेने मे ही तुमने सारी दुनिया के लिए आनद के द्वार खोले। उस दिन तुम सुखी हुए तो तुमने दूसरे को भी सुखी होने की सभावना बनायी। उस दिन तुम्हारा दीया जला तो दूसरो के बुझे दीये भी जल सकते है, इसका भरोसा उनमे तुमने पैदा किया। और फिर तुम्हारे जले दीये से न मालूम कितने बुझे दीये भी जल सकते है।

आत्मरति का अर्थ है वस्तुत सच्चा स्वार्थ। उसमे परार्थ अपने-आप आ जाता है। जिसे तुम स्वार्थ समझते हो वह परार्थ के विपरीत है। और जिसको आत्मज्ञानियो ने आत्मरति कहा है, परम स्वार्थ कहा है, वह परार्थ के विपरीत नही है, परार्थ उसमे समाहित है, समाविष्ट है।

'आत्मरति के अविरोधी विषय मे अनुराग होना भक्ति है।'

अब इसे समझो।

तुम अपने को प्रेम करते हो — ठीक, स्वाभाविक है। इस प्रेम के कारण तुम ऐसी चीजो को प्रेम करते हो जो तुम्हारे स्वभाव के विपरीत हैं उनसे तुम दुख पाते

हो । चाहते सुख हो, मिलता दुख है । आकाँक्षा में भूल नही है । आकाँक्षा को प्रयोग मे लाने मे तुम ठीक-ठीक समझदारी का प्रयोग नही कर रहे हो ।

बुद्ध भी स्वार्थी है, कबीर भी, कृष्ण भी – लेकिन वे परम स्वार्थी है । वे भी अपना साध रहे हैं आनद, लेकिन इस ढग से साध रहे हैं कि मिलता है । तुम इस ढग से साध रहे हो कि मिलता कभी नही, साधते सदा हो, मिलता कभी नहीं ।

तुम कुछ ऐसी चीजो से अनुराग करने लगते हो जो कि तुम्हारे स्वभाव के विपरीत है, जैसे समझो, तुम धन को प्रेम करने लगो, तो तुम अपने स्वभाव के विपरीत जा रहे हो । क्योकि धन है जड, तुम हो चैतन्य । चैतन्य को प्रेम करो, जड को मत करो, अन्यथा जडता बढ़ेगी । और चैतन्य अगर जड़ता मे फँसने लगे तो कैसे सुखी होगा ? धन का उपयोग करो, प्रेम मत करो । प्रेम तो चैतन्य से करो ।

तुम पद की पूजा करते हो । पद तो बाहर है । तुम पद के आकाँक्षी हो । लेकिन पद तो बाहर है, तुम भीतर हो, तो तुम मे और तुम्हारे पद मे कभी ताल-मेल न हो पाएगा, तुम भीतर रहोगे, पद बाहर रहेगा । कोई उपाय नही है । भीतर तो तुम दीन-हीन ही बने रहोगे । कितना ही धन इकट्ठा कर लो अपने चारो तरफ, कितने ही बडे पद पर बैठ जाओ, कितना ही बडा सिंहासन बना लो – तुम्हारे भीतर सिंहासन न जा सकेगा, न धन जा सकेगा, न पद जा सकेगा । वहाँ तो तुम जैसे पहले थे वैसे ही अब भी रहोगे ।

भिखारी को राजसिंहासन पर बिठाल दो, क्या फर्क पडेगा ! बाहर धन होगा, शायद भूल भी जाए बाहर के धन मे कि भीतर अभी भी निर्धन हूँ, तो यह तो और आत्मघाती हुआ । यह स्वार्थ न हुआ, यह तो मूढता हुई ।

असली धन खोजो – असली धन भीतर है ।
असली पद खोजो – असली पद चैतन्य का है ।
चैतन्य की सीढियो पर ऊपर उठो ।
उठने दो चैतन्य की उडान ।
उठने दो ऊर्जा चैतन्य की – परमात्मा तक ले जाना है उसे ।
मनुष्य जब तक परमात्मा न हो जाए तब तक तृप्ति नही है ।

मनुष्य परमात्मा होने की अभीप्सा है । इससे पहले कोई पडाव नही है, कोई मुकाम नही । पहुँचना है उस आखिरी मजिल तक । लेकिन तुम बीच मे बहुत-से पडाव बना लेते हो, पडाव ही नही, उनको मुकाम बना लेते हो, मजिल समझ लेते हो । कोई धन को ही इकट्ठा करना अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है ।

शाडिल्य की परिभाषा दार्शनिक है, बहुमूल्य है
'आत्मरति के अविरोधी विषय मे अनुराग' ।

तुमने अब तक आत्मरति के विरोधी विषय मे अनुराग किया है। आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग करोगे, तो परमात्मा शब्द को बीच में लाने की जरूरत भी नही है, तुम धीरे-धीरे परमात्म-स्वरूप होने लगोगे ।

जब भी तुम्हारे सामने चुनाव हो तो सदा ध्यान रखना जड को मत चुनना, चैतन्य को चुनना। जब भी दो चीजो में से एक चुननी हो तो उसमे देख लेना, कौन ज्यादा चैतन्य है। जैसे प्रेम और धन मे चुनना हो तो प्रेम चुनना। फिर प्रेम और भक्ति मे चुनना हो तो भक्ति चुनना। ससार और परमात्मा मे चुनना हो तो परमात्मा चुनना ।

इसे अगर तुम समझ लो तो शाडिल्य की परिभाषा मे ईश्वर का नाम ही नही है, जरूरत नही है उसको कहने की, वह छिपा है। इस सूत्र को मान के अगर तुम चले तो उसे पा लोगे। अब तुम फर्क देख सकते हो। यह तीनो व्यक्तित्वो का फर्क है।

शाडिल्य बुद्ध जैसा व्यक्ति रहा होगा 'परमात्मा की कोई जरूरत नही है।'

बुद्ध ने कहा ध्यान खोज लो। शाडिल्य कह रहा है चैतन्य खोज लो, क्योकि वही अविरोधी है। उससे तुम्हारा तालमेल बैठेगा।

'देवर्षि के मत से' फिर नारद अपना मत देते है।

'नारद के मत से अपने सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोड़ा-सा विस्मरण होने से परम व्याकुल होना भक्ति है।'

सस्कृत मे, जहॉ-जहॉं हिन्दी मे अनुवाद किया है लोगो ने, चूक हुई है। सभी ने अनुवाद किया है, क्योकि ऐसा लगता है ठीक नही कहना, नारद खुद ही शास्त्र लिख रहे है, तो हिन्दी मे अनुवादो मे अनुवादको ने लिखा है, 'देवर्षि के मत से'। लेकिन सस्कृत मे 'नारदस्तु' – 'नारद के मत से'। नारद अपने ही नाम का उपयोग कर रहे हैं। इसमे बडी बात छिपी है। नारद अपने व्यक्तित्व को भी अपने से उतना ही दूर रख रहे है जितना शाडिल्य, जितना गर्गाचार्य, जितना व्यास। ऐसा नही कहते कि 'मेरे मत से'। उसमे तो मत के प्रति जरा मोह हो जाएगा 'मेरा मत'। 'यह नारद का मत है' – नारद भी ऐसा ही कहते हैं।

स्वामी राम अपने को हमेशा इसी तरह बोलते थे 'राम' को भूख लगी है, 'राम' को प्यास लगी है। ऐसा न कहते थे मुझे प्यास लगी है, मुझे भूख लगी है। अमरीका गये तो लोग वहाँ बडे हैरान होते थे। पहले ही दिन जब वे एक

बगीचे से शाम को घूम के लौटे, तब तो गेरुआ वस्त्र बडी अनूठी चीज थी, बडी भीड लग गयी वहाँ। अब तो न लगेगी, कम-से-कम पन्द्रह हजार मेरे सन्यासी हैं सारी दुनिया मे गेरुआ वस्त्र .! जल्दी ही उनको लाखो तक पहुँचा देना है। लेकिन उस समय बडी नयी बात थी, तो भीड लग गयी। लोग ककड-पत्थर फेकने लगे कि कोई दीवाना आ गया। राम हँसते रहे। भीड में से किसी को दया आयी कि यह आदमी हो सकता है, पागल हो, लेकिन दया-योग्य है। उसने भीड को हटाया, उनको बचाया, उनको ले चला। रास्ते मे उसने पूछा कि तुम हँसते क्यो थे, तो उन्होने कहा, ' राम की इतनी पिटाई हो रही थी और मै न हँसूं ! ' तो उसने कहा, 'क्या मतलब ?' क्योकि उसे पता नही था उनकी आदत का। वे कहने लगे, ' राम की इतनी हँसाई हो रही थी ! लोग पत्थर मार रहे थे, गालियाँ दे रहे थे और मै न हँसूं ! मै खड़ा दूर देख रहा था।'

अपने ही नाम को इस तरह अगर तुम दूर कर लो तो बडी मुक्ति अनुभव होती है, तब तुम अपने व्यक्तित्व मे अलग हो गये, तब तुम साक्षी-भाव में प्रविष्ट हो गये।

ठीक किया, नारद ने कहा 'नारदस्तु'।

और नारद का मत है 'सब कर्मो को भगवान के अर्पण करना, और भगवान का थोडा-सा विस्मरण होने से परम व्याकुल होना भक्ति है।'

शाडिल्य दार्शनिक हैं, नारद भक्त हैं। शाडिल्य विचारक हैं, नारद प्रेमी हैं।

'सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना !' प्रेमी की यही तो खूबी है कि वह कुछ भी बचाना नही चाहता, सब अर्पण करना चाहता है। जितना अर्पण करता है उतना ही उसे लगता है, कम ही तो किया, और करूँ, और करूँ ! अखीर में वह अपने को भी अर्पण कर देता है।

सब अर्पण करना और भगवान का थोडा-सा भी विस्मरण होने से परम व्याकुल होना।

परम व्याकुलता पकड ले, व्याकुलता-ही-व्याकुलता रह जाए !

ऐसा समझो कि तुम रेगिस्तान मे भटक गये, जल चुक गया, दूर-दूर तक कही कोई मरूद्यान नही है, हरियाली का कोई पता नही है, सागर है सूखी रेत का। प्यास तो तुम्हे पहले भी लगी थी, लेकिन आज तुम पहली दफे जानोगे कि परम प्यास क्या है। प्यास तो बहुत दफे लगी थी, लेकिन पानी सदा उपलब्ध था, जरा लगी थी और पी लिया था। आज तुम्हारा रोआँ-रोआ रोयेगा। आज तुम्हारा रोआँ-रोआँ तडफेगा। एक-एक रोएँ मे तुम प्यास अनुभव करोगे, कण्ठ में ही नही। तुम्हारा सारा व्यक्तित्व, तुम्हारा सारा होना प्यास मे रूपान्तरित हो जाएगा। तब परम व्याकुलता ! जब ऐसे ही नही कि तुम ऐसे ही बुलाते हो परमात्मा को

कि आ जाओ तो ठीक, न आये तो भी कोई बात नही नही, ऐसे बुलाते हो जैसे रेगिस्तान मे कोई पानी को खोजता है, तडफता है। मछली को डाल दो रेत पर पानी से निकाल कर, जैसे तडपती है, वैसी परम प्यास !

'सब कर्मो का भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोडा-सा भी विस्मरण होने से परम व्याकुल होना ।'

अभी तो हमने जिसे प्यास समझा वह प्यास नही है। अभी तो हमने जिसे धन समझा, धन नही है। अभी तो हमारी सारी समझ ही गलत है।

'हम भूल को अपनी इल्मोफन समझे हैं
गुरबत के मुकाम को वतन समझे है
मजिल पे पहुँच के झाड देगे इसको
ये गर्देसफर है जिसको तन समझे है ।'

अभी तो हमारी सारी समझ उलटी है। अभी तो हम नासमझी को समझदारी समझते हैं। अभी तो हम अहकार को आत्मा समझे है। अभी तो हमने शरीर को अपना होना समझा है।

'हम भूल को अपनी इल्मोफन समझे हैं
गुरबत के मुकाम को वतन समझे है ।'

रात-भर का पडाव है, ठहर जाने के लिए सराय है कि धर्मशाला है, उसको हम घर समझे है।

'मजिल पे पहुँच के झाड देगे इसको'

मजिल पे पहुँचोगे तब पता चलेगा कि जैसे यात्री राह की धूल झाड देता है, ऐसे ही यह सब जिसे तुम धन समझे हो, जिसे तुम अपना समझे हो, यह सब झड जाएगा।

'ये गर्देसफर है जिसको तन समझे है।'

—यह राह की धूल है, इससे ज्यादा नही है। यह तुम नही हो। तुम तो साक्षी हो। शरीर के पीछे जो शरीर को देखने वाला है, मन के पीछे जो मन को भी देखने वाला है—तुम तो वही परम साक्षी हो।

सब छोड दो परमात्मा पर। इनमें से कुछ भी अपना मत समझो। शरीर भी उसका है—उसी पे छोड दो। मन भी उसका है—उसी पे छोड दो। कर्म भी उसी के हैं—उसी पे छोड दो। तुम कर्ता न रह जाओ, साक्षी हो जाओ।

तो नारद के हिसाब से, सब कर्मो को भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोडा-सा विस्मरण होने से परम व्याकुल होना ..जरा हटे परमात्मा से तो वही हालत हो जाए जो मछली की हो जाती है सागर से हट के, जरा भूले उसे तो तडफ हो जाए !

'ठीक ऐसा ही है।'

नारद कहते है, 'ये सब जो परिभाषाएँ है – ठीक ऐसा ही है।' ये सब परिभाषाएँ ठीक है। इनमे कोई परिभाषा गलत नही है। सभी अधूरी है, पूरी कोई भी नही। सभी ठीक है, गलत कोई भी नही। भाषा का स्वरूप ऐसा है कि अधूरा ही रहेगा।

सत्य के इतने पहलू है कि तुम चुका न पाओगे, और एक आदमी एक ही पहलू की बात कर पाता है।

एक महाकवि की मृत्यु हुई, तो उसको मित्रो ने उसके मरने के पहले पूछा कि तुम्हारी कब्र पर क्या लिखेगे, तो उसने कहा, 'लिख देना सिर्फ एक शब्द – 'अनफिनिश्ड', अधूरा।'

वे पूछने लगे, 'क्यो? क्या तुम सोचते हो, तुम अधूरे मर रहे हो? क्योकि तुम्हारे गीत पूरे है। तुम्हारा यश पूरा, सम्मान पूरा। तुम एक सफल जिदगी जिये। तुमने खूब आदर पाया। क्या तुम भी अधूरे मर रहे हो?'

तो उस कवि ने कहा, 'इसमे कुछ भी फर्क नही पडता कि कितना हमने किया, कितना गाया, कुछ भी करो, जीवन का स्वभाव अधूरा है। हारे हुए तो यहाँ हारे हुए जाते ही है, जीते हुए भी हारे हुए जाते है। गरीब तो गरीब मरते है, अमीर भी गरीब मरते है। जिनके पास नही है, वे तो अधूरे रहते ही है, जिनके पास है वे भी अधूरे रहते है। क्योकि यह जीवन का स्वभाव अधूरा है।

ऐसे ही मै तुमसे कहूँगा, भाषा का स्वभाव अधूरा है। कुछ भी कहोगे, वह पूरा चुकता न हो पाएगा। बडी बाते छोडो, एक छोटे-से गुलाब के फूल के सम्बध मे भी पूरी बाते नही कही जा सकती। अगर एक छोटे-से गुलाब के फूल के सबध मे तुम पूरी-पूरी बात कहना चाहो तो तुम्हे पूरे ब्रह्माण्ड के सबध में जो भी है, सब कुछ वह कहना पडेगा, तभी उस गुलाब के सम्बध मे पूरी बात होगी, क्योकि उसकी जडे जमीन से जुडी है, उसकी पँखुडियाँ सूरज से जुडी हैं, उसकी श्वास हवाओ से जुडी है, उसके भीतर बहती रसधार बादलो से जुडी है, सागरो से जुडी है।

तुम अगर एक छोटे-से गुलाब के फूल के सबध मे सब कहना चाहो तो तुम बडी अडचन मे पड जाओगे – तुम पाओगे कि यह तो धीरे-धीरे पूरे ब्रह्माण्ड के सबध मे सब कहना हो जाएगा।

नहीं, पूरा कहना असम्भव है। सत्य बहुत बडा है, कथनी बडी छोटी है।

जीवन मे परमात्मा को छोड के सब मिल सकता है – और तुम अधूरे रहोगे, उदास रहोगे, दुखी रहोगे, पीडित रहोगे। और कुछ भी न मिले, परमात्मा

मिल जाए तो पूरा मिल जाता है। क्योंकि परमात्मा खंड-खंड नहीं हो सकता, मिलता है तो पूरा, नहीं मिलता है तो नहीं।

मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'हमारे पास सब है, लेकिन बडी उदासी है। अब क्या करें? जब नहीं थी इतनी व्यवस्था तब तो एक आसरा भी था कि कभी जब सब होगा तो सब ठीक हो जाएगा, वह आसरा भी छिन गया।'

'मयकदो के भी आसपास रही
गुलरुखो से भी रूसनास रही
जाने क्या बात थी इस पर भी
ज़िंदगी उम्र-भर उदास रही।'

मधुशालाएँ पास थी, दूर नहीं। सुन्दर मुखडो वाले लोग निकट थे, परिचय था उनसे।

'मयकदो के भी आसपास रही'
शराब भी पी, विस्मरण भी किया, मधुशाला पास ही थी।
'गुलरुखो से भी रूसनास रही'

फूल के जैसे सुन्दर चेहरे वाले व्यक्तित्वो से भी परिचय रहा, मुलाकात रही, मधुशाला मे भी विस्मरण किया, प्रेम मे भी डूबे –

'जाने क्या बात थी इस पर भी'
फिर भी कुछ बात –
'जाने क्या बात थी इस पर भी
ज़िंदगी उम्र-भर उदास रही।'

रहेगी ही! उदासी तो उसी की मिटती है जो भक्ति को उपलब्ध हुआ, उसी की मिटती है जो भगवान को उपलब्ध हुआ, उसी की मिटती है जिसने जाना कि मै अलग नहीं हूँ, जो अनन्यता को उपलब्ध हुआ!

अन्यथा, तुम जो भी करोगे। करते लोग बहुत है, अथक श्रम करते है, सब व्यर्थ जाता है। इतने श्रम से तो परमात्मा मिल सकता है जिससे तुम कंकड-पत्थर इकट्ठे कर पाते हो। तुम्हे देख के रोना भी आता है, हँसी भी आती है। हँसी आती है कि कैसा पागलपन है! इतने श्रम से तो मंदिर बन जाता, इसे तुमने धर्मशाला बनाने मे गँवाया। इतने श्रम से परमात्मा उतर आता, भिक्षापात्र ले के तम कंकड-पत्थर इकट्ठे करते रहे! इतने श्रम से तो अमृत्व उपलब्ध हो जाता, इससे तुम गंदे नदी-नालो का पानी ही इकट्ठा करते रहे।

मौत जब आती है तब तुम्हे पता चलेगा, लेकिन तब बहुत देर हो जाती है। तुमसे मैं कहता हूँ जागो अभी!

मौत तो जगाती है, पर तब समय नहीं बचता – परमात्मा का स्मरण करने

का भी समय नही बचता ! मौत आती है तब पता चलता है 'अरे ! यह तो गँवाना हो गया ! '

यह मब पडा रह जाएगा जो इकट्ठा किया, चले तुम अकेले । अकेले आये / अकेले चले ! पानी पर खीची लकीरे हो गयी सारी जिंदगी ।

'वाए नादानी कि वक्ते-मर्ग ये साबित हुआ
ख्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफसाना था । '

मरते वक्त !

'वाए नादानी कि वक्ते-मर्ग ये साबित हुआ । '

यह मूढता सिद्ध हुई मरते वक्त, यह नादानी पता चली मरते वक्त, यह नासमझी खयाल मे आयी मरने वक्त –

'ख्वाब था जो कुछ कि देखा '

जो देखा, वह सपना था

'जो सुना अफसाना था । '

और जो बात सुनते रहे, वह सिर्फ कहानी थी । हाथ खाली रह गये !

अक्सर तो ऐसा है कि ले के तो तुम कुछ न जाओगे, जो ले के आये थे, शायद उसे भी गवा के जाओ ।

बच्चे पैदा होते है, मुट्ठी बँधी होती है, मरते वक्त मुट्ठी खाली होती है, खुली होती है । बच्चा कुछ ले के आता है – कोई ताजगी, कोई कमल के फूलो जैसा निर्दोष भाव, कुछ भोलापन – वह भी गदा हो जाता है । बच्चा आता है दर्पण की तरह ताजा-नया, धूल जम जाती है जिदगी की, वह भी खो जाता है ।

हम जिदगी मे कमाते नही, गँवाते है – बड़ा अजीब सौदा करते हैं !

जो मौत के पहले जाग जाए वही धार्मिक हो जाता है । जो मौत तुम्हे दिखायेगी, वह तुम अपनी समझदारी में देख लो, अपने होश मे देख लो, मौत को दिखाने की जरूरत न पडे, तो तुम्हारी जिदगी मे एक क्रांति घटित हो जाती है ।

'ठीक ऐसा ही है, जैसे ब्रजगोपियो की भक्ति ! '

'इस अवस्था में भी गोपियो मे माहात्म्यज्ञान की विस्मृति का अपवाद नही । '

इसे समझना ।

'उसके बिना, भगवान को भगवान जाने बिना किया जाने वाला ऐसा प्रेम जारो के प्रेम के समान है । '

'उसमे, जार के प्रेम में, प्रियतम के सुख से सुखी होना नही है । '

' जैसे ब्रजगोपियो की भक्ति । '

कृष्ण के प्रेम मे, कथा है, सोलह हज़ार गोपियो की । सख्या तो सिर्फ असख्य

का प्रतीक है। लेकिन गोपियो के प्रेम को समझना जरूरी है, क्योकि भक्त वैसी ही दशा मे फिर पहुँच जाता है। कृष्ण का होना शरीर मे आवश्यक नही है। यह तो भक्त का भाव है जो कृष्ण को मौजूद कर लेता है। कृष्ण के होने का सवाल नही है, ये तो हजारो गोपियो की प्रार्थनाएँ है, जो कृष्ण को शरीर मे बाँध लेती है, इससे कोई फर्क नही पडता।

राधा कृष्ण के साथ नाची, मीरा को जरा भी तकलीफ न हुई, कृष्ण के बिना भी वैसा ही नाच नाची, और कृष्ण के साथ ही नाची। और अगर गौर करो, तो मीरा की गहराई राधा से भी ज्यादा मालूम पडती है, क्योकि राधा के लिए तो कृष्ण सहारे के लिए मौजूद थे, मीरा के लिए तो कोई भी मौजूद न था। मीरा के भगवान तो उसके भाव का ही साकार रूप थे। मीरा के भगवान तो मीरा ने अपने को ही ढाल के बनाये थे, अपने को ही निछावर करके निर्मित किये थे।

कृष्ण मौजूद हो और तुम राधा बन जाओ, तुम्हारी कोई खूबी नही, कृष्ण की खूबी होगी। कृष्ण मौजूद न हो और तुम मीरा बन जाओ, तो तुम्हारी खूबी है, कृष्ण को आना पडेगा।

भक्त खीचता है भगवान को रूप मे। भक्त भगवान को गुणो के जगत मे पृथ्वी पर ले आता है।

कैसी थी ब्रजगोपियो की भक्ति ?

एक क्षण को भी विस्मरण हो जाए तो रोती है। एक क्षण को भी कृष्ण न दिखायी पडे तो तडफती है। लेकिन ऐसा तो साधारण प्रेम मे भी कभी हो जाता है प्रेमी न हो, प्रेयसी तडफती है, प्रेयसी न हो तो प्रेमी तडपता है।

फर्क क्या है ब्रज की गोपियो की भक्ति मे और साधारण प्रेमियो की भक्ति मे ? फर्क इतना है कि ब्रजगोपिया कृष्ण के प्रेम मे है, लेकिन परिपूर्ण होशपूर्वक कि कृष्ण भगवान है। वह प्रेम किसी व्यक्ति का प्रेम नही, भगवत्ता का प्रेम है। अन्यथा फिर साधारण प्रेम हो जाएगा।

कृष्ण को भी तुम ऐसे प्रेम कर सकते हो जैसे वे शरीर हैं, तुम्हारे जैसे ही एक व्यक्ति है। तब कृष्ण मौजूद भी हो तो भी तुम चूक गये।

रुक्मणी कृष्ण की पत्नी है, लेकिन रुक्मणी का नाम कृष्ण के साथ अक्सर लिया नही जाता — लिया ही नही जाता। सीता का नाम राम के साथ लिया जाता है। पार्वती का नाम शिव के साथ लिया जाता है। कृष्ण का नाम रुक्मणी के साथ और रुक्मणी का नाम कृष्ण के साथ नही लिया जाता। और राधा उनकी पत्नी नही है, याद रखना। राधा का नाम लेना बिलकुल गैरकानूनी है, कृष्ण-राधा कहना, राधा-कृष्ण कहना बिलकुल गैरकानूनी है, नाजायज है, नियम के

बाहर है। वह उनकी पत्नी नही है। पर क्या बात है, रुक्मणी कैसे विस्मृत हो गयी ? रुक्मणी कैसे अलग-थलग पड गयी ?

रुक्मणी पत्नी थी और कृष्ण मे भगवान को न देख पायी, पुरुष को ही देखती रही – बस यही चूक हो गयी। वही राधा करीब आ गयी जहाँ रुक्मणी चूक गयी।

सौराष्ट्र में एक जगह है – तुलसीश्याम। वहाँ ध्यान का एक शिविर हुआ। तो जब मै वहाँ गया तो जिस तलहटी मे शिविर हुआ था वहाँ कृष्ण का मदिर है। और ऊपर पहाडी की चोटी पर एक छोटा-सा मदिर है, तो मैंने पूछा कि वह मदिर किसका है। कहा, 'वह रुक्मणी का है।'

'उतने दूर ! कृष्ण का मदिर इधर मील-दो-मील के फासले पर !'

पुजारी उत्तर न दे सके। उन्होंने कहा कि यह तो पता नही।

रुक्मणी दूर पडती गयी। वह कृष्ण को पुरुष ही मानती रही, पुरुषोत्तम न देख पायी, पुरुष ही दिखायी पडता रहा, पति ही दिखायी पडता रहा। गहन ईर्ष्या मे जली रुक्मणी, जैसा पत्नियाँ अक्सर जलती हैं। वह मदिर भी इस ढग से बनाया गया है कि वहाँ से वह नजर रख सकती है कृष्ण पर। बिलकुल ठीक ढग से बनाया है, जिसने भी बनाया है बडी होशियारी से बनाया है। पत्नी वहाँ दूर बैठी है और देख रही है। राधा और गोपियाँ और कृष्ण के पास प्रेमियो का और प्रेयसियो का इतना बडा जाल रुक्मणी जली ! बडे दुख मे पडी। कृष्ण की भगवत्ता न देख पायी। तो प्रेम साधारण हो गया – प्रेम रह गया, भक्ति न बन पायी।

प्रेम कब भक्ति बनता है ?

जैसे ही प्रेमी मे भगवान दिखायी पडता है, वैसे ही प्रेम भक्ति बन जाता है। कृष्ण का होना जरूरी थोडे ही है ! क्योकि कृष्ण के होने से अगर यह बात होती तो रुक्मणी को भी भक्ति उपलब्ध हो गयी होती।

तो, मै तुमसे कहता हूँ, इसमें उलटा भी हो सकता है। तुम अपने प्रेमी में, अपने पति मे, अपनी पत्नी मे, अपने बेटे मे, अपने मित्र मे, कही वही भूल तो नही कर रहे हो जो रुक्मणी ने की ? सोचना। कही वही भूल तो नही हो रही है ?

मै तुमसे कहता हूँ, वही भूल हो रही है, क्योकि उसके सिवाय कोई भी नही है। 'वही' सब मे छिपा है। जरा खोदो। जरा गहरे उतरो। जरा दूसरे मे डुबकी लो। जरा अनन्यता के भाव को जगने दो। और तुम अचानक पाओगे वही भूल, रुक्मणी की भूल, सारे ससार से हो रही है। सभी के पास कृष्ण खडा है – सभी के पास भगवान खडा है। भीतर भी वही है, बाहर भी वही है।

लेकिन बाहर तुम्हारी आंखे देखने की आदी हैं, कम-से-कम बाहर तो उसे देखो। एक दफा पुरुष खो जाए और परमात्मा दिखायी पडे, पुरुष खो जाए, पुरुषोत्तम दिखायी पडे ।

तो नारद कहते है, 'जैसे ब्रजगोपियो की भक्ति इस अवस्था मे भी गोपियो मे माहात्म्यज्ञान की विस्मृति का अपवाद नही है ।'

हालाँकि वे दीवानी थी, पागल थीं प्रेम मे, लेकिन एक क्षण को भी भूली नही कि कृष्ण भगवान है, उतनी बेहोशी में भी होश रहा, अपवाद नही हैं, यह बात तो कभी न भूली कि कृष्ण भगवान हैं, यह बात तो याद ही रही, लडी भी, झगडी भी, रुठी भी, लेकिन यह बात तो याद रही कि कृष्ण भगवान है ।

उतनी ही बात प्रेम को भक्ति की ऊँचाई पर उठा देती है।

'उसके बिना, भगवान का भगवान जाने बिना, किया जाने वाला प्रेम जारो के प्रेम के समान है ।

'उसमे जार के प्रेम मे प्रियतम के सुख मे सुखी होना नही है ।'

थोडा आगे बढो ! थोडे गहरे जाओ !

'हरम से कुछ आगे बढे तो देखा
जबी के लिए आस्ता और भी है ।'

जब मास्जिद से थोडा आगे बढे तो देखा कि सिर झुकाने के लिए जगहे और भी है, मस्तक नवाने के लिए और भी जगहे हैं ।

'हरम मे कुछ आगे बढे तो देखा
जबी के लिए आस्ता और भी हैं
सितारो के आगे जहाँ और भी है
अभी इश्क के इम्तिहा और भी हैं ।'

प्रेम जब तक भक्ति न बन जाए तब तक जानना 'अभी इश्क के इम्तिहा और भी हैं, अभी और भी परीक्षाएँ पार करनी हैं प्रेम को । प्रेम पे मत रुक जाना ।

प्रेम कली है, भक्ति फूल है । प्रेम पे मत रुक जाना ।

'अभी इश्क के इम्तिहा और भी है
सितारो के आगे जहा और भी है ।'

जब तक प्रेम तुम्हारा भक्ति न बन जाए, जब तक प्रेमी में तुम्हे भगवान न दिखायी पड जाए — तब तक रुकना मत, तब तक मस्जिद मदिरो में ठहर मत जाना ।

'हरम के आगे बढे तो देखा
जबी के लिए आस्ता और भी हैं ।'

मदिर-मस्जिद से पार जाना है ! सीमा से पार जाना है ! सम्प्रदाय से पार जाना है ! मत-मतान्तर से पार जाना है !

प्रासगिक दिखायी पडती है बात कि हम कही मदिर-मस्जिदो में, आकारो में, सीमाओ मे, गुणो मे उलझे हैं—और इसलिए वह जो उनके भीतर छिपा है, हमारे हाथ से चूका जा रहा है, पकड में नही आता । खोल ही दिखायी पडती है । ऊपर का सायोगिक असार ही दिखायी पडता है, भीतर का सार, स्वभाव, स्वरूप दिखायी नही पडता ।

'उसके विना, भगवान को जाने बिना, किया जाने वाला ऐसा प्रेम जारो के प्रेम के समान है ।'

'उसमें, जार के प्रेम में, प्रियतम के सुख से सुखी होना नही है ।'

फर्क क्या है ?

जब तुम प्रेम करते हो—साधारण प्रेम, जिसे हम प्रेम कहते है—तो तुम अपने सुख की फिक्र कर रहे हो, तुम प्रेमी का उपयोग कर रहे हो । भक्ति प्रेमी के सुख की चिंता करती है, अपने को समर्पित करती है । प्रेम मे तुम प्रेमी का उपयोग करते हो साधन की तरह, अपने सुख के लिए । भक्ति में तुम साधन बन जाते हो प्रेमी के, उसके सुख के लिए ।

भक्ति समर्पण है । भक्त फिर भगवान के लिए जीता है ।

कबीर ने कहा है, जैसे बाँस की पोली पोगरी खुद गीत नही गाती, फिर परमात्मा के ही गीत उससे बहते हैं । बाँस की पोगरी तो सिर्फ पोली है, राह देती है, जगह देती है, स्थान देती है, रुकावट नही देती ।

तो कबीर ने कहा है, 'अगर गीत मे कही कोई अडचन आती हो तो मेरी बाँस की पोगरी की भूल समझना, कही कोई गडबड होगी । तुम तो गीत ठीक ही ठीक गाते हो, अडचन आती होगी, बाधा पडती होगी, मेरे कारण पड जाती है । कसूर हो तो मेरा, भूल-चूक हो तो मेरी, जो भी ठीक हो, तेरा ! दुखी होता हूँ तो मै अपने कारण, सुखी होता हूँ तो तेरे कारण ! बँधता हूँ तो अपने कारण, मुक्त होता हूँ तो तेरे कारण ! नरक बनाता हूँ तो मैं, स्वर्ग तो सब तेरा प्रसाद है !'

प्रेम अपने सुख की तलाश है, और इसलिए प्रेम दुख मे ले जाता है । जो अपने सुख की तलाश कर रहा है, वह 'मैं' को पकडे हुए है । और 'मैं' सारे दुखो का निचोड है । वही तो काँटा है, चुभता है । जिसने प्रेमी के सुख को सब कुछ माना, जिसने सब प्रेमी के सुख पर निछावर किया, उसके जीवन में फिर कोई दुख नही ।

तुम जब तक अपना सुख खोजोगे, दुख पाओगे । जिस दिन तुम परमात्मा का सुख खोजने लगे कि वह जिसमें सुखी हो, वही मेरा सुख ।

जीसस को सूली लगी, एक क्षण को कँप गये और उन्होने कहा, 'हे भगवान

यह मुझे क्या दिखला रहा है ?' फिर सम्हल गये और कहा, 'तेरी मर्जी पूरी हो !' उसी क्षण क्रांति घटी। उसी क्षण जीसस का साधारण मनुष्य रूप खो गया, परमात्म-रूप प्रगट हुआ। सूली भी स्वीकार हो गयी तो सिंहासन हो गयी।

जीसस की सूली से ऊँचा सिंहासन तुमने कहीं देखा ? जीसस की सूली से बहुमूल्य सिंहासन तुमने कहीं देखा ?

मृत्यु महाजीवन का द्वार बन गयी। इधर अहंकार गया, उधर परमात्मा प्रविष्ट हुआ।

अपने सुख को खोजने का अर्थ है अहंकार अभी भी खोज रहा है। उसके सुख को खोजना जब शुरू हो जाए, भक्त तब ऐसे जीने लगता है जैसे बाँस की पोंगरी, बाँसुरी बन जाता है सब स्वर 'उसी' के है। फिर कोई दुख नहीं है। फिर कोई नरक नहीं है। फिर अँधेरा भी रोशन है। फिर मौत भी और नये जीवन की शुरुआत है। फिर काटों में भी फूल दिखायी पड़ने लगते है, काँटे भी फूल हो जाते हैं। फिर दुख अनुभव में आता ही नहीं। फिर हैरानी होती है यह देख के कि लोग दुखी क्या हो रहे है !

सब उपलब्ध है। महोत्सव की तैयारियाँ है और लोग दुखी हो रहे है। परमात्मा गीत गाने को तैयार है। उसके ओठ फड़क रहे हैं। तुम्हारी बाँसुरी तैयार नहीं है। तुम खाली नहीं हो, तुम भरे हो !

अहंकार से खाली होते ही 'उसका' प्रवेश हो जाता है।

आज इतना ही।

छठवाँ प्रवचन

दिनांक १६ जनवरी, १९७५, श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्रसादस्वरूपा है भक्ति

पहला प्रश्न जब भी किसी को विराट का अनुभव होता है, वह किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्त होता ही है। क्या आप बुद्धपुरुषों के देखे ऐसा नहीं है ?

अनुभव तो वह ऐसा है कि छिपाये छिपेगा नही, प्रगट होगा ही । जहाँ तक अनुभोक्ता का सम्बध है, प्रगट होगा ही। लेकिन जहाँ तक तुम्हारा सम्बध है, तुम पर निर्भर है प्रगट हो या अप्रगट रह जाए।

बुद्ध ने तो कह दिया है जो जाना, तुमने सुना या नही .. बुद्ध की तरफ से प्रगट हो गया, तुम्हारी तरफ प्रगट हो भी सकता है, प्रगट न भी हो।

वर्षा तो होती है, झील, सरोवर, खाई, खड्ड भर जाते हैं, पहाड खाली के खाली रह जाते हैं।

तुम्हारा घडा उलटा रखा हो, मेघ कितने ही गरजें, कितने ही बरसे, तुम खाली रह जाओगे, तुम्हारे लिए वर्षा हुई ही नही। नही कि वर्षा नही हुई, वर्षा तो हुई, तुम्हारे लिए नही हुई। और जब तक तुम्हारे लिए न हो तब तक हुई या न हुई, क्या फर्क पडता है!

बुद्धपुरुष चुप भी रह जाएँ तो उनकी चुप्पी मे भी वही प्रगट होता है।

बोलना जरूरी नही है – बोलना मजबूरी है। बोला जाता है करुणा के कारण, क्योकि मौन को तो तुम समझ ही न पाओगे । शब्द ही छूट जाते हैं तो मौन तो कैसे पकड में आएगा ? कह कह के भी, तुम्हारी पकड नही बैठ पाती, अनकहे को तो तुम कैसे पकड पाओगे ?

बोलना जरूरी नही है, मजबूरी है। बुद्धो का बस चले तो चुप रह जाएँ। लेकिन तुम्हे देख कर, तुम्हारे लडखडाते पैरो को देख कर, अँधेरे मे तुम्हें टटोलते देख कर, चिल्लाते हैं, जितने जोर से बोल सकते है उतने जोर से बोलते हैं–फिर भी तुम्हारे बहरेपन मे आवाज पहुँचती है, यह सदिग्ध है।

करोडो सुनते है, कोई एक सुन पाता है। सुन सभी लेते हैं, क्योकि तुम बहरे नही हो, कान तुम्हारे काम करते है, फिर भी चूक जाते हो । क्योकि सुनना एक बात है, और सुन लेना बिलकुल दूसरी।

शब्द बोले जाते है तो कानो पर तरगें पैदा होती हैं, लेकिन हृदय अछूता रह जाता है। मस्तिष्क के पास तो दो कान हैं, आवाज एक से जाती है, दूसरे से निकल जाती है। हृदय के पास एक ही कान है, आवाज जाती है तो फिर निकल नही पाती, बीज बन जाती है, गर्भस्थ हो जाता है हृदय। और जब तक सुनी हुई वाणी तुम्हारे भीतर गर्भ न बन जाए, जैसे सीप के भीतर मोती निर्मित होता है, ऐसे सुना हुआ शब्द जब तक तुम्हारे भीतर मोती न बनने लगे, तब तक तुमने सुना, फिर भी सुना नही, देखा, फिर भी देखा नही।

जीसस बार-बार अपने शिष्यो को कहते हैं, 'आँखे हो तो देख लो! कान हो तो सुनो। हृदय हो तो समझो।'

ऐसा नही कि जीसस बहरे और अधे लोगो से बोल रहे थे, तुम्हारे ही जैसे आँख वाले और कान वाले लोग थे। फिर भी बार-बार जीसस दोहराते हैं। कारण साफ है।

सत्य जब अनुभव मे आता है किसी के तो बात कुछ ऐसी है कि छुपाये भी नही छुप सकती, बताने की तो बात ही अलग। साधारण प्रेम नही छुपता। किसी के जीवन मे साधारण प्रेम आ जाए तो चाल बदल जाती है, चाल मे एक नृत्य समा जाता है, व्यक्तित्व की गध बदल जाती है, हजार-हजार कमल खिल जाते है, बोलता है तो एक माधुर्य आ जाता है, साधारण वाणी में मधु बरसने लगता है!

प्रेमी की आँखें देखो
— बिना शराब पिये शराबी हो गया होता है!
एक मस्ती घेर लेती है!
जैसे प्रकृति पर जब वसत उतरता है,
ऐसा जब किसी के जीवन मे प्रेम उतरता है,
तो हृदय वसत से भर जाता है!
सब तरफ फूल खिल जाते हैं!
सब तरफ पक्षियो की चहचहाहट शुरू हो जाती है!
भीतर कोई अवरुद्ध झरने मुक्त हो जाते हैं!
पख लग जाते हैं—अनत आकाश में उडने के!

साधारण प्रेम में ऐसा हो जाता है, तो जब परमात्मा का प्रेम बरसता है किसी पर, उस असाधारण प्रेम की घटना घटती है, जब बूँद मे सागर उतरता है, आँगन मे आकाश आ जाता है, कबीर ने कहा है, जब अँधेरे में हजार-हजार सूरज का प्रकाश आता है, हजारो सूर्य भी मात हो जाएँ, ऐसे प्रकाश की वर्षा होती है, मृत्यु मे अमृत का आनद बरसता है—तो कैसे छिपाये छिपेगा?

मुर्दा जिंदा हो जाए, छिपाये छिपेगी यह बात? मृत्यु मे अमृत उत्तर आए,

छिपाये छिपेगी यह बात ? कोई उपाय नहीं है छिपने का। छिपाये तो छिपती ही नही, मगर मजा यह है, दुर्भाग्य यह है, बताये भी प्रगट नहीं हो पाती। छिपाये छिपती नही और बताये प्रगट नही हो पाती। क्योकि दो हैं। वसत आ गया, इतना ही थोडे काफी है, तुम्हारे भीतर भी तो वसत को समझने की कोई समझ होनी चाहिए।

एक बहुत बडे चित्रकार टरनर के चित्रो की प्रदर्शनी हो रही थी। बडा शोरगुल था। सारा नगर इकट्ठा था चित्रो को देखने के लिए। टरनर द्वार पर ही खडा था, लोगो की प्रतिक्रियाएँ सुन रहा था।

एक महिला ने कहा, 'बडा शोरगुल मचाया हुआ है, मुझे तो कुछ इसमे दिखायी नही पडता। कुछ सार नही मालूम होता इन चित्रो मे। ये चित्र तो ऐसे लगते हैं जैसे बच्चो ने रग भरे हो। मुझे इनमे कोई बडी कुशलता नही दिखायी पडती। इतना शोरगुल क्यो मचाया हुआ है ?'

उसके साथ जो महिला थी, वह टरनर को पहचानती थी। उसने उससे कहा, 'चुप! टरनर सामने खडा है।'

और दूसरी महिला ने टरनर से कहा कि तुम्हारा सूर्योदय का चित्र मुझे बहुत पसद आया है, लेकिन ऐसा सूर्योदय मैंने कभी देखा नही। मतलब यह था कि 'ऐसा सूर्योदय होता नही जैसा तुमने बनाया है। यह किसी कल्पना की बात है।'

टरनर ने कहा, 'माना, लेकिन क्या न तुम चाहोगी कि मेरी आँखें तुम्हें उपलब्ध हो और ऐसा सूर्योदय तुम्हें दिखायी दे सके ?'

बडे माधुर्य से बडी गहरी चोट टरनर ने की 'क्या तुम न चाहोगी कि तुम्हें मेरी जैसी आँखें मिल जाएँ और ऐसा सूर्योदय दिखायी दे सके ?'

सूर्योदय देखना हो तो सूर्योदय देखने वाली आँखे भी तो चाहिए।

कहते हैं, अगर कवियो ने प्रेम के गीत न गाये होते तो लोगो को प्रेम का पता ही न चलता। यह बात मुझे कुछ समझ मे आती है।

तुम थोडा सोचो, अगर कभी तुमने प्रेम का कोई गीत न सुना होता और प्रेम की कोई कहानी न सुनी होती तो क्या तुम्हें तुम्हारी जिंदगी से पता चल सकता था कि प्रेम है ? शादी पता चलती, विवाह पता चलता, बाल-बच्चे पैदा होते, लेकिन प्रेम. ?

प्रेम का पता चलने के लिए पारखी की आँख चाहिए।

बडी मुश्किल से पैदा होता है चमन मे कोई आँख वाला, कोई दीदावर, कोई द्रष्टा!

लेकिन कविताएँ सुन के भी, प्रेम के गीत और प्रेम की कहानियाँ सुन के

भी, तुम्हें प्रेम का शब्द ही याद हो जाता है, तुम उसे दोहराने लगते हो, तुम वक्त-बेवक्त उसका उपयोग करने लगते हो। लेकिन क्या शब्द सुन के ही तुम्हें प्रेम का अनुभव हो सकता है ? क्या यह अनुभव ऐसा है कि उधार हो जाए ?

नही, उधार यह नही हो सकता।

तो तुम्हारे जीवन मे जब तक कोई अनुभव का सूत्र न हो, तब तक बुद्ध खडे रहें, तुम्हें दिखायी न पडेंगे। तुम्हे वही दिखायी पडेगा जो तुम्हें दिखायी पड सकता है। मीरा नाचती रहे, तुम्हें वही दिखायी पडेगा जो तुम्हे दिखायी पड सकता है। तुम्हारी आँखे ही तो तुम्हे खबर देंगी, और तुम्हारे कान ही तो व्याख्या करेंगे, और तुम्हारी समझ ही तो परिभाषा बनायेगी।

सत्य का अनुभव जब होता है तब तो वह प्रगट हो ही जाता है, लेकिन तुम नही समझ पाते।

बडी प्रसिद्ध पक्तियाँ है

'या रब न वह समझे हैं न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनका, जो न दे मुझको जबा और।'

सभी बुद्धो के मन मे ऐसा भाव रहा होगा कि हे, भगवान

'या रब न वह समझे है न समझेगे मेरी बात
दे और दिल उनको, जो न दे मुझको जबा और।'

'या तो मेरी जबान बदल, ताकि मैं उन्हे समझा सकूं, और या उन्हें और दिल दे, ताकि वे समझ सके।'

हजार ढग से बुद्धो ने समझाने की कोशिश की है, लेकिन तुम्हारे पास कोई समानातर अनुभव चाहिए न सही सूरज का, किरण का ही सही, न सही सूरज का, मिट्टी के छोटे-से दीये का ही सही — पर कोई समानान्तर अनुभव चाहिए।

दीया भी देखा हो तो सूरज का अनुमान किया जा सकता है। दीया भी न देखा हो तो सूरज शब्द कोरा शब्द रह जाता है — चली हुई कारतूस जैसा, खाली। उसे तुम याद कर ले सकते हो, वक्त-बेवक्त उपयोग भी कर सकते हो, लेकिन उसकी कोई जडे तुम्हारे भीतर न होगी — उखड़ा हुआ पौधा होगा, सूखा हुआ पौधा होगा, गुलदस्ते में सजा के रख सकते हो, उसमे कभी फूल न आएँगे, तुम धोखे मे रह सकते हो, लेकिन तुम्हारे जीवन में उस धोखे के कारण बाधा ही पडेगी, क्राति घटित न होगी।

ठीक पूछा है जब भी किसी को विराट अनुभव मे आता है ता अभिव्यक्ति तो होती ही है।

बहुत बुद्धपुरुष चुप भी रह गये है, पर उनकी चुप्पी भी बडी बोलती हुई

थी। वह खामोशी भी गीत गाती हुई थी। जिनको थोडी भी समझ थी उन्होंने उन चुप रहने वाले लोगो को भी खोज लिया है और उनके पदचिह्नो पर यात्रा कर ली है।

कोई नाचा है। किसी ने बाँसुरी बजा कर कहा है। कोई बोला है। किसी ने तर्कनिष्ठ भाषा का उपयोग किया है। जीसस और बुद्धो ने छोटी-छोटी कथाएँ कही हैं। जो जिससे बन सका..।

सत्य को पाने के पहले जिसकी जैसी तैयारी थी, फिर जब सत्य उतरा तो उसके पहले जो-जो तैयारी थी उस सबका उपयोग किया है, हर तरह से उपयोग किया है। लेकिन जरूरी नही है कि तुम उन्हे पहचान पाये होओ।

बुद्ध जिन गाँवो से गुजरे उनमे हजारो-लाखो लोग थे, जिन्होंने उन्हें नही पहचाना, बुद्ध गाँव से गुजरे, जो उनके दर्शन को भी न गये, जो उन्हें सुनने भी न गये, जो उन्हें सुनने भी गये तो खाली हाथ ही लौटे, सोचते लौटे कि सब बाते हैं, हवा की बाते हैं। उनके कहने मे भी सच्चाई है।

जो तुम्हारी पकड में न आये, वह हवा की बात है, पानी का बबूला है।

सत्य तो सत्य तभी होता है जब तुम्हारे भीतर उसे आधार मिल जाए।

लेकिन बुद्धपुरुष कहते हैं, उनकी करुणा से हजार उपाय खोजते हैं। कहने मे उन्हें कुछ रस नही है, तुम समझ लो, इसमे जरूर रस है। यही तो फर्क है।

एक दार्शनिक भी कहता है, उसे कहने मे रस है, तुम समझो-न-समझो, इसमें सवाल नही है – उसे अपनी ही आवाज सुनने मे मजा आ रहा है। बोल के वह अपने अहकार को फैला रहा है।

विचारक भी लिखता है, बोलता है, लेकिन तुमसे उसे प्रयोजन नही है, प्रयोजन अपने अहकार की सजावट ही है।

कवि भी गाता है, लेकिन गाने मे मजा भी अपनी ही आवाज सुनने का है। यही तो कवि और ऋषि का फर्क है। ऋषि गाता है ताकि तुम सुन सको। ऋषि गाता है ताकि तुम्हारे हृदय मे कुछ हिलोरे पैदा हो सके, ताकि तुम्हारा सोया प्राण जग जाए। कवि गाता है, ताकि तुम्हारी तालियो की आवाज उसके अहकार में नयी सजावट बने, नया शृगार हो, मगर तुम्हारी तालियो को सुनने के लिए ही गाता है।

सत भी बोलते है – इसलिए नही कि तुम्हारी तालियाँ सुनें। तुम्हारी प्रशसा से कोई भी प्रयोजन नही है। वस्तुत जब भी तुम उनकी प्रशसा करते हो और ताली बजाते हो, तब वे थोडा चौंकते हैं। क्योंकि यह बात ताली सुनने के लिए या प्रशसा सुनने के लिए नही कही गयी थी – यह कही गयी थी ताकि तुम बदलो, तुम्हारे जीवन मे क्राति का सूत्रपात हो।

'न सताइश की तमन्ना न सिले की पर्वा
गर नही है मेरे अशआर में मानी न सही।'
—न तो कोई पुरस्कार चाहिए, न कोई प्रशसा।
'न सताइश की तमन्ना न मिले की पर्वा।
गर नही है मेरे अशआर में मानी न सही।'

इसकी भी चिंता नही है सतो को कि वे जो कह रहे हैं, वह सार्थक भी हो, क्योंकि सार्थक बनाने के लिए तो उसे तुम्हारे तल पर उतारना पडेगा। और जितना ही सत्य तुम्हारे तल पर उतारा जाता है उतना ही मरता जाता है, जब वह ठीक तुम्हारे तल पे आ जाता है, व्यर्थ हो जाता है।

इसलिए अगर किसी को सार्थक वचन ही बोलने की आकांक्षा हो तो सत्य नही बोला जा सकता। सत्य तो विरोधाभासी है। सत्य का तो बोलने का एक ही ढग है कि तुम सार्थक होने की चिंता मत करना।

तर्कातीत है सत्य, तो सार्थक कैसे होगा ?

विरोधाभासी है सत्य, तो सार्थक कैसे होगा ?

और जो तुम्हारे लिए सार्थक हो सके वह बिलकुल ही व्यर्थ हो गया। जो तुम्हारी बिलकुल ही समझ मे आ जाए, वही सार्थक हो सकता है। और जो इतना सार्थक हो जाए कि तुम्हारी समझ मे बिलकुल आ जाए, वह तुम्हे ऊपर न उठा सकेगा।

तो बुद्धपुरुषो की चेष्टा क्या है ?

—कुछ समझ में आये, कुछ समझ के पार रह जाए।

जो समझ मे आये, वह सहारा बने आस्था का, ताकि जो समझ में नहीं आया है, उसकी तरफ तुम कदम बढाओ, जरा-सा समझ मे आये और बहुत-सा समझ के पार रह जाए, वह जो थोडा-सा समझ में आता है, धुधला-सा समझ मे आता है, वह तुम्हारे लिए मार्ग बन जाए, उसके सहारे तुम और यात्रा करने के लिए और उत्सुक हो जाओ।

सत तो प्रगट हो जाते हैं—अपनी तरफ से, तुम्हारी तरफ से अप्रगट रह जाते हैं—इतने अप्रगट रह जाते हैं कि इतिहास मे उनका कोई उल्लेख भी नही होता।

जीसस का कोई उल्लेख नही है, सिवाय बाइबिल के कहीं और। बाइबिल तो उनके ही शिष्यो की किताब है, इसलिए भरोसे की नही है। हजारो लोग हैं जो शक करते हैं कि जीसस कभी हुए भी

कृष्ण कभी हुए — शक की बात है।

इतने विराट पुरुष हुए, इतिहास मे इनकी कोई छाप नही छूट जाती, क्योंकि इतिहास तुम लिखते हो, जब तुम पर ही छाप नही छूटती तो तुम्हारे लिखे पर

कहाँ से छाप छूटेगी ! तुम्हारे लिखे पे छाप छूटती है चगेज खा की, तैमूरलग की, राजनेताओ की, उपद्रवियों की, हत्यारों की, डाकुओ की, इनकी तुम्हारे लिखे पे छाप छूटती है। इन पे कोई शक नहीं करता कि चगेज खा कभी हुआ या नहीं, तैमूरलग कभी हुआ कि नहीं। कोई शक का सवाल ही नही है। करोडो प्रमाण हैं उनके होने के।

कृष्ण ? क्राइस्ट ? — कोई प्रमाण नही मालूम पडता, मान लो, भरोसे की बात है, न मानो तो कोई मना नही सकता।

क्या कारण होगा ? इतिहास इतना अछूता कैसे रह जाता है ?

क्योकि इतिहास तुम लिखते हो। तुम्हारा हृदय ही अछूता रह जाता है। तुम पर ही निशान नही बनते उनके, तो तुम्हारे लिखे पर कैसे बनेंगे ? व्यर्थ की तो छाप बन जाती है, क्योंकि व्यर्थ तुम्हें सार्थक है। सार्थक की छाप ही नहीं बनती, क्योकि सार्थक तुम्हें बिलकुल व्यर्थ है।

बुद्ध का क्या करियेगा ? युद्ध मे काम आ नही सकते। तलवार बना नही सकते उनसे।

बुद्ध की खोजो का क्या करियेगा ? अणु-बम तो बन नही सकता उनसे। तुम्हारे किसी काम की नही है। खयाली बातें है, हवा की है।

स्वप्नद्रष्टा है इस तरह का व्यक्ति। तुम उसे माफ कर देते हो, इतना ही बहुत। तुम अपनी राह चले जाते हो। कभी फुर्सत हुई, उसकी दो बात भी सुन लेते हो, लेकिन उसकी बातो के कारण तुम अपने को बदलने की तैयारी नही करते। सुन लेते हो औपचारिकता से, शिष्टाचार से, लेकिन कही भी तुम पर कोई छाप नही पडती। किसी पे पड जाती है तो तुम उसको पागल समझते हो। किसी पे पड जाती है तो तुम समझते हो कि गया काम से, यह एक और आदमी खराब हुआ।

जीवन मे जो भी महत्त्वपूर्ण है, वह तुम्हे सार्थक दिखायी ही नही पडता। तुम कितने ही ऊँचे आकाश में उडो, तुम्हारी नजर चील की तरह कचरा-घरो पे पडे मरे चूहो में लगी रहती है। तुम बुद्धो के पास भी बैठो तो भी तुम्हारी नजर बुद्धो पे नहीं होती।

एक सज्जन मेरे पास आये। मिल के गये। महीने-भर बाद वे फिर आये। बडे प्रसन्न थे। कहने लगे, 'आपकी बडी कृपा है ! चमत्कार हो गया ! मुकदमा कई सालो से उलझा था, आपके दर्शन किये, जीत गया।'

मेरे दर्शन से इनके मुकदमे का क्या सम्बन्ध ? लेकिन जब आये होंगे तो वे इसीलिए आये होंगे कि मुकदमा जीतना था।

बुद्धपुरुषो के पास भी तुम जाओ तो तुम्हारी नजर तो मरे चूहो पर ही लगी

रहती है। कहीं मुकदमा हार जाते तो फिर कभी दुबारा मेरे पास न आते : 'यह आदमी किसी काम का नहीं, उलटा उपद्रव है।'

तो मैंने उनसे कहा, 'भूल हो गयी। संयोग को चमत्कार मत समझ लेना। और अब दुबारा मुकदमा जीतना हो तो यहाँ मत आना।'

मुकदमे से मेरा क्या सम्बध हो सकता है ? तुम्हारी पूरी जिंदगी बेकार है, तुम सब मुकदमे हार जाओ तो भी कुछ फर्क नहीं पडता। तुम्हारी जिंदगी पूरी हारी हुई है। तुम जिसे जिंदगी कहते हो वही व्यर्थ है।

सार्थक तुम्हारी समझ के मापदण्ड पे कसा जाता है।

ध्यान रखना–

'न सताइश की तमन्ना न सिले की पर्वा
गर नहीं है मेरे अशआर मे मानी न सही।'

बुद्धपुरुष सार्थक की चिता करे तो बोल ही नहीं सकते, क्योंकि तब मरे चूहा की चर्चा करनी पडेगी। सत्य की परवाह करते हैं, सार्थक की नहीं। और सत्य तुम्हे निरर्थक दिखायी पडेगा, यह पक्का है।

बडी हिम्मत चाहिए सत्य की खोज के लिए, क्योंकि वह अर्थ के पार जाने की चेष्टा है। जिन-जिन चीजो मे तुम्हे उपयोगिता मालूम होती है–धन है, पद है, प्रतिष्ठा है–सत्य न तो पद बनेगा, न प्रतिष्ठा, न धन, सिंहासन तो बन ही नहीं सकता, सूली भला बन जाए, धन तो बनेगा ही नहीं, पद तो बनेगा ही नहीं, विपरीत भला हो जाए। तो सत्य तुम्हें कैसे सार्थक मालूम हो सकता है ?

सत्य तो ऐसा है, जैसे वृक्षो पे फूल है, पक्षियो के गीत हैं, झरनो का कलरव है – कोई अर्थ तो नहीं है।

पश्चिम के एक बडे महत्त्वपूर्ण कवि कम्मिंग्स से किसी ने पूछा कि तुम्हारी कविताओ का माना ही क्या है, अर्थ क्या है। उसने कहा, 'कोई अर्थ नहीं। फूलो से पूछो, क्या है। पक्षियो से पूछो, क्या अर्थ है। आकाश से पूछो, क्या अर्थ है उसका। और अगर आकाश व्यर्थ हो के शान से है और फूल व्यर्थ हो के गौरव से खिलते हैं, शरमाते नहीं, छिपते नहीं, तो मेरी कविताओ को ही अर्थ बताने की क्या जरूरत है ?'

जितनी सत्य के करीब कोई बात पहुँचने लगेगी, उतनी ही तुम्हारी सार्थकता के घेरे के बाहर हो जाएगी। अर्थ है कोई, लेकिन उस अर्थ को जानने के लिए तुम्हारी आत्मा को पूरा रूपान्तरित होना पडेगा, तुम्हारे अर्थ की परिभाषा ही बदलनी पडेगी।

बुद्धपुरुष प्रगट होते हैं – तुम्हारे लिए नहीं प्रगट हो पाते।

तुम इसकी चिंता भी मत करो कि वे प्रगट होते है या नहीं – तुम इसकी ही चिंता करो कि तुम्हारे लिए प्रगट हो पाते हैं या नहीं।

अपने हृदय को खोलो !
बंद द्वार-दरवाजे तोड़ो !
घबड़ाओ मत, खुले मे आओ !
छिपो मत अंधकार में !
आदत अंधकार की छोड़ो !
थोड़ी रोशनी में आओ !

आँखें तिलमिलाएँ भी प्रारम्भ मे तो घबड़ाओ मत । पुराने अंधकार की आदत हो गयी है, स्वाभाविक है कि थोड़ी तिलमिलाहट होगी, थोड़ी अड़चन होगी, थोड़ी कठिनाई होगी, थोड़ी तपश्चर्या होगी । मगर यह तपश्चर्या करने जैसी है, क्योंकि जो मिलेगा वह अनंत है, जो मिलेगा वह विराट है । और जब तक वह न मिल जाए तब तक तुम्हारा जीवन एक कोरा शून्य है, एक रिक्तता है, एक खालीपन है ।

दूसरा प्रश्न आये थे दर पे तेरे सिर झुकाने के लिए,
उठता नही है सिर अब वापस जाने के लिए,
दर्द दिया है तो दवा भी तू ही दे,
ऐसा न हो कि कहानी बन जाये जमाने के लिए ।

ठीक है । घबड़ाने की कोई बात नही है ।
दर्द ही दवा बन जाता है !
दर्द के अधूरे होने मे पीड़ा है, पूरे हो जाने में दवा है ।

इसे थोड़ा समझना । कठिन होगा समझना, क्योंकि हमारे तर्क की कोई भी कोटियाँ काम में नही आएँगी ।

लेकिन आन्तरिक जीवन के बहुमूल्य सत्यो में एक सत्य है कि अगर तुम्हारा प्रश्न पूरा हो जाए तो प्रश्न में ही उत्तर निकल आता है ।

और तुम्हारी प्यास अगर समग्र हो जाए तो प्यास मे ही झरने फूट पड़ते हैं और तृप्ति आ जाती है ।

दर्द पूरा हो जाए, दर्द इतना हो जाए कि तुम दर्द के जानने वाले अलग न रह जाओ, भेद न बचे, दर्द ही बचे, तुम न बचो तो दवा हो जाता है । इसी को तपश्चर्या कहते हैं ।

तपश्चर्या का अर्थ धूप में खड़ा हो जाना नहीं है, न भूखे हो कर उपवास कर लेना है ।

तपश्चर्या का अर्थ है जीवन के खालीपन की पीड़ा को उसकी समग्रता में अनुभव करना, जीवन की अर्थहीनता को उसकी पूरी त्वरा मे अनुभव करना ।

जीवन की ही यह जिसको भाग-दौड हम समझ रहे हैं, अभी बडी उपयोगी मालूम होती है, एक ख्वाब से ज्यादा न रह जाए तो अचानक हम पाएँगे हाथ खाली हैं। घबडाहट पकडेगी। रोआँ-रोआँ कँप जाएगा। लगेगा, यह जो जिये अब तक नाहक ही जिये, यह जो समय गया व्यर्थ ही गया। पीडा उठेगी। गहन पीडा उठेगी। इस पीडा को झेलने का नाम ही तपश्चर्या है।

और जल्दी दवा मत माँगना, क्योंकि जल्दी दी गयी दवाएँ शामक होगी, वे तुम्हारी पीडा को सुला देंगी, तुम फिर वापस दुनिया मे लौट जाओगे वैसे-के-वैसे।

दवा माँगना ही मत। दर्द को भोगने के लिए तैयार रहना। अगर तुम भोगने की पूरी तत्परता दिखा सको तो दद में ही दवा छिपी है।

'इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया
दर्द की दवा पायी, दर्द बेदवा पाया।'

प्रेम से, भक्ति से —

'तबियत ने जीस्त का मजा पाया'

पहली दफा जीवन का आनद आना शुरू हुआ। लेकिन यह आनद कोरा आनद नहीं है, इस आनद की बडी गहन पीडा भी है। अगर तुमने प्रेम मे सिर्फ सुख ही खोजा तो तुम प्रेम से वचित रह जाओगे, क्योंकि प्रेम का दुख भी है।

गुलाब की झाडी पर फूल ही नहीं हैं, काँटे भी है। फूल-ही-फूल माँगे तो फिर तुम जा के फूल बेचने वाले से फूल खरीद लेना, झाडी लगाने की झझट में मत पडना। वहाँ तुम्हे फूल मिल जाएँगे बिना काँटे के, मगर वे मरे हुए फूल हैं। ज़िदा फूल चाहिए तो काँटे भी होंगे।

और गुलाब का फूल काँटों मे ही शोभा देता है।

रात के घने अँधेरे मे जब चैतन्य का दीया जलता है तो उसी विपरीतता में उसकी प्रतीति की सघनता है।

'इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया
दर्द की दवा पायी ।'

अब तक जो दर्द थे जिंदगी के — हज़ार दर्द हैं जिंदगी के — वे ही तुम्हें मेरे पास ले आये। हज़ार-हज़ार तकलीफें है, चिंताएँ हैं, उलझने है। हजार दर्द हैं ज़िंदगी के।

अगर तुम भक्ति और प्रेम के रास्ते पर चले तो दर्द की दवा मिल जाएगी। इन सभी दर्दों की दवा मिल जाएगी। ये सब दर्द खो जाएँगे। 'दर्द की दवा पायी' — और तब एक नया दर्द शुरू होगा — 'दर्द बेदवा पाया।' और अब एक ऐसा दर्द शुरू होगा जिसकी कोई दवा नही है।

इन सभी दर्दों की तो दवा है। अगर चिंता है तो ध्यान से खो जाएगी।

तनाव है, ध्यान से मिट जाएगा। क्रोध है, लोभ है, मोह है – इन सभी दर्दों की दवा है। सिर्फ एक परमात्मा का दर्द है, जिसकी कोई दवा नही।

तो तुमसे मैं सारे दर्द छीन लूंगा और एक दर्द दूंगा, जिसकी फिर कोई दवा नही है। सौदा महँगा है। महँगा सौदा है। जुआरी चाहिए। दुकानदार इस काम को नही कर सकते। वे कहेंगे, 'यह क्या हुआ, छोटे-छोटे दर्द ले लिये और यह बडा दर्द दे दिया! छोटे-छोटे दर्द ले लिये, जिनकी तो दवा थी, और यह दर्द दे दिया, जिसकी कोई दवा नही है!'

लेकिन घबडाना मत!

'इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया
दर्द की दवा पायी, दर्द बेदवा पाया।'

'इशरते कतरा है दरिया मे फना हो जाना।'

बूद का गौरव यही है, ऐश्वर्य यही है कि वह सागर में खो जाए, मिट जाए।

'इशरत कतरा है दरिया मे फना हो जाना
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना।'

यह जो बेदवा-दर्द है, अगर यह हद से गुजर जाए – हद से गुजर जाने का अर्थ है, तुम इसमे मिट ही जाओ, तुम ही हद हो, तुम ही सीमा हो, ऐसा कोई भीतर रह ही न जाए जिसको दर्द हो रहा है, दर्द ही बस रह जाए–

'दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना।'

परमात्मा की पीडा ऐसी है कि उसका कोई इलाज नही, पीडा मे ही इलाज छिपा है। क्योकि परमात्मा आखिरी पीडा है, उसके आगे इलाज हो भी नही सकता। वही पीडा है, वही इलाज है। वही रोग है, वही औषधि है। क्योकि उसके पार फिर कुछ भी नही।

तो घबडाओ मत!

दर्द की तैयारी चाहिए।

तो जब परमात्मा के आनद को माँगने चले हो तो यह सौदा करने जैसा है। जितना दर्द उठाने की तैयारी दिखाओगे, उतना ही परमात्मा का आनद उपलब्ध होगा।

तुम्हारे दर्द को झेल लेने की तैयारी, तुम्हारी परीक्षा है, तुम्हारी कसौटी है, और तुम्हारी भूमिका भी है।

दर्द निखारता है। दर्द साफ करता है।

दर्द ऐसे है जैसे कि कोई सोने को आग में धरता है, तो जो व्यर्थ है जल जाएगा, स्वर्ण बच रहेगा खालिस! दर्द में वही जलेगा जो व्यर्थ है, जो जल ही जाना था, कूडा-कर्कट था। तुम्हारे भीतर जो भी सोना है वह बच जाएगा।

यह अग्नि गुजरने जैसी है।

भक्ति अग्नि है ।
यह भीतर की आग है ।

तीसरा प्रश्न आपके प्रवचन सुनते हुए कभी-कभी प्रेम-विभोर हो कर मेरी आँखें आँसू बहाने लगती हैं । लेकिन तभी अचेतन में अहकार को रस भी आता लगता है कि मैं अहोभाव के आँसू बहा रहा हूँ । क्या इससे अद्वैत का रूखा-सूखा मार्ग अच्छा नही है, जहाँ अश्रु बहाने वाला बचता ही नही ?

बारीक है सवाल, थोडा समझना पडे । नाजुक है ।

थोडा ध्यान करना जब भक्ति तक मे अहकार बच जाता है तो अद्वैत में तो मिट ही न सकेगा । जब आँसू भी उसे नही बहा सकते तो रूखे-सूखे मार्ग पर तो बडा अकड के खडा हो जाएगा । जब आँसू भी उसे पिघला नही सकते, और आँसुओ से भी वह अपने को भर लेता है, तो जहाँ आँसू नही है वहाँ तो मिटने का उपाय ही न रह जाएगा ।

समझें ।

अहकार का आँसुओ से विरोध है । इसलिए तो हम पुरुष से कहते हैं, 'रो मत । क्या स्त्री जैसा व्यवहार कर रहे हो !' पुरुष को हम अहकारी बनाते है । छोटा बच्चा भी रोने लगता है तो कहते है, 'चुप ! लडका है या लडकी ?' पुरुषो की दुनिया है। अब तक पुरुष काबू रहे है दुनिया पर, तो उन्होने अपने लिए अहकार बचा लिया है । पुरुष होने का अर्थ है 'रोना मत'। यह अकड है । 'स्त्रियाँ रोती है । कमजोर रोते हैं, शक्तिशाली कही रोते हैं !

अहकार का आँसुओ से कुछ विरोध है ।

तुम अगर सिकन्दर को रोते देखो तो तुम उसको बहादुर न कह सकोगे। नेपोलियन को अगर तुम रोते देख लो तो तुम कहोगे 'अरे, नेपोलियन, और रो रहे हो ! यह तो कायरो की बात है, कमजोरो की बात है । यह तो स्त्रैण चित्त का लक्षण है ।'

अहकार का आँसुओ से विरोध है । तो जब आँसू भी अहकार को नही मिटा पाते तो ऐसा मार्ग जहाँ आँसुओ की कोई जगह नही है, वह तो मिटा ही न पाएगा, वहाँ तो अहकार और अकड जाएगा ।

भक्तो मे तो कभी-कभी तुम्हे विनम्रता मिल जाएगी, अद्वैतवादियो मे तुम्हे कभी विनम्रता नही मिलेगी । मुश्किल है, बहुत मुश्किल है । बडी अकड मिलेगी । आँसू ही नही हैं ।

थोडा सोचो हरा वृक्ष होता है तो झुक सकता है, सूखा वृक्ष होता है तो झुक नही सकता ।

विनम्रता तो झुकने की कला है। अगर आँसुओ ने थोड़ी हरियाली रखी है तो झुक सकोगे। अगर आँसू बिलकुल सूख गये और सूखे दरख्त हो गये तुम, तो झुकना असम्भव है, टूट भला जाओ, झुक न सकोगे।

अहकारी यही तो कहते हैं कि टूट जाएँगे, मगर झुकेंगे नही, मिट जाएँगे, मगर अकड़े रहेंगे।

अद्वैत रूखा-सूखा रास्ता है – तर्क का, बुद्धि का, विचार का। अगर भाव, प्रेम और भक्ति के रास्ते पर भी तुम पाते हो कि अहकार इतना कुशल है कि अपने को भर लेता है, तो फिर अद्वैत के रास्ते पर तो बहुत भर लेगा। क्योकि भक्ति की तो पहली शर्त ही यही है समर्पण। भक्ति तो पहली ही चोट में अहकार को मिटाने की चेष्टा करती है, अद्वैत तो अतिम चोट मे मिटायेगा। तुम पूरा रास्ता तय कर सकते हो अद्वैत का अहकार के साथ। अखीर मे अहकार गिरेगा। भक्ति तो पहले ही चरण पर कहती है अहकार छोडो तो ही प्रवेश है।

वैष्णव भक्तो की एक कथा है कि एक भक्त वृदावन की यात्रा को आया–रोता, गीत गाता, अश्रु-विभोर, लेकिन मदिर पर ही उसे रोक दिया गया, द्वार पर पहरेदार ने कहा, 'रुको! अकेले भीतर जा सकते हो। लेकिन यह गठरी जो साथ ले आये हो, इसे बाहर छोड दो।'

उसने चौक के चारो तरफ देखा, कोई गठरी भी उसके पास नही है। वह कहने लगा, 'कैसी गठरी, कौन-सी गठरी? मै तो बिलकुल खाली हाथ आया हूँ।

उस द्वारपाल ने कहा, 'भीतर देखो, बाहर मत। गठरी भीतर है, गाँठ भीतर है। जब तक तुम्हे यह खयाल है कि मै हूँ तब तक, तब तक भक्ति के मदिर मे प्रवेश नही हो सकता। भक्ति की तो पहली शर्त है तू है, मै नही हूँ। भक्ति का प्रारम्भ है तू है, मै नही। और भक्ति का अत है कि न मै हूँ, न तू है।'

अद्वैत की तो बहुत गहरी खोज यही है कि मै हूँ, तू नही, और अतिम अनुभव है न मै है, न तू। इसलिए तो अद्वैत कहता है अह ब्रह्मास्मि! अनलहक! मै हूँ। मै ब्रह्म हूँ। मै सत्य हूँ।

अद्वैत के रास्ते पर तो वे ही लोग सफल हो सकते हैं जो अहकार के प्रति बहुत सजग हो सके, क्योकि वहाँ आँसू भी साथ देने को न होगे, सिर्फ सजगता ही साथ देगी, वहाँ प्रेम भी झुकाने को न होगा, वहाँ तो बोधपूर्वक ही झुकोगे तो ही झुकोगे।

तो, अद्वैत तो बहुत ही समझपूर्वक चलने का मार्ग है। सौ चलेंगे, एक मुश्किल से पहुँच पाएगा। भक्ति मे नासमझ भी चल सकता है, क्योकि भक्ति बहुली है, सिर्फ गठरी छोड दो। कोई तर्क का जाल नही है, कोई विचार का सवाल नहीं है। प्रेम मे डूब जाओ!

अज्ञानी भी चल सकता है भक्ति के मार्ग पर।

तो जिस मित्र ने पूछा है कि आँसू बहने लगते हैं तो एक अहंकार पकड़ता है भीतर कि अहो, धन्यभाग, कि मैं कैसे भक्ति के रस में डूब रहा हूँ !—ठीक पूछा है। ऐसा होगा, स्वाभाविक है। उससे घबड़ाओ मत। उस अहोभाव को भी परमात्मा के चरणों पे समर्पित कर दो। तत्क्षण कहो कि खूब, फिर उलझाया, इसे भी सम्हाल ! अहोभाव मेरा क्या, तेरा प्रसाद है ! अब मुझे और धोखा न दे ! अब मुझे और खेल न खिला !

जैसे भी यह अहंकार बने, उसे तत्क्षण जैसे ही याद आ जाए, तत्क्षण परमात्मा के चरणों में रख दो। जल्दी ही तुम पाओगे अगर तुम रखते ही गये, अहंकार के बनने का कारण ही खत्म हो गया।

अहंकार संग्रहीत हो तो ही निर्मित होता है। पल-पल उसे चढ़ाते जाओ। परमात्मा के चरणों में और सब फूल चढाये, बेकार, धूप-दीप बाली, बेकार, आरती उतारी, व्यर्थ—बस अहंकार प्रतिपल बनता है, उसे तुम चढ़ाते जाओ। वही तुम्हारे भीतर उगने वाला फूल है, उसे चढ़ाते जाओ। जल्दी ही तुम पाओगे उसका उगना बंद हो गया। क्यों ? उसका संग्रहीत होना जरूरी है।

और आँसू बड़े सहयोगी हैं। होश रखना पड़ेगा। थोड़ा जागरूक रहना पड़ेगा। नहीं तो अहंकार बड़ा सूक्ष्म है और बड़ा कुशल है, बड़ा चालाक है। सावधान रहना पड़ेगा।

सावधानी तो सभी मार्गों पर जरूरी है, भक्ति के मार्ग पर सबसे कम जरूरी है, लेकिन जरूरी तो है ही। अद्वैत के मार्ग पर बहुत ज्यादा जरूरी है। न्यूनतम सावधानी से भी काम चल सकता है भक्ति के मार्ग पर, लेकिन बिलकुल बिना सावधानी के काम नहीं चल सकता है।

घबड़ाओ मत। जो हो रहा है, बिलकुल स्वाभाविक है, सभी को होता है। यात्रा के प्रारम्भ में यह अड़चन सभी को आती है।

अहंकार की आदत है कि जो भी मिल जाए उसी का सहारा खोज के अपने को भर लेता है। धन कमाओ तो कहता है, देखो, कितना धन कमा लिया ! ज्ञान इकट्ठा कर लो तो कहता है, कितना ज्ञान पा लिया ! त्याग करो तो कहता है, देखो कितना त्याग कर दिया ! ध्यान करो तो कहता है, देखो, कितना ध्यान कर लिया ! मेरे जैसा ध्यानी कोई भी नहीं है ! आँसू बहाओ तो गिनती कर लेता है, मैंने कितने आँसू बहाए, दूसरों ने कितने बहाए, मेरा नंबर एक है, बाकी नंबर दो हैं !

इस अहंकार की तरकीब के प्रति होश रखना भर जरूरी है, कुछ और करने की जरूरत नहीं है। उसे भी चढ़ा दो परमात्मा को।

भक्त को एक सुविधा है परमात्मा भी है उसके चरणों में तुम चढ़ा सकते हो। भक्त को एक सुविधा है कि अहंकार के विपरीत वह परमात्मा का सहारा ले सकता है। अद्वैतवादी को यह सुविधा भी नहीं है। वह बिलकुल अकेला है, कोई संगी-साथी नहीं है। भक्त अकेला नहीं है।

इसलिए अगर भक्ति के मार्ग पर भी तुम्हें अड़चन आ रही है तो यह मत सोचना कि अद्वैत का मार्ग तुम्हें आसान होगा, और भी कठिन होगा। इस भूल में मत पड़ना।

अहंकार की एक ही घबड़ाहट है, और वह घबड़ाहट यह है कि कहीं मर न जाऊँ। अहंकार मरेगा ही। वह कोई शाश्वत सत्य नहीं है, वह क्षणभंगुर है। तुम कभी न मरोगे, तुम्हारा अहंकार तो मरेगा ही।

जितनी जल्दी तुम यह बात समझ लो, उतना ही भला है।

'उम्र फानी है तो फिर मौत से डरना कैसा ?'

एक बात तो पक्की है कि मौत निश्चित है और जिंदगी आज है कल नहीं होगी—हवा की लहर है, आयी और गयी, सदा टिकने वाली नहीं है।

'उम्र फानी है तो फिर मौत स डरना कैसा
इक-न-इक रोज यह हंगामा हुआ रक्खा है।'

किसी भी दिन यह घटना घटने वाली है मौत होगी ही।

'इक-न-इक रोज यह हंगामा हुआ रक्खा है।'

तो जो होने ही वाला है, उसे स्वीकार कर लो।

लड़ो मत, बहो। यह लड़ाई छोड़ दो कि मैं बचूं। स्वीकार ही कर लो कि मैं नहीं हूँ।

जो मौत करेगी, भक्त उसे आज ही कर लेता है। जो मौत में जबरदस्ती किया जाएगा, भक्त उसे स्वेच्छा से कर लेता है। वह कहता है, 'जो मिटना ही है वह मिट ही गया, आज मिटा, कल मिटा – क्या फर्क पड़ता है! मैं खुद ही उसे छोड़े देता हूँ।'

अपनी मौत को स्वीकार कर लो तो तुम अमृत को उपलब्ध हो जाओगे। इधर तुमने मौत को स्वीकार किया कि उधर तुम पाओगे तुम्हारे भीतर कोई छिपा है—तुमसे ज्यादा गहरा, तुमसे ज्यादा ऊँचा, तुमसे ज्यादा बड़ा। तुम मिटे कि उस ऊँचाई और गहराई और उस विराट का चलना शुरू हो जाता है।

तुमने तिनके का सहारा ले रखा है। तिनके के सहारे के कारण तुम भी छोटे हो गये हो। तुमने गलत सच पकड़ लिया है। गलत से तादात्म्य हो गया है।

मौत को स्वीकार कर लो!

मौत को स्वीकार करते ही अहंकार नहीं बचता। जैसे ही तुमने सोचा,

समझा कि मौत निश्चित है—होगी ही, आज हो कल हो परसों हो, होगी ही; इससे बचने का कोई उपाय नहीं है, कोई कभी बच नहीं पाया। भाग-भाग के कहाँ जाओगे? भाग-भाग के सभी उसी मे पहुँच जाते हैं, मौत के ही मुँह मे पहुँच जाते हैं।

अगीकार कर लो! उस अगीकार मे ही अहकार मर जाता है।

'मुझे अहसास कम था वर्ना दौरे जिंदगानी मे
मेरी हर साँस के हमराह मुझमे इकिलाब आया।'

—मुझे होश कम था, मुझे अहसास कम था, होश कम था, सावधानी नही थी, जागरूकता नही थी,

'वर्ना दौरे जिंदगानी मे

वर्ना जिंदगी-भर,

'मेरी हर साँस के हमराह मुझमे इकिलाब आया।'

—हर साँस के साथ क्राति की सभावना आती थी और मैं चूकता गया। हर साँस के साथ क्राति घट सकती थी, अहकार छूट सकता था और परमात्मा के जगत मे प्रवेश हो सकता था—लेकिन होश कम था।

इस होश को थोडा जगाओ।

वह इकलाब, वह क्राति तुम्हारी भी हर श्वास के साथ आती है, तुम चूकते चले जाते हो।

अहकार को जब तक तुम पकडे हो, चूकते ही चले जाओगे। जिस दिन छोड़ा अहकार का उसी क्षण क्राति घट जाती है।

उसी क्राति की तलाश है! उस क्राति के बिना कोई तृप्ति न होगी। उस क्राति के बिना तुम थरथराते ही रहोगे भय मे, घबडाते ही रहोगे चिताओ में, डरते ही रहोगे।

मौत जब तक होने वाली है तब तक कोई निश्चित हो भी कैसे सकता है! अगर तुमने स्वीकार कर लिया तो मौत हो ही गयी, फिर चिता का कोई कारण नही।

इसे थाडा करके देखो। यह बात करने की है। यह बात सोचने-भर की नही है। इसे करोगे तो ही इसका स्वाद मिलेगा।

चौथा प्रश्न पृथ्वी पर अभी भी असख्य मदिर, मस्जिद, गिरजे और गुरुद्वारे हैं, जहाँ विधिविहित पूजा-प्रार्थना चलती है। क्या आपके देखे, वे सबके सब व्यर्थ ही हैं?

अगर व्यर्थ न होते तो पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आया होता। अगर व्यर्थ न होते

—इतनी पूजा, इतनी प्रार्थना, इतने मंदिर, इतने गिरजे, इतने मस्जिद—अगर वे सब सच होते, अगर ये प्रार्थनाएँ वास्तविक होतीं, हृदय से आविर्भूत होतीं, तो पृथ्वी स्वर्ग बन गयी होती। लेकिन पृथ्वी नरक है। जरूर कहीं-न-कहीं चूक हो रही है।

या तो परमात्मा नहीं है, इसलिए प्रार्थनाएँ व्यर्थ जा रही हैं, या प्रार्थनाएँ ठीक नहीं हो रही हैं, और परमात्मा से सम्बंध नहीं जुड़ पा रहा है। बस दो ही विकल्प हैं। अब इसमें तुम चुन लो, जो तुम्हें चुनना हो।

एक विकल्प है कि परमात्मा नहीं है, इसलिए प्रार्थनाएँ कितनी ही करो, क्या होने वाला है! है ही नहीं कोई वहाँ सुनने को, आकाश खाली और कोरा है, चिल्लाओ-चीखो—तुम पागलपन कर रहे हो। यह समय व्यर्थ ही जा रहा है, इसका कुछ उपयोग कर लेते, कुछ काम में आ जाता।

और या फिर, परमात्मा है, प्रार्थना करने वाला प्रार्थना नहीं कर रहा है, धोखा दे रहा है।

मैं दूसरा ही विकल्प स्वीकार करता हूँ। मेरे देखे परमात्मा है, प्रार्थना नहीं है—इसलिए सम्बंध टूट गये हैं, बीच का सेतु गिर गया है।

कुछ लोगों ने तो प्रार्थना भी प्रॉक्सी से करनी शुरू कर दी है पुजारी कर देता है। हिन्दुओं ने वह तरकीब खोज ली है। वे खुद नहीं जाते। गरीब-गुरबे चले भी जाएँ, पर जिनके पास थोड़ी सुविधा है, वे पुजारी रख लेते हैं। मंदिर में एक व्यवसायी पुजारी है, वह पूजा कर देता है। यह प्रार्थना प्रॉक्सी से है।

यह भी खूब धोखा हुआ! किसको धोखा दे रहे हो? उस पुजारी को प्रार्थना से कुछ लेना-देना नहीं है। उसको सौ रुपये महीने मिलते है तनखाह, उसको तनखाह से मतलब है। वह प्रार्थना करता है, क्योंकि सौ रुपये लेने हैं। यह व्यवसाय है। अगर उसे कोई डेढ़ सौ रुपये देने वाला मिल जाए तो इसी भगवान के खिलाफ भी प्रार्थना कर सकता है, कोई अड़चन नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक सम्राट के घर नौकर था, रसोइये का काम करता था। भिंडी बनाई थी उसने। सम्राट ने बड़ी प्रशंसा की। उसने कहा कि मालिक, भिंडी तो सम्राट है। जैसे आप सम्राट हैं, शहनशाह हैं, ऐसे ही भिंडी भी शाक-सब्जियों में सम्राट है।

दूसरे दिन भी भिंडी बनायी। तीसरे दिन भी भिंडी बनायी। चौथे दिन सम्राट ने थाली फेंक दी। उसने कहा कि नालायक, रोज भिंडी! तो मुल्ला ने कहा, 'मालिक! यह तो जहर है! यह तो गधों को भी खिलाओ, तो न खाएँ।'

सम्राट ने कहा कि नसरुद्दीन, चार दिन पहले तूने कहा था, यह शाक-सब्जियों में सम्राट है। और अब जहर है!

उसने कहा, 'मालिक ! हम आपके नौकर हैं, भिंडी के नहीं । हम तो आपको देख के कहते हैं । जो आप कहते हैं वही हम कहते हैं । हम आपके नौकर हैं । भिंडी से हमें कुछ लेना-देना नहीं है ।'

तो उस पुजारी से तुम जो चाहो करवा लो । वह तुम्हारा नौकर है, परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है ।

आदमी बड़ी चालाकियाँ करता है ।

तिब्बती लामा एक चाक बना लिये है — प्रेयर-व्हील । उसके आरों पर, स्पोक्स पर मंत्र लिखे हैं । उसको बैठे-बैठे घुमा देते हैं हाथ से । जैसे चरखे का चाक होता है, हाथ से घुमा दिया, वह कोई पचास-सौ चक्कर लगा के रुक जाता है । वे सोचते हैं कि इतने मंत्रो का लाभ हो गया, इतनी बार मंत्र कहने का लाभ हो गया ।

एक लामा मुझसे मिलने आया था । मैंने कहा कि तू बिलकुल पागल है ! इसमें प्लग लगा दे और बिजली में जोड़ दे । यह चलता ही रहेगा, तू सो, बैठ, जो तुझे करना हो, कर । यह भी झंझट क्यों कि इसको बार-बार हाथ से घुमाना पड़ता है, तू काम दूसरा करता है । फिर घुमाया, फिर घुमाया ! और जब धोखा ही देना है, तो तूने प्लग लगाया, इसलिए तुझी को लाभ मिलेगा, जैसे चक्कर लगाने से मिलता है । जो प्लग लगायेगा उसको मिलेगा ।

हम किसको धोखा दे रहे हैं ?

लोग प्रार्थनाएँ कर रहे हैं, लेकिन प्रार्थनाओं का कोई सम्बन्ध परमात्मा से है ?

कोई माँग रहा है कि बेटा नहीं है, मिल जाए । कोई माँग रहा है कि धन नहीं है, मिल जाए । कोई माँग रहा है, अदालत में मुकदमा है, जीत जाऊँ ।

तुम परमात्मा की सेवा लेने गये हो, परमात्मा की सेवा करने नहीं । तुम परमात्मा को भी अपना नौकर-चाकर बना लेना चाहते हो तुम्हारा मुकदमा जिताये, तुम्हें बच्चा पैदा करे, तुम्हारे लड़के की शादी करवाए । लेकिन तुम परमात्मा को धन्यवाद देने नहीं गये हो कि तूने जो दिया है वह अपरम्पार है । तुम माँगने गये हो ।

जहाँ माँग है वहाँ प्रार्थना नहीं ।

इसे तुम कसौटी समझो कि जब भी तुम माँगोगे, तब प्रार्थना झूठी हो गयी । क्योंकि जब तुम धन माँगते हो तो धन परमात्मा से बड़ा हो गया । तुम परमात्मा का उपयोग भी धन पाने के लिए करना चाहते हो ।

विवेकानंद के पिता मरे । शाहोदिल आदमी थे । बड़ा कर्ज छोड़ के मरे । घर मे तो कुछ भी न था, खाने को भी कुछ छोड़ नहीं गये थे । तो रामकृष्ण ने विवेकानंद को कहा कि तू परेशान मत हो । तू माँ से क्यों नहीं कहता ? मंदिर में जा और कह दे, वे सब पूरा कर देंगी !

वे द्वार पर बैठ गये, विवेकानंद को भीतर भेज दिया। घंटे-भर बाद विवेकानंद लौटे, आँख से आँसू बह रहे हैं, बड़े अहोभाव में! रामकृष्ण ने कहा, 'कहा?' विवेकानंद ने कहा, 'अरे! वह तो मैं भूल ही गया।'

फिर दूसरे दिन भेजा। फिर वही। फिर तीसरे दिन भेजा। विवेकानंद ने कहा, 'यह मुझसे न हो सकेगा। मैं जाता हूँ और जब खड़ा होता हूँ प्रतिमा के समक्ष, तो मेरे दुख-सुख का कोई सवाल ही नहीं रह जाता। मैं ही नहीं रह जाता तो दुख-सुख का सवाल कहाँ! पेट होगा भूखा, लेकिन मेरा शरीर से ही सम्बन्ध टूट जाता है। और उस महिमा के सामने क्या छोटी-छोटी बातें करनी हैं! चार दिन की जिंदगी है, भूखे भी गुजार देंगे। यह शिकायत भी कोई परमात्मा से करने की है! आप मुझे, परमहंस देव, अब दुबारा न भेजें। क्षमा करें, मै न जाऊँगा।'

रामकृष्ण हँसने लगे। उन्होंने कहा, 'यह तेरी परीक्षा थी। मैं देखता था कि तू माँगता है या नहीं। अगर माँगता तो मेरे लिए तू व्यर्थ हो गया था। क्योंकि प्रार्थना फिर हो ही नहीं सकती, जहाँ माँग है। तूने नहीं माँगा, बार-बार मैंने तुझे भेजा और तू हार के लौट आया — यह खबर है इस बात की कि तेरे भीतर प्रार्थना का खुलेगा आकाश। तेरे भीतर प्रार्थना का बीज टूटेगा, प्रार्थना का वृक्ष बनेगा। तेरे नीचे हजारो लोग छाया में बैठेंगे।'

माँग रहे हैं लोग — मदिरो में, मस्जिदों में, गुरुद्वारो में, शिवालयो में — प्रार्थना नही हो रही है।

मदिर-मस्जिद मे जाता ही गलत आदमी है। जिसे प्रार्थना करनी हो वह कही भी कर लेगा। जिसे प्रार्थना करने का ढग आ गया, सलीका आ गया, वह जहाँ है वही कर लेगा।

यह सारा ही ससार उसका है, उसका ही मदिर है, उसकी ही मस्जिद है।
हर चट्टान मे उसी का द्वार है!
और हर वृक्ष में उसी की खबर है!
कहाँ जाना है और?
'तेरे कूचे में रह कर मुझको मर मिटना गवारा है
मगर दैरो-हरम की खाक अब छानी नही जाती।'

भक्त तो कहता है, अब क्या मदिर और मस्जिद की खाक छानूं, तेरी गली मे रह के मर जाएँगे, बस पर्याप्त है।

और सभी तो गलियाँ उसकी हैं।

मैं यह नहीं कर रहा हूँ, मंदिर मत जाना। क्योंकि मदिर भी उसका है, चले गये तो कुछ हर्ज नहीं। लेकिन विशेष रूप से जाने की कोई जरूरत भी नहीं है। क्योंकि जहाँ तुम बैठे हो, वह जगह भी उसी की है। उससे खाली तो कुछ भी नही।

यह स्मरण आ जाए तो जब आँख बंद की, तभी मंदिर खुल गया;
जब हाथ जोड़े तभी मंदिर खुल गया,
जहाँ सिर झुकाया वहीं उसकी प्रतिमा स्थापित हो गयी!

झेन फकीर इक्कू एक मंदिर में ठहरा था। रात सर्द थी, बड़ी सर्द थी! तो बुद्ध की तीन प्रतिमाएँ थीं लकड़ी की, उसने एक उठा के जला ली। रात में ताप रहा था आँच, मंदिर का पुजारी जग गया आवाज सुन के, और आग और धुआँ देख के। वह भागा हुआ आया। उसने कहा, 'यह क्या किया?' देखा तो मूर्ति जला डाली है। तो वह तो विश्वास ही न कर सका। यह बौद्ध भिक्षु है और इसी भरोसे इसको ठहर जाने दिया मंदिर में और यह तो बड़ा नासमझ निकला, नास्तिक मालूम होता है। तो बहुत गुस्से में आ गया। उसने कहा, 'तूने बुद्ध की मूर्ति जला डाली है! भगवान की मूर्ति जला डाली है!'

तो इक्कू बैठा था, राख तो हो गयी थी, मूर्ति तो अब राख ही थी। उसने बड़ी एक लकड़ी उठा के कुरेदना शुरू किया राख को। उस पुजारी ने पूछा, 'अब यह क्या कर रहे हो?' तो उसने कहा कि मैं भगवान की अस्थियाँ खोजता हूँ। वह पुजारी हँसने लगा। उसने कहा, 'तुम बिलकुल ही पागल हो — लकड़ी की मूर्ति में कहीं अस्थियाँ हैं!'

तो उसने कहा, 'फिर ऐसा करो, अभी दो मूर्तियाँ और हैं, ले आओ। रात बहुत बाकी है और रात बड़ी सर्द है, और भीतर का भगवान बड़ी सर्दी अनुभव कर रहा है।'

पुजारी ने तो उसे निकाल बाहर किया क्योंकि कहीं यह और न जला दे। लेकिन उस सुबह पुजारी ने देखा कि बाहर वह सड़क के किनारे बैठा है और मील का जो पत्थर लगा है, उस पे उसने दो फूल चढ़ा दिये हैं और प्रार्थना में लीन है। तो वह गया और उसने कहा कि पागल हमने बहुत देखे हैं, लेकिन तुम भी गजब के पागल हो! रात मूर्ति जला दी भगवान की, अब मील के पत्थर की पूजा कर रहे हो?

उसने कहा, 'जहाँ सिर झुकाया वहीं मूर्ति स्थापित हो जाती है।'

मूर्ति मूर्ति में तो नहीं है, तुम्हारे सिर झुकाने में है। और जिस दिन तुम्हें ठीक-ठीक प्रार्थना की कला आ जाएगी, उस दिन तुम मंदिर-मस्जिद न खोजोगे — उस दिन तुम जहाँ होओगे, वहीं मंदिर-मस्जिद होगा, तुम्हारा मंदिर, तुम्हारी मस्जिद तुम्हारे चारों तरफ चलेगी, वह तुम्हारा प्रभामंडल हो जाएगी।

जहाँ-जहाँ भक्त पैर रखता है, वहीं-वहीं एक काबा और निर्मित हो जाता है। जहाँ भक्त बैठता है, वहाँ तीर्थ बन जाते हैं। तीर्थों में थोड़े ही भगवान मिलता है, जिसको भगवान मिल गया है, उसके चरण जहाँ पड़ जाते हैं वहीं तीर्थ बन जाते हैं। ऐसे ही पुराने तीर्थ भी बने हैं।

काबा के कारण काबा महत्त्वपूर्ण नहीं है, वह मुहम्मद के सिजदा के कारण महत्त्वपूर्ण है, अन्यथा पत्थर था। लेकिन किसी को सिर झुकाना आ गया, इस कारण महत्त्वपूर्ण है।

सारे तीर्थ इसीलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि कभी वहां कोई भक्त हुआ, कभी कोई वहाँ मिटा, कभी किसी ने अपने बूंद को वहाँ खोया और सागर को निमत्रण दिया। वे यादवाश्त हैं। वहाँ जाने से तुम्हें कुछ हो जाएगा, ऐसा नहीं—लेकिन, अगर तुम्हें कुछ हो जाए, तो तुम जहाँ हो वही तीर्थ बन जाएगा, ऐसा जरूर है।

पाँचवाँ प्रश्न : लोग पीते हैं लड़खड़ाते हैं
तेरी शरण में बहुत कुछ पाते हैं
एक हम हैं कि तेरी महफिल मे
प्यासे आते हैं, प्यासे ही जाते है।

फिर प्यास प्यास ही न होगी। फिर अभी प्यास खयाल है, वास्तविक नहीं। अन्यथा कौन रोकता है तुम्हे पीने से ?

अगर सरोवर के पास से तुम प्यासे ही लौट आओ, तो प्यास ही न होगी।

जब प्यास पकड़ती है किसी को तो गंदे डबरे से भी आदमी पी लेता है। प्यास होनी चाहिए। और जब प्यास नही होती है तो स्वच्छ मानसरोवर भी सामने हो तो भी क्या करोगे ?

प्यास की तलाश करो। खोजो। प्यास झूठी होगी।

बहुत लोगो को झूठी प्यास लग आती है। प्यास की चर्चा सुन-सुन के प्यास तो नहीं लगती, प्यास लगनी चाहिए, ऐसा लोभ भीतर समा जाता है।

तुमने परमात्मा की बहुत बातें सुनी तो लगता है, परमात्मा मिलना चाहिए। प्यास नही है भीतर, लोभ पैदा हुआ।

लोभ से काम न होगा।

तुम लोभ के कारण आते होओगे, तो खाली लौट जाओगे, क्योंकि यहाँ मैं किसी का भी लोभ पूरा करने को नही हूँ। यहाँ तो लोभ छोडना है, मिटाना है, पूरा नहीं करना है।

तुम्हारी परमात्मा की धारणा झूठी और उधार होगी। तुम्हें जीवन की परिपक्वता से परमात्मा की धारणा पैदा न हुई होगी। तुम अभी कच्चे फल हो।

या तो आओ तो प्यास ले के आओ, अन्यथा आओ ही मत। थोड़ी देर और रुको। कहीं ऐसा न हो कि मेरे शब्द तुम्हें और नया एक धोखा दे दें। प्यास का धोखा तो है ही, कही तृप्ति का धोखा और न पैदा हो जाए। वह बड़ा खतरा है। और जिसको प्यास का धोखा है, वह एक-न-एक दिन तृप्ति का धोखा भी कर लेता है।

जब तुम झूठी प्यास को मान लेते हो – किसको कहता हूं मैं झूठी प्यास ?

मेरे पास लोग आते हैं, इतने लोग आते हैं, उनमें से सौ में से निन्नानबे झूठी प्यास के होते हैं।

किसी की पत्नी मर गयी, परमात्मा की खोज पे निकल जाता है, जैसे पत्नी के मरने से परमात्मा की खोज का कोई सम्बंध हो ! दूसरी पत्नी खोजता, समझ मे आती बात । लेकिन सस्कार, समाज ! दूसरी पत्नी नही खोजता । खोज रहा है दूसरी ही पत्नी । झुठला रहा है । बिना खोजे नही रह सकता, एक खोज पैदा हो रही है भीतर । कामवासना प्रगाढ़ हो रही है, जग रही है – लेकिन सस्कार, समाज, प्रतिष्ठा, बच्चे, परिवार, नाम ! खोजना तो है पत्नी को, खोजता है परमात्मा को ! अब वह कभी भी परमात्मा को तो पा ही न सकेगा । बुनियाद में खोज ही गलत हो गयी ।

किसी का दिवाला निकल गया, परमात्मा की खोज पे चले ! दिवाले से परमात्मा का क्या लेना-देना है ? तुम परमात्मा को सात्वना समझ रहे हो ? दुख में हो, तो तुम परमात्मा को मरहम समझ रहे हो तो गलत जा रहे हो ।

परमात्मा की खोज तो सच्ची तभी होती है जब जीवन का अनुभव तुम्हे कह दे कि जीवन व्यर्थ है । जब पूरा जीवन व्यर्थ मालूम हो, जब इस जीवन की सारी सार्थकता खडित हो जाए, तुम अचानक जागो जैसे कोई स्वप्न से जाग गया और पाओ कि अब तक जो किया था, वह सब व्यर्थ हुआ, नये से शुरुआत करनी है, नया जन्म हो – तो प्यास पैदा होती है ।

ऐसा व्यक्ति जब भी आएगा तो तृप्त हो कर जाएगा ।

प्यास ही न लाये होओ तो कैसे तृप्त हो के जाओगे ? तृप्ति की पहली शर्त तो पूरी करो । तुम प्यास पूरी बताओ, तुम प्यास पूरी जगाओ, दूसरा काम मैं कर दूंगा । वह करना ही नही पडता, इसलिए तो इतनी सुविधा से जिम्मेवारी ले रहा हूं । तुम बस पहला पूरा कर दो, वह दूसरा अपने से पूरा हो जाता है, कुछ करने की जरूरत नही पडती । तुम्हारी प्यास में ही तुम्हारी तृप्ति का सागर छिपा है । इसलिए तो निश्चित भाव से कहता हूं कि दूसरा मैं कर दूंगा । इसकी गारंटी कर देता हूं, क्योकि उसमें कुछ करना ही नही है । मै रहूं न रहूं, कोई फर्क नहीं पडता, तुम जब भी प्यासे होओगे, तृप्ति हो जाएगी ।

<u>आखिरी प्रश्न</u> 'इश्क पर जोर नही ये वो आतिश ' गालिब '
कि लगाये न लगे और बुझाये न बुझे !
फिर देवर्षि नारद ने प्रेम पर यह शास्त्र क्यो लिखा ?

निश्चित ही प्रेम ऐसी आग है जो न तो तुम लगा सकते हो, न तुम बुझा

सकते हो। न लगे तो लगाने का कोई उपाय नहीं है। लग जाए तो बुझाने का कोई उपाय नहीं है।

स्वाभाविक प्रश्न उठता है। अगर प्रेम ऐसी आग है, अगर एक ऐसी घटना है जो अपने से घटती है और तुम्हारे किये कुछ भी नहीं हो सकता – तो फिर शास्त्र का प्रयोजन क्या? फिर भी प्रयोजन है।

ऐसा समझो कि तुम खिड़की-द्वार-दरवाजे बंद करके अपने अँधेरे घर में बैठे हो, द्वार पर खड़ा है सूरज, किरणें थाप दे रही हैं, लेकिन तुम अपने दरवाजे बंद किये बैठे हो, तो सूरज भीतर नहीं आ पाएगा। द्वार-दरवाजे खोल दो, सूरज अपने से ही भीतर आता है, उसे लाना नहीं पड़ता। तुम कोई पोटलियों में बाँध के सूरज को भीतर नहीं लाओगे। तुम कोई हाँक के सूरज को भीतर नहीं लाओगे। बुलाने की भी जरूरत न पड़ेगी, आमंत्रण भी न देना पड़ेगा। इधर तुमने द्वार खोला कि सूरज भीतर आया। और अगर सूरज बाहर न हो तो सिर्फ तुम्हारे द्वार खुलने से भीतर न आ जाएगा, सूरज होगा तो भीतर आएगा। सूरज न होगा तो तुम कुछ भी न कर सकोगे कि सूरज भीतर आ जाए। तो एक बात तो पक्की है कि सूरज होगा तो ही भीतर आएगा, न होगा तो तुम द्वार-दरवाजे कितने ही खोलो, इससे कुछ न होगा। लेकिन एक बात है, सूरज बाहर खड़ा हो और तुम द्वार न खोलो तो भीतर न आ सकेगा।

शास्त्र का इतना ही उपयोग है कि तुम्हें द्वार-दरवाजे खोलना सिखा दे।

प्रेम तो जब घटता है घटता है, तुम्हारे घटाये न घटेगा। और तुम्हारे घटाये घट जाए तो वह प्रेम दो कौड़ी का होगा, वह तुमसे नीचा होगा, तुमसे छोटा होगा। तुम्हारा ही कृत्य तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। कोई कृत्य कर्ता से बड़ा नहीं हो सकता। उस प्रेम की कोई कीमत नहीं है। वह तो अभिनय होगा ज्यादा-से-ज्यादा।

प्रेम तो अपने से घटेगा। वह घटना है, हैपनिंग। लेकिन अगर तुम द्वार-दरवाजे बंद किये बैठे हो तो वह द्वार पर ही खड़ा रहेगा, भीतर किरणें न आ सकेंगी।

शास्त्र का उपयोग है कि वह तुम्हें इतना ही बताये कि तुम बाधा न डालो। बाधा हटायी जा सकती है, बस फिर प्रेम तो मौजूद ही है।

भक्ति तो तुम्हें चारों तरफ से घेरे खड़ी है। झरना तो बहने को तत्पर है, एक पत्थर पड़ा है चट्टान की तरह, रुकावट डाल रहा है। चट्टान उठाने से झरना पैदा नहीं होता – झरना होगा तो चट्टान उठाने से बह उठेगा, जलधार आ जाएगी। लेकिन झरना भी हो और चट्टान पड़ी हो, तो जलधार उपलब्ध न होगी।

निषेधात्मक है शास्त्र का उपयोग, निगेटिव है। सभी शास्त्र निषेधात्मक हैं। वे इतना ही बताते हैं कि किस-किस तरह से तुम इंतजाम करो, ताकि बाधा न पड़े। जो होना है, वह तो अपने से होगा।

इसलिए तो भक्त कहते हैं, जब परमात्मा मिलता है तो प्रसाद से मिलता है, हमारे किये नही मिलता, लेकिन जब नही मिलता तो हमने कुछ किया है जिसके कारण नही मिलता।

इसको समझ लेना।

परमात्मा को खोते तुम हो, जब वह मिलता है तो उसके कारण मिलता है। पाप तुम करते हो, पुण्य वह करता है। भूल तुमसे होती है, सुधार उससे होता है। गलत तुम जाते हो, और जब तुम ठीक जाने लगते हो तब वह जाता है, तब तुम नहीं जाते।

यही मतलब है—

'इश्क पर जोर नही ये वो आतिश 'गालिब'
कि लगाये न लगे और बुझाये न बुझे!'

इश्क पर कोई जोर नही है, लेकिन चट्टानें-पत्थर इकट्ठा करना बडा आसान है। तुम अपने चारो तरफ अवरोध खडे कर सकते हो कि प्रेम आ ही न सके।

यही तुमने किया है। तुमने परमात्मा के लिए रध्र-रध्र भी बद कर दिये है, कही से उसकी एक किरण भी तुम्हारे भीतर प्रविष्ट न हो जाए! तुम सब तरफ से परमात्मा-प्रूफ हो!

उतना ही शास्त्र का प्रयोजन है कि तुम अपने दीवाल-दरवाजे हटा दो।

परमात्मा तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है, स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। गँवाया है तो तुमने अपनी होशियारी से—पाओगे, इस होशियारी को छोड देने से।

इसलिए सारा सूत्र नकारात्मक है।

किसी चिकित्सक से पूछो, 'चिकित्सा-शास्त्र क्या है?' तो वह कहेगा, 'बीमारी का इलाज।' उससे तुम पूछो तो हजारो बीमारियो की व्याख्या कर देगा, लेकिन अगर स्वास्थ्य की व्याख्या पूछो तो न कर पाएगा।

स्वास्थ्य की कोई व्याख्या ही नही है। स्वास्थ्य तो जब होता है तब होता है—अव्याख्य है।

फिर चिकित्सक क्या करता है? वह केवल बीमारी का अवरोध हटाता है।

तुम्हे टी बी पकड जाए तो चिकित्सक स्वास्थ्य थोडे ही लाता है—उसकी किसी दवा की गोली में स्वास्थ्य नही छिपा है—सिर्फ टी बी को अलग करता है। टी बी अलग हो जाए तो स्वास्थ्य तो अपने से घटता है।

स्वास्थ्य तो तुम्हारा स्वभाव है। इसलिए तो उसे हम 'स्वास्थ्य' कहते हैं। वह 'स्व' का भाग है। वह तुम्हारी स्वय की सत्ता है।

'स्व' में स्थित हो जाना स्वास्थ्य की परिभाषा है।

बीमारी तुम्हें अपने से बाहर खीच रही है कहीं। चिकित्सक तुम्हें बीमारी

से छुड़ा देता है, बस। स्वास्थ्य कोई चिकित्सक नहीं दे सकता – स्वास्थ्य तो तुम लेकर ही आये हो।

ठीक शास्त्र का यही उपयोग है कि बीमारी से छुड़ा दे।

प्रेम तो अपने से घटता है।

भक्ति तो अपने से आती है।

परमात्मा अपने से उतरता है।

लेकिन कोई अवरोध न रह जाए . ।

तुम एक बीज बोते हो बगीचे में बीज बोओ और उसके ऊपर एक पत्थर रख दो, बीज में सभावना थी, वह सभावना तुम नहीं ला सकते, वह सभावना थी ही, बीज फूटता अपने से, तुम जल दे सकते थे, सहारा बन सकते थे, तुम पत्थर हटा सकते थे, अवरोध अलग कर सकते थे बीज वृक्ष बनता, फूल आते, फल लगते, छाया होती, सौंदर्य का जन्म होता – वह सब अपने से होता।

तुम कोई बीज से वृक्ष को खीच नहीं सकते। तुम कोई जबरदस्ती फूलों को खिला नहीं सकते। तुम जबरदस्ती वृक्ष से फलो को निकाल नहीं सकते। लेकिन तुम चाहो तो रोक सकते हो।

मनुष्य की सामर्थ्य इतनी ही है कि वह जो हो सकता है, उसे रोक सकता है, जो होना चाहिए, उसे कर नहीं सकता।

मनुष्य भटक सकता है – यह उसकी सामर्थ्य है, बीमार हो सकता है – यह उसकी सामर्थ्य है, अधकार में रह सकता है – यह उसकी सामर्थ्य है। गलत होने की सामर्थ्य मनुष्य में है। ठीक बस वह गलत होने की सामर्थ्य को छोड़ दे कि ठीक अपने से हो जाता है।

ठीक होना प्रकृतिदत्त, स्वाभाविक है, गलत होना चेष्टा से है।

प्रयत्न से हम पाप करते हैं, जो निष्प्रयत्न होता है, वह पुण्य है।

प्रयास से हम ससार बनाते हैं, जो बिना प्रयास के, प्रसाद से मिलता है, वही परमात्मा है।

आज इतना ही।

सातवाँ प्रवचन

दिनांक १७ जनवरी, १९७६, श्री रजनीश आश्रम पूना

सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा ॥ २५ ॥
फलरूपत्वात् ॥ २६ ॥
ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च ॥ २७ ॥
तस्या ज्ञानमेव साधन मित्येके ॥ २८ ॥
अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये ॥ २९ ॥
स्वयं फलरूपतेति ब्रम्हकुमारा ॥ ३० ॥
राजगृह भोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात् ॥ ३१ ॥
न तेन राजपरितोष क्षुधाशान्तिर्वा ॥ ३२ ॥
तस्मात्सैव ग्राहया मुमुक्षुभि ॥ ३३ ॥

योग और भोग का संगीत है भक्ति

भक्ति का सार-सूत्र है प्रसाद।

ज्ञान, कर्म, योग, उन सबका सार-सूत्र है प्रयास।

ज्ञान, कर्म, योग मनुष्य की चेष्टा पर निर्भर है, भक्ति परमात्मा के प्रसाद पर। स्वाभावत भक्ति अतुलनीय है। न कर्म छू सकता उस ऊँचाई को, न ज्ञान, न योग।

मनुष्य का प्रयास ऊँचा भी जाए तो कितना? मनुष्य करेगा भी तो कितना? मनुष्य का किया हुआ मनुष्य से बड़ा नहीं हो सकता। मनुष्य जो भी करेगा, उस पर मनुष्य की छाप रहेगी। मनुष्य जो भी करेगा उस पर मनुष्य की सीमा का बंधन रहेगा।

भक्ति मनुष्य में भरोसा नहीं करती, भक्ति परमात्मा में भरोसा करती है।

एक बहुत अनूठा भक्त हुआ बायजीद बिस्तामी। कहा है, उसने तीस साल तक निरंतर परमात्मा को खोजने के बाद, एक दिन सोचा तो दिखायी पड़ा 'मेरे खोजे वह कैसे मिलेगा, जब तक वही मुझे न खोजता हो?' तब खोज छोड़ दी, और खोज छोड़ कर ही उसे पा लिया।

तीस साल या तीस जन्मों की खोज से भी उसे पाया नहीं जा सकता, क्योंकि खोजेंगे तो हम – अंधे, अंधकार में डूबे, पापग्रस्त, सीमा में बँधे! भूल-चूकों का ढेर हैं हम। हम ही तो खोजेंगे उसे! रोशनी कहाँ है हमारे पास खोजने को? हमारे पास हाथ कहाँ जो उसे टटोलें? कहाँ से लाएँ हम वह दिल जो उसे पहचाने?

खोजी एक दिन पाता है कि नहीं, मेरे खोजे तू न मिलेगा, जब तक कि तू ही मुझे न खोजता हो।

और बायजीद ने कहा है जब उसे पा लिया तो जाना कि यह भी मेरी भ्रांति थी कि मैं उसे खोज रहा था। वही मुझे खोज रहा था।

जब तक परमात्मा ने ही तुम्हें खोजना शुरू न कर दिया हो, तुम्हारे मन में उसे खोजने की बात ही न उठेगी। यह बात बड़ी विरोधाभासी लगेगी, लेकिन बड़ा गहन सत्य है।

परमात्मा को केवल वे ही लोग खोजने निकलते है जिनको परमात्मा ने खोजना शुरू कर दिया। जो उसके द्वारा चुन ही लिये गये है, वे ही केवल उसे चुनते है। जो किसी भाँति उनके हृदय में आ ही गया है, वे ही उसकी प्रार्थना में तत्पर होते हैं।

तुम्हारे भीतर से वही उसको खोजता है। सारा खेल उसका है। तुम जहाँ भी इस खेल मे कर्ता बन जाते हो, वही बाधा खडी हो जाती है, वहीं दरवाजे बद हो जाते हैं।

तुम खाली रहो, उसे ही खोजने दो तुम्हारे भीतर से, तो तत्क्षण इस क्षण भी उस महा क्रान्ति का आविर्भाव हो सकता है।

भक्ति को समझने मे, इस बात को जितना गहराई से समझ लो, उतना उपयोगी होगा भक्ति परमात्मा की खोज नही है, भक्ति परमात्मा के द्वारा मनुष्य की खोज है।

मनुष्य हार कर समर्पण कर देता है, थक कर समर्पण कर देता है, पराजित हो के झुक जाता है—कहता है 'अब तू ही उठा तो उठा! अब तू ही सम्हाल तो सम्हाल! अब अपने से सम्हाला नही जाता! जो मै कर सकता था, किया, जो मैं हो सकता था, हुआ — लेकिन मेरे किये कुछ भी नही हो पाता! मेरा किया सब अनकिया हो जाता है। जितना सम्हालता हूँ उतना ही गिरता हूँ। जितनी कोशिश करता हूँ कि ठीक राह पर आ जाऊँ, उतना ही भटकता हूँ। अब तू ही चला! जन्म तेरा है, जीवन तेरा है, मौत तेरी — प्रार्थना मेरी कैसे होगी?'

पहला सूत्र है आज 'वह भक्ति, वह प्रेमरूपा भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर है।'

श्रेष्ठता यही है कि वह अनत के द्वारा तुम्हारी खोज है।

गगा सागर की तरफ जाती है, तो ज्ञान, तो योग, तो कर्म जब सागर गगा की तरफ आता है, तो भक्ति।

भक्ति ऐसे है जैसे छोटा बच्चा पुकारता है, रोता है, और माँ दौडी चली आती है।

भक्ति बस तुम्हारा रुदन है!
तुम्हारे हृदय से उठी आह है!
भक्ति तुम्हारी जीवन की सारी खोज की व्यर्थता का निवेदन है।

भक्ति तुम्हारे आँसुओ की अभिव्यक्ति है। तुम कही जाते नही, तुम जहाँ हो वही ठिठक के रह जाते हो। एक सत्य तुम्हारी समझ मे आ जाता है कि तुम ही बस गलत हो, तुम गलत करते हो, ऐसा नही।

कर्मयोग कहता है तुम गलत करते हो, ठीक करो तो पहुँच जाओगे।

ज्ञानयोग कहता है तुम गलत जानते हो, ठीक जान लो, पहुँच जाओगे।

योगशास्त्र कहता है तुम्हें विधियाँ पता नही हैं, मार्ग पता नही है, विधियाँ सीख लो, मार्ग सीख लो, तकनीक की बात है, पहुँच जाओगे।

भक्ति कहती है तुम ही गलत हो। न ज्ञान से पहुँचोगे, न कर्म से पहुँचोगे, न योग से पहुँचोगे। तुम तुमसे छूट जाओ, तो पहुँचना हो जाएगा। तुम न बचो तो पहुँचना हो जाएगा।

पहले तुम अज्ञान मे थे, फिर तुम ज्ञान में भी रहोगे – फर्क बहुत न पडेगा। फर्क तो पडेगा, बहुत न पडेगा। फर्क ऐसा ही होगा कि जजीरे लोहे की थीं, उन पे तुम सोना मढ लोगे। कारागृह कुरूप था, दुर्गंधयुक्त था, तुम सुगधे छिडक लोगे, रग-रोगन कर लोगे, कारागृह को सजा लोगे।

अज्ञानी का अहकार अज्ञान से भरा होगा, ज्ञानी का अहकार ज्ञान से भर जाएगा – अहकार थोडे ही मिटेगा। और कई बार ऐसा हो जाता है कि अज्ञानी तो पहुँच जाते है, ज्ञानी भटक जाते है। क्योकि अज्ञानी कम-से-कम अपनी निरीहता को तो अनुभव कर सकता है। इस अनुभव मे कि मै अज्ञानी हूँ, अहकार के गिरने की सभावना है। लेकिन इस अनुभव मे कि मैने जान लिया, फिर तो अहकार को पत्थरो की बुनियाद मिल गयी।

अज्ञानी का अहकार रेत पर खडा हुआ भवन है, कभी भी गिर जाएगा, जिंदगी में बडी आँधियाँ है, कोई भी आँधी उखाड देगी। ज्ञानी का भवन चट्टानो पे खडा है, आँधियो से टक्कर लेगा, आँधियाँ आएँगी, हार कर चली जाएँगी, भवन अपनी जगह खडा रहेगा।

जिसने गलत किया है, जो पापी है, वह तो कभी रोता भी है अपने पाप के अधकार मे पडा हुआ, कभी कराहता भी है, कभी एक गहन पीडा उठती है मन में कि यह मै क्या कर रहा हूँ, कभी अपने किये पे पछताता भी है – लेकिन जिसने पुण्य किया है, जिसने भले कर्म किये हैं, मदिर बनवाये है, मस्जिदें बनवायी हैं, धर्मशालाएँ खडी की हैं, लोगो की सेवा की है, अस्पताल खोले है, वह तो कभी पछताता भी नही।

और तुम जब तक पछताओगे न, कैसे परमात्मा तुम मे उतर पाएगा?

जिसने पुण्य किया है, वह तो अकड के चलता है, वह तो परमात्मा पर दावेदार है, वह तो यह कहता है, 'अभी तक मिले क्यो नही? अब और क्या चाहते हो? सब तो किया।'

पुण्यात्मा के मन में शिकायत होगी, पश्चात्ताप नही। वह कहेगा, 'अन्याय हो रहा है। अब और क्या चाहिए? अब और क्या माँगते हो? यह क्या जबर-दस्ती है? सब तो किया, जो शास्त्रो ने कहा, जो नीतिविदो ने बताया। कोई

पाप नही किया, कोई चोरी नही की, कोई बेईमानी नही की, सब व्रतो का पालन किया – अब और क्या चाहिए ? '

ज्ञानी में तो अकड होगी। पुण्यात्मा में अकड होगी। अकड होगी कि सब किया, अब मिलना चाहिए। क्योकि ज्ञानी सोचता है, ज्ञान का फल है परमात्मा। पुण्यात्मा सोचता है, पुण्य का फल है परमात्मा, शुभ कर्म का फल है परमात्मा। योगी कहता है, ' कितने आसन किये, जीवन लगा दिया, प्राणायाम, आसन, प्रत्याहार, सब तरह से शरीर को शुद्ध किया ! पत्थर की मूर्ति की तरह बैठ कर कितने लम्बे दिनो तक ध्यान किया ! अब और क्या चाहिए ? '

जिसने कुछ किया है, वह हमेशा शिकायत से भरा होगा, पश्चाताप कहाँ ! पश्चाताप किस बात का !

जीसस जगह-जगह अपने भक्तो को कहते हैं ' रिपेंट ! पश्चाताप करो ! परमात्मा का राज्य बिलकुल करीब है। '

पश्चाताप करो !

लेकिन जिसने बुरा नही किया वह पश्चाताप कैसे करे ? जिसने योग साधा, वह पश्चाताप क्यो करें ? जिसने पुण्य किया, पश्चाताप की जगह कहाँ बची ? जब पुण्य ही कर लिया, तो पश्चाताप क्या अर्थ रखता है ? पश्चाताप तो पापी के लिए है, अज्ञानी के लिए है, अयोगी के लिए है, भोगी के लिए है, योगी के लिए तो नही है !

लेकिन जब तक तुम पश्चाताप न करो, परमात्मा नही। तो फिर पश्चाताप का क्या अर्थ हुआ ? पश्चाताप का एक ही अर्थ है कि अब तक मै कर्ता था, यही पश्चाताप है। इसका पश्चाताप करता हूँ कि अब तक मैने सोचा कि मै कर्ता हूँ। कर्ता तू है। यही बुनियादी भूल हो गयी। कभी सोचा, पाप किया, कभी सोचा, पुण्य किया – लेकिन कर्ता मैं ही रहा, अहकार मेरा ही सजा, सँवारा मैने अपने ही अहकार को, मदिर तेरे बनाये, लेकिन प्रतिमा मैने अपनी ही स्थापित की, झुका तेरी प्रतिमा के सामने, लेकिन वह प्रतिमा मेरे ही हाथ का निर्माण थी !

तुम फिर से गौर से मदिरो में जा के देखना, जिन प्रतिमाओ के सामने तुम झुके हो, वहाँ प्रतिमाएँ हैं या दर्पण हैं ? दर्पण मे अपनी ही तस्वीर देख के तुम झुकते हो।

इसलिए हिन्दू वहाँ झुकता है जहाँ हिन्दू की प्रतिमा है, क्योकि जब तक हिन्दू की तस्वीर न दिखायी पडे, वह झुकेगा नही। ईसाई वहाँ झुकता है जहाँ ईसाई की प्रतिमा है।

कथा है कि तुलसीदास कृष्ण के मदिर में गये तो झुके नही, क्योकि राम का भक्त और कृष्ण के मदिर मे झुक जाए ! कहा कि मै न झुकूँगा, जब तक धनुषबाण हाथ में ले के खडे न होओ।

तुम परमात्मा के सामने झुकते हो या अपनी धारणाओ के सामने ? इसका तो यह अर्थ हुआ कि पहले परमात्मा झुके, धनुष-बाण हाथ ले, तुम्हारी माने, फिर तुम झुकोगे ! तो तुम अपनी मान्यता के सामने झुकते हो।

तुम कभी किसी परमात्मा के सामने झुके हो ?

जब तक 'तुम' हो, झुक ही न सकोगे। तुम्हारा होना ही तो झुकना न होने देगा।

पश्चाताप किस बात का ?

पश्चाताप इस बात का कि अब तक मैने कहा, 'मैं हूँ', आज कहता हूँ, 'नही, मैं नही हूँ, तू ही है ! ' अब तक मैने प्रयास किये तुझे पाने के और मेरे प्रयासो से मै तुझे नही पा सका। मेरे प्रयासो से ज्ञान मिल गया होगा, पुण्य मिल गया होगा, चरित्र मिल गया होगा – लेकिन तू नही मिला।'

प्रयास से मिलता ही नही। प्रयास से मिल जाए, वह भी कोई परमात्मा है ? क्योंकि तुम्हारे प्रयास से जो मिलेगा, वह तुम्हारे प्रयास से छोटा होगा। प्रसाद से मिलता है !

इसलिए नारद अनूठी बात कहते हैं, बडी गहरी बात कहते हैं 'कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर है वह प्रेमरूपा भक्ति।'

कोई भक्ति का मुकाबला नही है। भक्ति कोई करने की बात नही है। शब्द से भ्रांति होती है, 'भक्ति' से भी लगता है कि कुछ करना पडेगा, भक्ति मे क्रिया है, कुछ करना, जैसे योग मे कुछ करना, कर्म मे कुछ करना, ज्ञान मे कुछ करना, भक्ति में भी कुछ करना पडेगा। वही भूल हो जाती है।

भक्ति तो इस बात का अनुभव है कि मेरे किये कुछ होता ही नही। भक्ति तो अपने कृत्य की व्यर्थता का बोध है, पश्चाताप है। उस पश्चाताप में ही तुम गिर जाते हो, झुक जाते हो। ध्यान रखना, मै नही कहता हूँ कि तुम झुकते हो – झुक जाते हो।

क्या करोगे ? कैसे खडे रहोगे ? जब सब किया अनकिया सिद्ध होता है, जब अपने पैर जहाँ भी ले जाते है, वही ससार मिलता है, और जब अपनी आँख जो भी दिखाती है वही पदार्थ सिद्ध होता है, और जिसकी भी तुम प्रार्थना करते हो वही प्रार्थना अखीर में कामना सिद्ध होती है, वासना सिद्ध होती है, तो फिर क्या करोगे ? ठहर जाते हो ! खडे होने की भी जगह नही रह जाती। खडे होने का बल भी नही रह जाता। गिर जाते हो !

अगर अपनी तरफ से गिरे, तो यह भी योग हुआ। अगर पाया कि गिर रहे हो, जैसे गिरना घट रहा है, झुकना घट रहा है, तो भक्ति हुई।

भाषा के साथ अडचन है, भक्ति भी कर्म बन जाती है।

भक्ति कर्म नही है। इसलिए भक्ति की परम श्रेष्ठता है।

'क्योकि भक्ति फलरूपा है।'

इसे समझे। यह बडा वैज्ञानिक सूत्र है।

पानी को भाप बनाना हो तो आँच पर रखो। कारण मौजूद कर दो, कार्य घटेगा। जब सौ डिग्री गरमी हो जाएगी, पानी भाप बनने लगेगा। पानी यह नही कह सकता कि आज भाप बनने की मशा नही है, कि आज थोडी सर्दी ज्यादा है आज नही बनते, या आज मन उदास है या कुछ . । पानी कुछ कर नही सकता।

कारण उपस्थित हो गया तो कार्य होगा।

बीज बो दो, अकुर निकलेगे।

ज्ञान, कर्म और योग की मान्यता यह है कि परमात्मा भी ऐसे ही मिलता है, कारण मौजूद कर दो, कार्य हो के रहेगा।

योगी कहता है, इतने नियम पालन कर लो, यह अष्टाग योग है, ये आठ अग है, ये पूरे कर लो – परमात्मा को मिलना ही पडेगा, जैसे सौ डिग्री पे पानी गरम होता है, ऐसे अष्टाग योग पूरा होने पर परमात्मा मिलता है।

कर्मयोगी कहता है, इतने-इतने पुण्य कर लो, पाँच महाव्रत हैं, इनका पालन कर लो अहिसा है, अचौर्य है, अस्तेय है, अपरिग्रह है, सत्य है, इनका पालन कर लो! अगर पालन पूरा हो गया तो परमात्मा वैसे ही आ जाएगा जैसे बीज बोया, पानी डाला, धूप-रोशनी दी, अकुर निकल आया। तो परमात्मा फल है और तुम्हारा कृत्य –ज्ञान, कर्म, योग –बीज है। तुम जो करते हो वह कारण है और परमात्मा कार्य है।

भक्त ऐसा नही देखते। भक्त कहते है, तुम कुछ भी करो, परमात्मा परम स्वतत्रता है, तुम्हारे कृत्य से बँधा हुआ नही है। तुम्हारे अष्टाग योग के पूरे हो जाने से नही आ जाएगा। और अगर तुमने अष्टाग योग पर ही भरोसा किया तो तुम अकडे बैठे रह जाओगे, परमात्मा से कोई सम्बध न हो पाएगा।

परमात्मा कार्य-कारण जगत का हिस्सा नही है।

परमात्मा का अर्थ है 'समग्र'। और सब चीजो के कारण है, 'समग्र' का कोई कारण नही हो सकता। और सब चीजो के आधार है, समग्र का कोई आधार नही है, समग्र निराधार है।

बीज से वृक्ष होता है। वृक्ष मे फिर बीज लग जाते है। फिर बीजो मे वृक्ष आ जाते है। सारा जगत शृखला है – कार्य-कारण, कारण-कार्य – बँधा हुआ चलता जाता है। इस सारी शृखला का कोई कारण नही है। इस सारी शृखला के समस्त रूप का नाम परमात्मा है।

तुम पृथ्वी पे टिके हो, पृथ्वी सूरज के आकर्षण पे टिकी है, सूरज किसी

और महासूर्य के आकर्षण पे टिका होगा – लेकिन सारा अस्तित्व कहाँ टिका है ? सारा अस्तित्व कही भी नहीं टिक सकता, क्योकि इसके बाहर कुछ भी नही है जिस पे टिक जाए। तो सारा अस्तित्व तो निराधार है।

तुम एक माँ और पिता के बीजो के मिलने से पैदा हुए। वे भी किन्हीं के बीजो के मिलने से पैदा हुए। और उनके माता-पिता भी इसी तरह । लेकिन परमात्मा का कोई पिता नही है। 'समग्र' के बाहर कुछ भी नही है, सब कुछ उसके भीतर है।

तो भक्त कहते हैं, परमात्मा को पाने की यह बात ठीक नहीं। यह तुम ससार को पाने के ढग का ही उपाय परमात्मा के लिए कर रहे हो।

तो भक्ति बीजरूपा नही है, फलरूपा है। भक्ति कोई कारण नही है, कार्य है। भक्ति प्रारम्भ नही है, अत है – फलरूपा है। तुम्हे कुछ करना नही है – फल तुम्हे मिलता है। तुम्हारे करने से फल पैदा नही होता – प्रसादरूप होता है। (तुम जब तैयार होते हो, अभीप्सा से भरे होते हो, धैर्य से तुम्हारे प्राण आकाश की तरफ देखते होते है, और तुम्हारी असहाय अवस्था पूर्ण हो गयी होती है, तुम बिलकुल खाली होते हो – तुम्हारे खालीपन मे भक्ति उतरती है, भगवान उतरता है।)

ध्यान रखना भक्त यह कहता है कि वह तुम्हारे किसी कारण से नही उतरता, वह अपनी अनुकपा से उतरता है, वह अपने प्रसाद से उतरता है, वह उतरना चाहता था, इसलिए उतरता है। इसलिए भक्त शिकायत नही कर सकता। न उतरे तो भक्त यह नही कह सकता कि 'मैंने सारी व्यवस्था पूरी कर दी है, तुम आये क्यो नही ?' दावा नही कर सकता। कभी ऐसी घडी भक्त के जीवन मे नही आती जब वह यह कह दे कि मेरी कोई शिकायत है। शिकायत का तो अर्थ यह हुआ कि 'मैंने सौ डिग्री पानी गरम कर दिया है, पानी भाप क्यो नही बन रहा है ? मैंने अपनी तरफ से सब पूरा कर दिया, अब अन्याय हो रहा है !'

इसे थोडा खयाल मे लेना।

जिन लोगो ने कर्म, ज्ञान और योग पर बहुत जोर दिया, धीरे-धीरे उन्होने परमात्मा की बात ही छोड़ दी, क्योकि कोई जरूरत ही नही रह जाती। महावीर कर्म का भरोसा करते है, तो परमात्मा को इनकार कर दिया 'कोई जरूरत नही है, क्या जरूरत है ? सौ डिग्री पे जब पानी गरम होता है तो पानी भाप बनता है, इसमे किसी परमात्मा को बीच मे लेने की जरूरत क्या है ? प्रसाद का सवाल कहाँ है ? तुम कार्य पूरा कर दो, परिणाम आ जाएगा। तुम बीज बो दो, फल लग जाएँगे। परमात्मा को बीच मे लेने की जगह कहाँ है ? किसी परमात्मा की कोई जरूरत नही है।'

पतजलि ने परमात्मा को भी एक साधन बना लिया, साध्य नही।

ज्ञानियों ने, योगियों ने, पुण्यकर्ताओं ने परमात्मा को छोड़ ही दिया, जरूरत ही न मालूम पड़ी। वह परिकल्पना व्यर्थ है। उसके बिना ही हो जाता है। हम से ही हो जाता है, उसकी कोई जरूरत नहीं है।

भक्ति का शास्त्र कहता है हम से कुछ भी नहीं होता, हम ही बाधा हैं। जहाँ हम खो जाते हैं, वहीं होना शुरू होता है।

'वह भक्ति फलरूपा है।'

बीज नहीं है उसका कोई जो तुम बो दो। कोई कारण नहीं है जो तुम तैयार कर लो, प्रयास कर लो, प्रयत्न कर लो। नहीं, तुम्हारे हाथ में कोई उपाय नहीं है कि तुम उसे खोज लो। (तुम्हारा निरुपाय हो जाना ही, तुम्हारा असहाय हो जाना ही, तुम्हारा पछताना, तुम्हारा छाती पीट के रोना, तुम्हारा आँसुओं में जार-जार बह जाना, तुम्हें एक प्रतीति हो जाए कि मैं ही अब तक उपद्रव का कारण था, मेरे प्रयास ही अब तक उपद्रव के कारण थे – फिर फल, फल ही उपलब्ध होता है।)

ज्ञान साधन है, भक्ति साध्य है।

ज्ञान मार्ग है, भक्ति मंजिल है।

ज्ञानी को चलना पड़ता है, योगी को चलना पड़ता है, भक्त सिर्फ पहुँचता है, चलता नहीं।

भक्त सबसे बड़ा चमत्कार है।

इसलिए अगर महावीर को समझना हो, कोई अड़चन नहीं है। महावीर को समझना हो तो वैज्ञानिक व्यवस्था है। पतंजलि को समझना हो तो कोई दुर्बोध बात नहीं है, दुर्गम बात नहीं है, सीधा-साधा गणित है। लेकिन मीरा बेबूझ है। चैतन्य को पकड़ पाना सम्भव नहीं है। भक्त की कोई कथा साफ नहीं हो पाती।

तुम योगी से पूछ सकते हो, 'तुमने क्या किया? कैसे परमात्मा पाया?' तो वह अपनी कथा बता सकता है 'यह-यह मैंने किया। इतने उपवास किये। इतना प्राणायाम किया। इस तरह अष्टांग योग साधे। इस तरह समाधि तक पहुँचा।' एक-एक कदम साफ है। सीढ़ी-दर-सीढ़ी उसकी यात्रा है। उसके रास्ते पर मील के पत्थर लगे हैं। रास्ता है। वह कुछ कह सकता है।

मीरा से पूछो, 'कैसे पाया,' मीरा ठिठकी खड़ी रह जाएगी। वह कहेगी, 'मैंने पाया, यह बात ही ठीक नहीं है – मिला।'

पाने वाले की कोई कथा नहीं है। पाने वाला शून्य है। सारी कथा परमात्मा की है। सब कथा भगवत्कथा है। भक्त की कोई कथा नहीं है।

भक्त बेबूझ है।

अगर मीरा और महावीर सामने खड़े हों तो महावीर से तो तुम राजी हो

जाओगे – तुम कहोगे, 'इन्होंने इतना किया, फिर आया। समझ में आता है। मीरा ने क्या किया? कौन-सी साधना की मीरा ने? कौन-से साधन किये? कौन सा योग किया? कुछ भी तो नहीं किया।'

अचानक पुच्छल तारे की तरह प्रगट होती है! अनायास! अकारण! फलरूपा है। एक दिन तक पता नहीं था, एक दिन अचानक उसका नृत्य शुरू हो जाता है, उसके घूंघर बज उठते हैं। एक क्षण पहले तक किसी को खबर न थी, घर के लोगों को भी खबर न थी, पति को भी खबर न थी।

इसलिए भक्त पागल लगता है, क्योंकि गणित में बैठता नहीं।

अनायास है, अकारण है! एक दिन अचानक मीरा नाच उठी! किसी ने न जाना, कैसे यह नाच पैदा हुआ! इस नाच के पीछे कोई कार्य-कारण की शृंखला नहीं है। यह पुच्छल तारे की तरह प्रगट होता है। इसकी कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती और अतीत में लौट कर इसका कोई निर्वचन नहीं हो सकता – समय की धारा में, समय के बाहर से कोई उतरता है! फलरूपा है!

तुम वृक्ष के नीचे विश्राम करते थे और फल गिर गया तुम्हारे ऊपर, न तुमने बीज बोये थे, न तुमने वृक्ष सँभाला था, न तुम्हें पता है कि वृक्ष है – तुम्हें बस फल मिल गया!

एक दिन मीरा नाच उठती है! इस नाच के आगे-पीछे कोई हिसाब नहीं है। इसलिए मीरा को समझना बिलकुल ही कठिन हो जाता है। समझ के लिए कार्य-कारण की शृंखला का पता होना चाहिए।

महावीर ने बारह वर्ष तपश्चर्या की। बुद्ध ने छह वर्ष तपश्चर्या की और जन्मों-जन्मों तक खोज की। मीरा ने क्या किया?

नारद का यह सूत्र बड़ा अद्‌भुत है 'भक्ति फलरूपा है।'

साधन नहीं है भक्ति, साध्य है। यहाँ मार्ग है ही नहीं, बस मंजिल है। आँख खुलने की बात है।

'लायी हयात आये, कजा ले चली चले
अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले।'

जिसको यह समझ में आ गया कि लाया परमात्मा, आये, ले चला, चले, श्वास चलायी, चली, श्वास रोकी, रुक गयी।

'न अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले!'

जिसने ऐसा अनुभव कर लिया .. और तुम जरा गौर से देखो तो अनुभव करने में देर न लगेगी। किसी ने पूछा था तुमसे जन्म के पहले कि जन्म लेना चाहते हो?

'लायी हयात आये .!'

किसी ने पूछा था, कहाँ जन्म लेना चाहते हो ? स्त्री होना चाहते हो, पुरुष ? गोरे होना चाहते हो, काले ? हिन्दू होना चाहते हो, ईसाई ? किसी ने तो न पूछा था। अकारण हो तुम। तुम्हारे होने के पीछे तुम्हारी मशा तो नहीं है, तुम्हारी आकांक्षा तो नहीं है। श्वास चलती है जब तक चलती है, जिस दिन नही चलेगी, क्या करोगे तुम ? गयी श्वास बाहर और न लौटी तो क्या करोगे तुम ? गयी तो गयी !

'लायी हयात आये, कजा ले चली चले
अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले।'

ऐसा जिस दिन तुम्हें जीवन का सार दिखायी पड जाएगा, उस दिन भक्ति की शुरुआत हुई, उस दिन तुम करीब आने लगे प्रसाद के। और जिस दिन ऐसा अनुभव तुम्हें हो जाएगा कि तुम नही हो, कोई और हाथ तुम्हे लाया, कोई और हाथ ने तुम्हे चलाया, कोई और ही सारी कथा को सम्हाले हुए है – उस दिन क्या बोझ, कैसी चिता !

'मुझे सहल हो गयी मजिलें वो हवा के रुख भी बदल गये
तेरा हाथ हाथ मे आ गया कि चिराग राह मे जल गये।'

तुम जब तक हो तब तक अँधेरा है, तुम मिटे कि चिराग जले ! तुमने जिस दिन वह भ्रांति छोडी कि मै चल रहा हूँ, उसी दिन तुम पाओगे उसका हाथ सदा से तुम्हे चला रहा है, उसका हाथ तुम्हारे हाथ मे है।

परमात्मा को हमने कभी खोया थोडे ही है, खो देते तो फिर मिलने का कोई उपाय नही था। जो खो जाए वह परमात्मा नही है। जिसे हम खो सकें वह हमारा स्वभाव नही है। उसे हमने कभी खोया नही है, विस्मरण किया है, भूल गये हैं घडी-भर को, झपकी लग गयी है, याद उतर गयी है। हाथ तो अब भी उसका हमारे हाथ में है। कुछ करना नही है उस हाथ को पाने को, सिर्फ अपनी भ्रांति छोडनी है।

भक्ति फलरूपा है।

ज्ञान कहता है कुछ करना है, अज्ञान को मिटाना है, ज्ञान को लाना है। बडा उपक्रम है।

इसलिए ज्ञानी मे अकड होती है, उसने किया है इतना, अकड स्वाभाविक है। वह कहता है, 'तुमने क्या किया ? हम वर्षों ज्ञान इकट्ठा किये।'

योगी वर्षों तक साधता है, इसलिए योगी की अकड स्वाभाविक है। पुण्यात्मा महात्मा हो जाता है · कितना करता है ! कितनी सेवा ! कितने पुण्यकर्म ! अकड स्वाभाविक है। भक्त में अकड नही हो सकती, क्योंकि भक्त की बुनियाद ही यही है कि हमने किया ही नहीं कुछ, तूने जो करवाया वही हुआ !

भक्त की बड़ी अनूठी दुनिया है! अलग ही उसका लोक है—गणित का नहीं, विज्ञान का नहीं, तर्क का नहीं, प्रेम का, प्रार्थना का, परमात्मा का। वहाँ सभी कुछ उलटा है। वहाँ बीज के पहले फल है। वहाँ मार्ग के पहले मंजिल है। वहाँ तुम्हारे करने से कुछ भी नहीं होता—तुम्हारे न करने से सब हो जाता है।

इसलिए जिनको भी अकड़ना हो, भक्ति उनके लिए नहीं है, जिनको पिघलना हो, उनके लिए है। अकड़ना हो, योग खोजो, त्याग खोजो, व्रत-नियम खोजो। अकड़ना हो और दिखाना हो दुनिया को कि मैं कुछ हूँ तो भक्ति की राह को भूल ही जाओ, वह तुम्हारे लिए नहीं है। अभी देर है तुम्हें उस पर आने को। लेकिन अगर यह समझ में आना शुरू हो गया कि अपने किये कुछ भी न हुआ, चले बहुत, पहुँचे कहीं न, दौड़े बहुत, जब आँख खोली तो पाया वहीं खड़े हैं—जब तुम्हें ऐसी अनुभूति होने लगे, तब तुम भक्ति के लिए परिपक्व हुए।

'क्योंकि ईश्वर को भी अभिमान से द्वेष है और दैन्य से प्रियभाव है।'

यह सूत्र बड़ा कठिन है। इसे तुम अपनी तरह से लोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे। ईश्वर को भी अभिमान से द्वेषभाव है! अगर तुम महावीर से पूछोगे तो वे कहेंगे कि 'ऐसा ईश्वर ही नहीं, यह ईश्वर कैसा जिसको द्वेषभाव है? यह तो हो ही नहीं सकता। ईश्वर और द्वेषभाव!' महावीर की परिभाषा में तो जब द्वेष मिट जाता है, तभी कोई ईश्वरत्व को उपलब्ध होता है।

'और दैन्य से प्रियभाव है।'

तो इसका तो अर्थ हुआ कि उसके भी पक्षपात हैं।

नहीं, अगर ऐसा देखा तो सूत्र से तुम चूक गये। सूत्र का मतलब कुछ और है। सूत्र का सम्बंध ईश्वर से नहीं है—सूत्र का सम्बंध तुमसे है।

ऐसा समझो कि कोई कहे कि जब वर्षा होती है तो वर्षा को गड्ढों से लगाव है, पहाड़ों और शिखरों से द्वेषभाव है, तो मतलब क्या होगा? मतलब इतना ही होगा कि जब वर्षा होती है तो गड्ढों में भरती है, पहाड़ खाली रह जाते हैं, क्योंकि पहाड़ पहले से ही भरे हैं, वहाँ जगह ही नहीं है। और जगह चाहिए। गड्ढे भर जाते हैं, झीलें भर जाती हैं। गिरती है वर्षा पहाड़ों पर, उतर आता है पानी गड्ढों में, झीलों में।

इस सूत्र का इतना ही अर्थ है कि अगर तुम अभिमान से भरे हो, तो परमात्मा तुम में न उतर सकेगा, चाहे लाख चेष्टा करे उतरने की। लाख चेष्टा कर रहा है, लेकिन तुम पहले से ही भरे हो, जगह नहीं है। रिक्त स्थान चाहिए थोड़ा। तुम्हारे अहंकार के कारण तुम्हारे सिंहासन पर जगह नहीं है, तुम ही बैठे हो। तुम उतरो सिंहासन से, तो परमात्मा बैठ सके।

'और दैन्य से प्रियभाव है'—इसका कुल अर्थ इतना ही है कि तुम झील-

गड्ढे की तरह हो जाओ, ताकि परमात्मा तुम्हे भर दे, तुम खाली हो जाओ ताकि तुम भर दिये जाओ।

'अब तू भी करम की इतिहा कर देना
मैंने भी खता की इतिहा कर दी थी।'

भक्त कहता है कि मैंने भी पाप करने में कोई कमी न की थी, मैंने भी भूल करने मे कोई कमी न की थी, 'अब तू करम की इन्तिहा कर देना'—अब तू भी करुणा करने मे कुछ कजूसी मत करना, जैसे मैंने पाप करने में कोई कजूसी न की थी।

'अब तू भी करम की इतिहा कर देना
मैंने भी खता की इतिहा कर दी थी।'

वह यह कहता है कि मैंने पाप-ही-पाप किये हैं, और पूरी तरह किये है, कोई कजूसी नही की, आखिरी तक किये हैं, इतिहा कर दी थी, पूर्णता कर दी थी—अब ध्यान रखना, अब तू भी अपनी अनुकपा की, अपने प्रसाद की पूर्णता कर देना! तेरी करुणा मे अब तू कमी मत करना, जैसे हमने पाप मे कमी न की थी, जैसे हमने अहकार को भरने मे सारी चेष्टाएँ की थी!

मगर जो यह कह रहा है, वह गड्ढा हो गया। क्योंकि पाप की घोषणा तुम्हें गड्ढा बना देगी। पुण्य की घोषणा तुम्हे अहकार से भरती है।

भक्त कहता है, 'मै पापी हूँ! मैं पात्र नही हूँ!'

ज्ञानी कहता है, 'मै पात्र हूँ, तैयार हूँ, देर क्यो हो रही है?'

योगी कहता है, 'मै शुद्ध हूँ, बिलकुल तैयार हूँ, अब तेरी तरफ से देर हो रही है।'

भक्त कहता है, 'मै बिलकुल तैयार नही हूँ। इसलिए मेरी तरफ से तो कोई माँग हो नहीं सकती। इतना ही कह सकता हूँ कि पाप करने मे मैंने कोई कमी न की थी! मुझसे बुरा आदमी खोजे न मिलेगा। जैसे मैंने पाप करने मे कमी न की—क्योंकि पाप ही मैं कर सकता था, और मै कर क्या सकता था—अब तू करुणा मे कमी मत करना, क्योंकि तू करुणा ही कर सकता है, और तू कर क्या सकेगा!'

भक्त अपने को अपात्र घोषित करता है—यही उसकी पात्रता है, असफल घोषित करता है—यही उसकी सफलता है, हारा हुआ घोषित करता है—यही उसकी विजय है।

भक्त कहे, ऐसा भी जरूरी नही है।

बायजीद प्रार्थना नही करता था जा के मस्जिद में। जीवन तो उसका अनूठा था, परमात्मा के प्रेम में पगा था! किसी ने पूछा कि प्रार्थना करने मस्जिद क्यो

नहीं जाते, तो वह रोने लगा। और उसने कहा, 'एक बार मैं एक शहर से गुज-रता था और एक सम्राट के द्वार पर मैंने एक भिखारी को खड़े देखा। सम्राट द्वार से बाहर आ रहा था, ठिठका, और उसने भिखारी से पूछा, 'क्या चाहते हो, बोलते क्यों नहीं?' उस भिखारी ने कहा, 'अगर मुझे देख कर तुम्हें दया नहीं आती तो मेरी बात सुन के भी क्या फर्क पड़ेगा!'

उसके फटे-पुराने कपड़े हैं, चीथड़े की तरह लटके हैं। शरीर ढका नहीं है उन कपड़ों से। उससे तो नगा भी होता तो भी ज्यादा ढका होता। पेट सिकुड़ के पीठ से लग गया है, हड्डियाँ निकल आयी है। आँखें धस गयी हैं।

तो बायजीद ने कहा, उसी दिन से मैंने प्रार्थना करनी बद कर दी। क्या कहना है उससे? उस फकीर ने कहा, उस भिखमगे ने कहा, अगर मुझे देख के तुझे दया नही आती तो बात खत्म हो गयी, अब कहना क्या है और! मेरी तरफ देख!'

बायजीद ने कहा, 'तब मे मैंने प्रार्थना बद कर दी। वह देख ही रहा हे, अब कहना क्या है उससे? अब रोना क्या है?'

'लबे-इज़हार की ज़रूरत क्या
आप हूँ अपने दर्द की फरियाद।'

ज़रूरी नही है कि भक्त प्रार्थना करे। भक्त की तो एक भावदशा है 'आप हूँ अपनी फरियाद।' उसके तो होने में ही उसकी दीनता समायी है।

नारद अनूठी बात कहते है 'ईश्वर को अभिमान से द्वेष और दैन्य से प्रियभाव है।'

नहीं, ईश्वर को क्या द्वेष होगा और क्या प्रियभाव होगा! लेकिन भक्त की तरफ जब तक अहकार है तब तक परमात्मा प्रवेश नही कर सकता। भक्त की तरफ जब दैन्यभाव आ जाता है – 'आप हूँ अपनी फरियाद' – जब सब तरफ हारा हुआ भक्त खड़ा हो जाता है, जब उसके पूरे जीवन की एक ही भावदशा रह जाती है कि मैं पराजित हूँ, दीन हूँ, पतित हूँ, पापी हूँ, अपात्र हूँ, मेरे पास ऐसा कुछ भी नही है जिसके कारण तेरी माँग करूँ, मेरे पास ऐसा कुछ भी नही है जिसके कारण तेरे लिए दावेदार बनूँ, मेरे पास ऐसा कुछ भी नही है कि तेरे लिए शिका-यत करूँ – उसी क्षण, इस दैन्यभाव मे परमात्मा उतर आता है।

जीसस का वचन है कि जो आत्मा से दरिद्र हैं, 'पुअर इन स्पिरिट', उन्ही को परमात्मा का मिलन होता है।

सोचें, ध्यान करें इस पर आत्मा से दरिद्र, 'पुअर इन स्पिरिट!' शरीर से दरिद्र होना बहुत आसान है। तुम घर छोड़ दो, मकान छोड़ दो, परिवार छोड़ दो, वस्त्र त्याग दो, नग्न खड़े हो जाओ, लेकिन जितना तुम बाहर छोड़ते जाओगे,

उतना ही भीतर अकड बडी होती जाएगी । तो बाहर से तो तुम दरिद्र हो जाओगे, भीतर बडी अकड हो जाएगी ।

जैन मुनियो को देखो ! जैन मुनि किसी को हाथ जोड़ के नमस्कार नही कर सकता, यह बात उसके नियम के विपरीत है । वह सिर्फ आशीर्वाद दे सकता है, नमस्कार नही कर सकता । क्यो ? क्योकि वह त्यागी है । त्यागी और नमस्कार करे, भोगियो को ! असम्भव है ! तो यह आत्मा की दरिद्रता न हुई । ऊपर से भला इसने दरिद्र का वेश पहन लिया हो, दो जोडी कपडे रखता हो, कुछ और इसके पास न हो, भिक्षा माँग के जीता हो — लेकिन इसकी अकड तो देखो ! यह भिखारी नही है । इसके भिखमगेपन में बडा अहकार है ' मैंने इतना त्यागा है ! '

तो अगर तुम जैन मुनि को नमस्कार करो तो वह आशीर्वाद दे देता है, हाथ नही जोड सकता तुम्हें ।

जीसस ने कहा आत्मा की दरिद्रता !

तो यह तो बाहर का धन छोड के भीतर का धन पकड लिया, यह तो बाहर का अहकार छोड के भीतर का अहकार पकड लिया, यह तो पाना न हुआ, खोना हो गया उलटा, यह तो पहुँचना न हुआ, मजिल से और दूरी हो गयी ।

ध्यान रखना, पहले तुम बाहर की दुनिया मे धनी होने की कोशिश करते हो, जब वहाँ हार जाते हो तो तुम भीतर की दुनिया में धनी होने की कोशिश करने लगते हो । तुम्हारा योग, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारा कर्म, फिर तुम्हें भीतर धनी बनाने लगते है । तो तुम चूकते ही चले जाते हो ।

बाहर का धन इतना खतरनाक है तो भीतर का धन तो और भी खतरनाक होगा । बाहर की अकड इतनी बुरी है तो भीतर की अकड तो और भी बुरी होगी ।

परमात्मा तुम्हारे परम दैन्यभाव में उतरता है ।

इस सूत्र को गलत मत समझ लेना । परमात्मा को तुम्हारे दैन्यभाव से प्रेम नही है, लेकिन तुम्हारे दैन्यभाव में ही उतरना हो सकता है । जब तुम भरे ही हुए हो तो उतरने का कोई सवाल नही है । जब तुम ही अकडे हुए हो और तुम सोचते हो, तुम ही सम्हाले हुए हो सब, तुम ही कर रहे हो और तुमने उसे इनकार ही कर दिया — तुमने उसके लिए द्वार ही बद कर लिये ।

" जोश ' विसाते-शौक में मर्ग है अस्ल जिदगी
बाजिए इश्क जीत ले बाजिए उम्र हार कर । '

एक ऐसा भी पडाव आता है, एक ऐसा दौर है, जहाँ मौत जिदगी है और जहाँ हार जीतना है, जहाँ हमारे पुराने विचार के ढाँचे बिलकुल ही उलटे हो जाते हैं ।

' बाजिए इश्क जीत ले ' — अगर प्रेम को जीतना हो, ' बाजिए उम्र हार

कर' – उम्र की, जीवन की, जिंदगी की बाजी को हार कर प्रेम की बाजी जीती जाती है।

'दिल है तो उसी का है जिगर है, तो उसी का
अपने को रहे-इश्क में बरबाद जो कर दे।'

वह जो प्रेम की राह है, वहाँ जो अपने को बर्बाद कर दे, बस उसी के पास दिल है, उसी के पास जिगर है। उसी के पास आत्मा है, जो अपने को बर्बाद कर दे।

तो तुम कही सन्यस्त मत हो जाना गणित के हिसाब से। तुम कही लोभ के ही हिसाब मे त्याग मत कर देना। कही तुम्हारा सन्यास, तुम्हारा धर्म तुम्हारी होशियारी ही न हो, अगर होशियारी हुई तो तुम चूक जाओगे। क्योकि तब तुम पात्र बनने लगोगे। और जिसके मन मे यह खयाल उठा कि मै पात्र हूँ, वह दीन न रहा, उसने आत्मा की दरिद्रता खो दी।

दीन बनो!
मिटो!
हारे हुए जियो!
यह जीतने का वहम बहुत पाल लिया – छोडो यह बीमारी!

इधर तुम मिटे उधर परमात्मा तुम्हारी तरफ चला! जैसे-जैसे तुम मिटे, वैसे-वैसे वह तुम्हारी तरफ आता है। जिस दिन पूरे मिट जाते हो, अचानक पाते हो वह सदा से वहाँ था, तुम्हारी मौजूदगी के कारण दिखायी नही पडता था।

तुम्ही हो परदा तुम्हारी आँख पर।
आँख तो देखने मे समर्थ है, तुम्हारे कारण देख नही पाती।
दृष्टि धुधली है – तुम्हारे कारण, अधी है – तुम्हारे कारण!
तुम जरा आँख से हट जाओ!
निर्मल होने दो आँख को!
खाली होने दो आँख को!
शून्य होने दो आँख को!
तब परमात्मा के सिवाय और कोई भी दिखायी नही पडता है।
'भक्ति का साधन ज्ञान है, ऐसा किन्ही आचार्यो का मत है।'

गलत है मत। आचार्यो का होगा, जिन्होने सोचा-विचारा है उनका होगा – जिन्होने जाना है उनका नही है।

'भक्ति का साधन ज्ञान है।' नही, ज्ञान से कभी कोई भक्त हुआ? जितना जानोगे उतने अभक्त होते जाओगे। ज्ञानी तो धीरे-धीरे परमात्मा को इनकार करने लगता है, हजार ढगो से इनकार करता है।

ज्ञान साधन नही है भक्ति का, बाधा है।

'और किन्हीं दूसरे आचार्यों का मत है कि भक्ति और ज्ञान परस्पर एक-दूसरे के आश्रित हैं।'

वह भी गलत है।

भक्ति बात ही और है! उसका जानने से कोई सम्बध नहीं है, अनुभव से सम्बध है।

'सनतकुमार और नारद के मत से भक्ति स्वय फलरूपा है।'

लेकिन नारद कहते हैं, ये दोनो बाते ठीक नही है। न तो ज्ञान भक्ति का साधन है, और न भक्ति और ज्ञान एक-दूसरे पे आश्रित है। भक्ति स्वय फलरूपा है, ज्ञान की कोई भी जरूरत नही है।

'राजगृह और भोजनादि मे भी ऐसा ही देखा जाता है।'

'न उससे (जान लेने मात्र से) राजा की प्रसन्नता होगी, न क्षुधा मिटेगी।'

उदाहरण के लिए कहते हैं कि अगर कोई भोजन की चर्चा करे और भोजन के सम्बध में बहुत जान ले, तो भी भूख तो न मिटेगी। पाकशास्त्र को जान लेने से कोई भूख तो नही मिटती। तुम पाकशास्त्र के ढेर लगा ले सकते हो। तुम पाकशास्त्रो का अध्ययन करते-करते उनमे लीन हो जा सकते हो। जितने प्रकार के भोजन दुनिया मे बन सकते हैं, कभी बने हैं, या बनेगे, उन सबकी जानकारी तुम्हे हो सकती है। लेकिन उससे तुम्हारे पेट की भूख न मिटेगी। पेट की भूख तो भोजन से मिटती है।

भक्ति भोजन है, ज्ञान नही।

भक्ति स्वाद है – जीवत!

भक्ति परमात्मा के सम्बध में कुछ जानना नही है – परमात्मा का भोजन है।

बडा ठीक उदाहरण लिया है।

जीसस जब विदा होने लगे अपने शिष्यो से, मरने की घडी करीब आयी, सूली लगने को हुई, तो उन्होने रोटी के टुकडे तोडे और अपने शिष्यो के दिये, और कहा कि यह रोटी मै हूँ, तुम रोटी नही खा रहे हो, मेरा भोजन कर रहे हो!

भक्ति परमात्मा का भोजन है, परमात्मा का भोग है।

भूख तो भोग से मिटेगी। प्यास तो जल को पियोगे तो मिटेगी, जल को कितना ही जान लो, उससे न मिटेगी।

परमात्मा के सम्बध में जानना परमात्मा को जानना नही है। परमात्मा को तो वे ही जानते हैं जो उसका भोग कर लेते है, जो उसे पचा लेते हैं, जिनके खून और जिनकी हड्डी में परमात्मा घूमने लगता है, जिनके रोएँ-रोएँ और श्वास मे

समा जाता है, जिनके होने में परमात्मा की गंध हो जाती है, जिनका होना और परमात्मा का होना भिन्न नही रह जाता ।

'उसके जान लेने मात्र से न तो प्रसन्नता होगी, न क्षुधा मिटेगी ।'

इसलिए ज्ञान से तो भक्ति का कोई भी सम्बध नही है । ज्ञान तो है परमात्मा के सम्बध में जानना, और भक्ति है परमात्मा का सीधा साक्षात ।

'अतएव ससार के बधनो से मुक्त होने की इच्छा रखने वालो को भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिए ।'

जो वस्तुत 'मुमुक्षु' हैं... । इस शब्द को थोडा समझ लें ।

कुछ लोग हैं जो केवल कुतूहली हैं, जो परमात्मा के सम्बध में ऐसे ही पूछते हैं जैसे छोटे बच्चे पूछते है कि दुनिया को किसने बनाया । तुम कह दो, परमात्मा ने, तुम कह दो, कुछ भी, अ ब स – वे फिक्र नही करते, वे अपने भूल गये, बात खत्म हुई, खेल मे लग गये । उन्होने वस्तुत जानने के लिए पूछा ही न था – एक खुजलाहट थी, एक कुतूहल उठा था 'किसने बनाया !' न भी जवाब देते तो भी कुछ परेशान होने वाले न थे वे । उन्हे जवाब से कुछ लेना-देना भी न था । एक क्यूरिआसिटी थी, एक कुतूहल था ।

सौ मे से नब्बे लोग तो जो ईश्वर की बात करते हैं, कुतूहली होते हैं । वे कुछ जीवन दॉव पे लगाना नहीं चाहते – ऐसे ही अगर मुफ्त में कुछ जानकारी मिल जाए तो ठीक, कुछ बदलना न पडे, कुछ करना न पडे, कुछ होना न पडे – ऐसे ही कुछ जानकारी मिलती हो तो क्या हर्ज है !

कुतूहल से कोई धार्मिक नही होता ।

कुतूहल के बाद एक दूसरा वर्ग है जिज्ञासु का, वह जानना चाहता है, वस्तुत जानना चाहता है – लेकिन बस जानना चाहता है ।

कुतूहली तो जानने मे भी बहुत उत्सुक नही है, ऐसे ही पूछ लिया था, सतह की बात थी, एक खयाल आ गया था । खयाल की कोई जडे नही हैं उसके भीतर ।

जिज्ञासु के भीतर खयाल की जडे हैं – ऐसे ही खयाल नही आ गया, खयाल कई बार आता है । ऐसे आया-गया नही है, स्थायी निवास हो गया है ! पूछता है, प्रयोजन है, जानना चाहता है – लेकिन बस जानना चाहता है ! उससे आगे नहीं जाना चाहता ।

उसके आगे मुमुक्षु है । मुमुक्षु का अर्थ है . जानना ही नही चाहता, जीना चाहता है । जानने से क्या होगा ? अगर ईश्वर है तो अपने को बदलना चाहता है । अगर परलोक है तो अपने जीवन में क्रांति लाना चाहता है । अपने को दॉव पर लगाने को तत्पर है ।

नारद कहते हैं 'अतएव ससार के बधनों से मुक्त होने की इच्छा रखने वालो को भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिए।'

– क्योंकि भक्ति भोजन है।

सस्कृत का सूत्र जब भी अनुवादित किया जाता है तो कुछ-न-कुछ चूक होती हैं। हिन्दी में अनुवाद है 'अतएव ससार के बधनो से मुक्त होने की इच्छा रखने वालो को. ।' सस्कृत का सूत्र केवल इतना ही कहता है 'बधनो से मुक्त होने की इच्छा रखने वालो को ।' ससार की कोई बात नही है – बधनों से मुक्त होने की है।

इसे थोडा समझें ।

बधन ससार है। स्मरण रखें बधन-मात्र ससार है। मोक्ष का भी बधन हो तो ससार हो गया। पुण्य का भी बधन हो तो ससार हो गया। कोई भी आकाँक्षा हो तो बधन पैदा होगा। अगर परमात्मा को भी पाने की आकाँक्षा हो तो बधन बनायेगी। क्योकि जहाँ भी आकाँक्षा होगी, वही स्वतत्रता क्षीण हो जाएगी। जब कोई आकाँक्षा नही रह जाती तो बधन समाप्त होते है। और ऐसी घडी तो तभी आती है जब परमात्मा से मिलन हो जाए। इसके पहले ऐसी कोई घडी नही आती ।

तो जिन्हें सच मे ही बधनो के पार जाना है, जो ऊब गये है जीवन की जजीरो से, जो इस जीवन के कारागृह से पीडित हो गये हैं, जिनकी समझ मे आ गया है कि, ये बडी दीवाले जीवन की घर की दीवालें नहीं है, ये कारागृह हैं, और जिसको हम जिंदगी कहते है वह सिवाय बधनो के और कुछ भी नही – उनके लिए भक्ति ही एकमात्र उपाय है।

'ऐ ताइरे-लाहूति ! उस रिज्क से मौत अच्छी
जिस रिज्क से आती हो परवाज़ में कोताही।'

उस जिंदगी से मौत अच्छी है किस जिंदगी से ? – जिस ज़िदगी से उडान में बाधा पडती हो, आकाश छोटा होता हो, 'जिस रिज्क से आती हो परवाज़ में कोताही' – उडने मे रुकावट आती हो।

जहाँ-जहाँ रुकावट है, वहाँ-वहाँ गौर से देखना तुम अपनी ही किसी वासना को खडा हुआ पाओगे। जहाँ भी तुम्हारे पख अडते है, अटकते है, गौर से देखना वही-वही तुम पाओगे, कोई आकाँक्षा, कोई अपेक्षा, कोई वासना, कोई माँग पखो पर बधन बन गयी है।

तुम्हारी जजीरें तुम्हारी वासनाओ की जजीरें हैं, किसी और ने डाली नही, किसी और ने तुम्हे पहनाई नही हैं। और जिस दिन तुम्हें यह दिखायी पड जाए, उस दिन तुम्हारी जजीरें ऐसे ही पिघल जाती हैं जैसे तेज धूप मे बर्फ पिघल जाए,

सुबह के सूरज में ओस की बूंदे उड़ जाएँ – ऐसे ही तुम्हारी जंजीरें उड़ जाती हैं ।

परमात्मा को, बिना कुछ और माँगे, बिना कुछ और चाहे, अपने को समर्पित कर देना । यह मत कहना कि मैं परमात्मा को भी चाहता हूँ । उतनी चाह भी तुम्हारे 'परवाज़ में कोताही' ले आएगी । तुम इतना ही कहना कि मैं अपने को परमात्मा में छोडने को तत्पर हूँ, माँग कुछ भी नही है – मिटाना है ।

क्योकि सब माँग अहकार की माँग है । हर माँग अहकार की माँग है । तुम यह भी मत कहना कि मैं परमात्मा को चाहता हूँ, क्योकि उतनी चाह मे भी तुम अपने को परमात्मा से ऊपर रख रहे हो, तो परमात्मा विषय-वस्तु हो गया । कभी तुम धन चाहते थे, अब परमात्मा चाहते हो – लेकिन चाहने वाला खडा रह जाएगा । तुम इतना ही कहना कि अब बहुत चाहत करके देख ली – अब अपने को छोड़ना है, मिटाना है ।

इस मिटाने मे ही भक्त एक अपरिसीम आनद से भर जाता है, क्योकि उसके परवाज़ मे फिर कोई कोताही नही रह जाती, उसका पूरा आकाश उपलब्ध हो जाता है, पख परिपूर्ण स्वतत्रता से उडने लगते हैं । और इस मिटाने में ही एक ऐसी बेहोशी उसे घेर लेनी है, जिसे बेहोशी कहना भी ठीक नही – जिसमें बडा गहरा होश है, और एक ऐसा होश उस पे आ जाता है, जिसे होश कहना भी ठीक नही, क्योकि उसकी आँखो में बडी बेहोशी है, जैसे वह शराब पिये हो, जैसे अभी-अभी मधुशाला से लौटा हो ।

और जब तक तुम्हारे लिए मदिर मधुशाला नही बन जाता और जब तक प्रार्थना तुम्हारे लिए इतना गहन आत्म-विस्मरण नही बन जाती कि तुम उसमें डूब ही जाओ, तब तक तुम जो भी कर रहे हो, वह कुछ और होगा, भक्ति नही ।

'मैं मयकदे की राह से हो कर निकल गया
वर्ना सफर हयात का काफी तबील था ।'

जिंदगी का रास्ता बहुत कठिन है । अगर मयकदे की राह से हो कर निकल गये, तब बात और । अगर जीवन की मधुशाला से गुज़र गये तो बात और । वही परमात्मा है । अगर उसी मस्ती को थोडा चख लिया, अगर थोडा स्वाद पा लिया परमात्मा का, डगमगाने लगे पैर उसके आनद में, नाच छा गया – तो ही, अन्यथा जिंदगी का रास्ता बहुत कठिन है, काँटे-ही-काँटे है।

फूल तो तभी खिलते हैं जब तुम मिटना शुरू होते हो, अन्यथा दुर्गंध-ही-दुर्गंध है । सुगध तो तभी आती है जब तुम कपूर की तरह शून्य में खो जाते हो ।

'मस्जिद में बुलाते हैं हमें जाहिदे-नाफहम
होता अगर कुछ होश तो मयखाने न जाते ।'

— विरक्त हमें मंदिर में बुला रहे हैं, मस्जिद मे बुला रहे हैं, अगर कुछ थोड़ा होश होता तो मयखाने ही चले जाते।

भक्त को न कोई मंदिर बचता, न कोई मस्जिद बचती। वह जहाँ है वहीं उसकी मधुशाला है। वह जहाँ है, वही उसका परमात्मा है।

तुम्हारे मिट जाने मे, तुम्हारी लीनता में, तुम्हारी तल्लीनता मे — परमात्मा का आविर्भाव है।

इसलिए भक्त में तुम एक बेहोशी भी पाओगे और एक होश भी।

ज्ञानी में तुम्हें होश मिलेगा, बेहोशी न मिलेगी।

शराबी में, पापी में, तुम्हे बेहोशी मिलेगी, होश न मिलेगा।

योगी में तुम्हे होश मिलेगा, भोगी मे बेहोशी मिलेगी — भक्त में तुम्हे दोनों मिलेंगे। भोगी भी उससे ईर्ष्या करेगा और योगी भी उससे ईर्ष्या करेगा। क्योंकि योगी देखेगा, ऐसी अपरिसीम होश की सम्भावना उसके भीतर भी नही है। और भोगी देखेगा, इतना भोग के भी ऐसी मस्ती उसके पास नही आयी।

सब भोग तिक्त स्वाद छोड़ जाता है।

ठीक कहते हैं नारद कि ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति की ऊँचाई को नहीं पहुँचते।

भक्ति में, परमात्मा उसकी समग्रता मे स्वीकार है, उसका ससार भी समाहित है उस स्वीकार में। तो भक्त भागता नही ससार से, भोग से भी नही भागता — वह उसे भी परमात्मा का ही अनुग्रह मान के स्वीकार कर लेता है।

त्याग भक्त की भाषा नही है, जो 'उसने' दिया है, उसे स्वीकार कर लेता है — अहोभाव से, धन्यभाग से!

तो भक्त के जीवन मे एक अनूठा सवाद है उसकी बेहोशी मे होश है, उसके होश में बेहोशी है, उसके ध्यान में तल्लीनता है, उसकी तल्लीनता में ध्यान है।

भक्त आखिरी समन्वय है, आखिरी सिंथीसिस!

'मस्जिद में बुलाते हैं हमें जाहिदे-नाफहम
होता अगर कुछ होश तो मयखाने न जाते।'

. डूबता जाता है — परमात्मा के रस मे! खोता जाता है अपनी बूंद को उसके रस के सागर में! और जब बूंद सागर हो जाती है, तो उसकी मस्ती का क्या कहना! जब बूंद आकाश को छूती है तो उसकी मस्ती का क्या कहना!

भक्त में तुम रस पाओगे, योगी को सूखा पाओगे।

भोगी में रस मिलता है, लेकिन दुर्गंधयुक्त!

भक्त मे तुम रस पाओगे — और सुगंधयुक्त!

भोगी संसार को परमात्मा समझ लेता है, और परमात्मा को त्याग देता है। योगी परमात्मा को संसार के विपरीत समझता है, इसलिए संसार को त्याग देता है। भक्त परमात्मा और संसार को एक ही मानता है, स्रष्टा और सृष्टि एक है—इसलिए न कुछ त्यागता, न कहीं भागता। इस परम बोध में कि स्रष्टा अपनी सृष्टि के रोएँ-रोएँ में समाया है, भक्त में योग और भोग का मिलन हो जाता है। वह परम संगीत है। उससे ऊपर कोई संगीत नहीं।

आज इतना ही।

आठवाँ प्रवचन

दिनांक १८ जनवरी, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना

अनंत के आँगन में नृत्य है भक्ति

पहला प्रश्न : प्रेम भक्ति का जनक है या भक्ति प्रेम की जननी ? प्रेम कली है और भक्ति फूल ? अथवा प्रेम आदि है और भक्ति अंत ? या दोनों भिन्न हैं ?

कली और फूल एक भी हैं और भिन्न भी। आदि और अंत जुड़े भी हैं और अलग भी है। कली कली भी रह जा सकती है, फूल बनना सम्भव है, अनिवार्य नहीं।

बीज बीज भी रह जा सकता है, वृक्ष हो सकता था, जरूरी नहीं है कि हो। बीज अलग भी है — उसका अपना भी अस्तित्व है — और वृक्ष की सम्भावना भी है। लेकिन वृक्ष तभी हो सकेगा जब बीज हो — पहली बात। और वृक्ष तभी हो सकेगा जब बीज मिटे — दूसरी बात। पहले हो, और फिर मिटे भी, तो ही वृक्ष हो सकेगा।

प्रेम न हो तो भक्ति की कोई सम्भावना नहीं। और अगर प्रेम ही रह जाए, आगे न जाए, तो भी भक्ति की कोई संभावना नहीं। प्रेम प्रेम पर ठहर जाए तो भक्ति कभी पैदा न होगी। और अगर प्रेम हो ही न तो तो भक्ति के पैदा होने का सवाल ही नहीं है।

इसलिए प्रश्न नाजुक है। और बड़ी भूलें मनुष्य की इतिहास में हुई हैं। किन्हीं ने सोचा कि प्रेम ही भक्ति है, तो भक्ति के नाम से प्रेम के ही गीत गाते रहे, और चूक हो गयी। और किन्हीं ने समझा कि प्रेम भक्ति नहीं है, प्रेम के पार जाना है, तो प्रेम के दुश्मन हो गये, प्रेम से पलायन किया, भागे, तो भी चूक गये।

प्रेम से भागना नहीं है, प्रेम के पार जाना है। प्रेम को सीढ़ी बनाना है। प्रेम पर चढ़ना है। प्रेम का अतिक्रमण करना है। प्रेम का उपयोग करना है। प्रेम से दुश्मनी कर ली, तब तो फिर कभी भक्ति पैदा न होगी। यह तो बीज से दुश्मनी हो गयी। और जो बीज से डर गया, बीज का शत्रु हो गया, वह आशा रखे वृक्ष की, तो नासमझी है। कल्पना कर सकता है वृक्ष की, सपने देख सकता है — लेकिन वृक्ष कभी वास्तविक न हो पाएगा।

प्रेम के बीज को सम्हालना है – मगर जरूरत से ज्यादा मत सम्हालना, ऐसा न हो कि बीज में ही बद रह जाओ, ऐसा न हो कि बीज ही सम्पदा हो जाए। बीज तो केवल सम्भावना है – उपयोग करना ! आगे जाना ! सीढ़ी बनाना ! तो बीज खिलेगा, कली खिलेगी, फूल बनेगा।

कामवासना से जन्म होता है प्रेम का, लेकिन कामवासना पर ही कोई रुक जाए तो प्रेम का कभी जन्म न होगा। कीचड से जन्म होता है कमल का। लेकिन कमल कीचड भी रह सकती है, कोई मजबूरी नही है कि कमल हो।

कामवासना से जन्म होता है प्रेम का। कामवासना है कीचड। प्रेम का कमल खिलता है, जडें तो होती है कीचड में, लेकिन कीचड के पार उठ गया होता है। कीचड से निकलता है और कीचड से कितना भिन्न होता है ! कीचड से आता है लेकिन कीचड जैसा तो कमल में कुछ भी नही होता। अगर हमें पता ही न हो कि कमल कीचड से आया है, तो हम कभी कमल का सम्बध कीचड से जोड ही न सकेंगे।

कहाँ कीचड, कहाँ कमल ! दो अलग लोक ! दो अलग ससार ! कमल को देख के तुम्हे कीचड की याद भी आ सकती है ? कीचड को देख के कमल की याद आ सकती है ? कोई सम्बध नही जुडता। लेकिन कीचड से ही कमल आता है। कामवासना से ही प्रेम का आविर्भाव होता है।

फिर कमल से सुगध उठती है, वैसे ही प्रेम स भक्ति की गध उठती है। कमल तो दृश्य है, सुगध अदृश्य है। प्रेम दृश्य है, भक्ति अदृश्य है। भक्ति तो गधमात्र है। तुम भक्ति को मुट्ठी मे बाँध न पाओगे। प्रेम को भी बाँधोगे तो प्रेम ही मर जाएगा, तो भक्ति की तो बात ही छोड दो। कमल को भी मुट्ठी में बाँधोगे तो कमल मुरझा जाएगा।

कमल को भोगना। कमल से आनदित होना। कमल का उत्सव मनाना। कमल के आसपास नाचना। कमल के मालिक मत बनना, मुट्ठी में मत बाँधना, नही तो प्रेम भी कुम्हला जाएगा।

अधिक लोगो के प्रेम मुट्ठी में बँध के ही तो कुम्हला जाते हैं, मर जाते हैं। जहाँ तुमने प्रेमी पर कब्जा किया, वही प्रेम की मृत्यु शुरू हो जाती है। जहाँ मालकियत आयी वहाँ प्रेम नही ठहर पाता। प्रेम कोई वस्तु नही है कि तुम मालिक हो सको। यह कोई सम्पदा नही है, जिसे तुम तिजोडी में रख सको। यह तो कमल का फूल है – इसे खुले आकाश मे खिलने दो। डरो मत ! ऐसा भय मत पालो कि कोई और इस फूल के आनद को उपलब्ध न हो जाए, कोई और इस फूल के सौंदर्य को न देख ले, किसी और की आँखो मे फूल का सौंदर्य न भर आए। ढाँको मत इस फूल को। क्योंकि ढाँक लोगे तुम, दूसरो की नजरों से

तो बच जाएगा, लेकिन तुम भी वंचित हो जाओगे। क्योंकि ढका हुआ फूल मर जाता है। खुला आकाश चाहिए, सूरज की किरणें चाहिए, मुक्त हवाएँ चाहिए, तो ही फूल जीवित रहेगा।

प्रेम मर गया है। पृथ्वी पर प्रेम की लाशें हैं, कुम्हलाये हुए फूल हैं, मरे हुए फूल हैं। प्रेम को ही मुट्ठी में बाँधना असम्भव है। जिन्होंने बाँधा, उन्होंने ही प्रेम की हत्या कर दी।

कभी भी प्रेम पर मालकियत मत जताना। प्रेम को ही तुम्हारा मालिक होने दो, तुम प्रेम के मालिक मत बनना।

प्रेम नाजुक है, मालकियत को न सह पाएगा। तो फिर भक्ति की तो बात बहुत दूर। भक्ति तो सुगंध है, अदृश्य है, उस पर कोई मुट्ठी बाँधी नही जा सकती। मुक्ति उसका स्वभाव है, दूर आकाशों को छुएगी, दूर हवाओं पर यात्रा करेगी।

जब प्रेम को पंख लग जाते हैं — तब भक्ति। जब प्रेम इतना सूक्ष्म हो जाता है कि दिखायी भी नही पड़ता, सिर्फ एहसास होता है — तब भक्ति।

प्रेम का नशा थोड़ा स्थूल है, भक्ति का नशा बड़ा सूक्ष्म है। प्रेम को तो तुम थोड़ा सुन पाओगे, उसकी पगध्वनि सुनायी पड़ती है — भक्ति की पगध्वनि भी सुनायी नही पड़ती। उसे तो तुम पहचान तभी पाओगे जब तुमने भी उस अदृश्य का थोड़ा अनुभव किया हो।

कामवासना से ऊपर उठो। ध्यान रखना, मैं कहता हूँ, 'ऊपर उठो', दूर जाने की नही कह रहा हूँ, पार जाने की कह रहा हूँ। ऊपर उठने का अर्थ है तुम्हारी बुनियाद में तो कामवासना बनी ही रहेगी, तुम ऊपर उठे भवन उठा, बुनियाद से ऊपर चला, बुनियाद तो बनी ही रहेगी।

कामवासना से ऊपर उठो, तो प्रेम। प्रेम से भी ऊपर उठो, तो भक्ति।

कामवासना में क्षण-भर को दो शरीर करीब आते हैं — क्षण-भर को ही आ सकते हैं, क्योंकि शरीर बड़े स्थूल हैं। उनकी सीमाएँ बड़ी स्पष्ट हैं। करीब ही आ सकते हैं, एक तो नही हो सकते।

प्रेम में दो मन करीब आते है, क्षण-भर को एक भी हो जाते हैं — क्योंकि मन की सीमाएँ तरल हैं, ठोस नही। जब दो मन मिलते हैं तो दो मन नही रह जाते, क्षण-भर को एक ही मन रह जाता है।

भक्ति में दो आत्माएँ करीब आती हैं, दो चैतन्य करीब आते हैं — व्यक्ति का और समष्टि का, बूँद का और सागर का, कण का और विराट का — और सदा के लिए एक हो जाते हैं।

कामवासना में शरीर करीब आते हैं और दूर फिंक जाते हैं। इसलिए कामवासना में सदा ही विषाद है। मिलने का सुख तो बहुत थोड़ा है, दूर हट जाने की

पीड़ा बहुत गहन है। इसलिए ऐसा व्यक्ति खोजना कठिन है जो कामवासना के बाद पछताया न हो। पछतावा कामवासना का नही है। कामवासना पास ले आती है, लेकिन तत्क्षण दूर फेंक जाती है। जितने हम दूर पहले थे, उससे भी ज्यादा दूर हो जाते हैं। यह क्षण-भर पास आना दूरी को और प्रगाढ कर देता है, दूरी अनत हो जाती है।

इसलिए हर कामवासना के पीछे पछतावा है, एक पश्चाताप है, जैसे कुछ खोया। चाहे तुम्हे साफ न हो कि क्या खोया, चाहे तुम्हे स्पष्ट न हो कि क्या खोया – लेकिन कुछ खोया, कुछ गँवाया, पाया नही।

प्रेम में खोना और पाना बराबर है। कामवासना में खोना ज्यादा है, पाना नाकुछ है। प्रेम में एक सतुलन है, खोना-पाना बराबर है, तराजू के दोनो पलडे बराबर है। तो तुम प्रेमी मे एक तरह की तृप्ति पाओगे जो कामी मे न मिलेगी। कामी हमेशा अतृप्त मिलेगा, विषाद से भरा मिलेगा, पश्चाताप से भरा मिलेगा 'कुछ खो रहा है, कुछ खो रहा है! जीवन में कही कोई चूक हो रही है, भूल हो रही है।

पश्चाताप कथा है कामवासना की।

प्रेमी में तुम एक तृप्ति पाओगे, एक सतुलन पाओगे, एक शाति पाओगे। खोना-पाना बराबर है – लेकिन इतना काफी नही है। खोना-पाना बराबर हो तो तृप्ति तो हो सकती है, महातृप्ति नही हो सकती। लगेगा सब ठीक है। लेकिन इससे कोई उत्सव का क्षण करीब नही आता। इससे तुम अनत के आँगन मे नाच न सकोगे। इससे कुछ अहोभाव पैदा नही होता जितना दिया उतना लिया, सब बराबर हुआ, हानि कुछ मालूम नही होती, लेकिन लाभ भी कुछ मालूम नही होता।

तो प्रेमी को तुम उलझा हुआ पाओगे। कामी को पछताता हुआ पाओगे। प्रेमी को उलझा हुआ पाओगे कि यह क्या हुआ, पाया-खोया सब बराबर हुआ! हाथ तो कुछ न लगा। हिसाब तो पूरा हो गया, लेकिन जीवन यूँ ही चला गया।

प्रेमी को तुम उलझा हुआ पाओग। एक प्रश्न-चिह्न पाओगे प्रेमी की अन्तर्दशा मे कि यह सब क्यो, प्रयोजन क्या!

फिर भक्त की दुनिया है जहाँ पाना-ही-पाना है और खोना नही है। कामी की दुनिया है जहाँ खोना-ही-खोना है, पाना नही है। और भक्त की दुनिया है – ठीक विपरीत, दूसरा छोर – जहाँ पाना-ही-पाना है, खोना नही है। तब अहोभाव पैदा होता है, तब मीरा पद घुघरू बाँध नाचती है। तब नृत्य आता है। तब कोई उलझन नही है, तब कोई प्रश्न नही है। तब सब प्रश्न हल हुए। तब जीवन पहली बार अर्थवत्ता से भरा! और तब पहली बार धन्यवाद में सिर झुकता है।

पूछा है . प्रेम भक्ति का जनक है या भक्ति प्रेम की जननी ?

प्रेम ही भक्ति का जनक है, भक्ति नही, क्योंकि भक्ति तो आखिरी शिखर है। भक्ति तो भगवान की जननी है, प्रेम की नही। जिसने भक्ति को पा लिया, उसने भगवान को जन्म दिया।

इसे भी थोड़ा समझ लेना। क्योंकि साधारणत लोग सोचते हैं, भगवान कहीं बैठा है, खोजने की बात है, पता लगा दिया, पूछताछ कर ली, थोड़ी खोजबीन की, मिल जाएगा।

भगवान कही बैठा नही है – तुम्हें जन्म देना है। भगवान कोई वस्तु नही है – तुम्हारे भीतर का अविर्भाव है। और प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही भगवान पर पहुँचना है। दूसरे का भगवान तुम्हारे काम न आएगा। भगवान के जगत में गोद लेने से काम न चलेगा।

इस ससार में तुम धोखा दे लेते हो। किसी को बच्चे पैदा नहीं होते, गोद ले लेते हैं। जो बहुत होशियार हैं ..।

मुल्ला नसरुद्दीन को बच्चे पैदा नहीं हुए तो उसने विज्ञापन निकाला अखबारो में कि मुझे किसी को गोद लेना है, लेकिन उम्र सत्तर-अस्सी साल के करीब होनी चाहिए। पूरा गाँव चकित हुआ कि पहले बहुत गोद लेने वाले देखे ।

एक बूढा आया, लकडी टेकता हुआ, मुश्किल से चलता हुआ। उसने कहा कि मेरी अस्सी साल की उम्र हो गयी है। मैं तैयार हूँ, लेकिन मैं समझा नही। लोग बच्चो को गोद लेते हैं .।

नसरुद्दीन ने कहा कि बच्चो को गोद लेने से क्या फायदा। हम तो ऐसे आदमी को लेगे जिसके नाती-पोते भी हो, ताकि तीन-चार पीढियो में हमारे परिवार में किसी को फिर गोद न लेना पडे।

तो जो बहुत होशियार हैं वे लम्बा इन्तज़ाम कर लेते हैं। लेकिन गोद लिया हुआ बच्चा, और तुमने जिसे जन्म दिया, उसमें ज़मीन-आसमान का भेद है। माँ ने जिसे गर्भ में रखा, नौ महीने जिसका बोझ झेला, जिसकी प्रतीक्षा की, जिसके आसपास सपने सँजोये, हज़ार-हज़ार आशाएँ बाँधी, अपने खून से जिसे सींचा, अपने हृदय की धड़कन दी, अपने प्राणो को बाँटा जिससे – उस बच्चे मे, और फिर तुमने किसी को गोद ले लिया, कानूनी बच्चे मे, बडा फर्क है।

तो इस ससार में तो तुम उधार भी ले लेते हो तो भी चल जाता है। यहाँ तो तुम अपने को धोखा दे लेते हो। बाँझ भी उधार ले के बच्चो को, जन्मदाता बन जाते हैं। लेकिन यह धोखा परमात्मा के जगत में न चलेगा। वहाँ तो तुम्हें माँ बनना पड़ेगा।

भक्त यानी माँ। भक्ति यानी तुम गर्भस्थ हुए . तुम्हारा ही चैतन्य, तुम्हारी

ही सारी जीवन-ऊर्जा को अपने में समा कर एक नयी धुन और एक नये गीत के साथ पैदा होता है, तुम्हारा ही चैतन्य एक नये आयाम मे प्रवेश करता है — मृत्यु से अमृत के आयाम मे, सीमा से असीम मे। बूंद वहाँ सागर होती है।

तो भगवान कोई बैठा हुआ, कही कोई व्यक्ति नही है, जिसे तुम गये और परदा उठा लिया और खोज लिया। इन बचकानी बातो में मत पड़ना। न ही कोई भगवान वस्तु है कि कोई तुम्हे दे देगा। तुम्हें जन्म देना होगा। तुम्हे अहर्निश साधना होगा। तुम्हे जन्मो-जन्मो पुकारना होगा। तुम्हे उसके बोझ को ढोना होगा। प्रसव की पीड़ा झेलनी होगी। कभी तुम हँसोगे आनद से, कभी रोओगे भी। आँसुओ में और मुस्कराहटो मे उसे सींचना होगा, सँवारना होगा। और जब वह पैदा होगा तो वह तभी पैदा होगा, उसी क्षण पैदा होगा, जहाँ तुम्हारी मौत घट जाएगी।

बौद्धो मे एक अनूठी कथा है। कथा ही है, लेकिन बडी प्रतीकात्मक है। बौद्ध शास्त्र कहते है कि जब किसी बुद्ध का जन्म होता है तो जन्म देने के साथ ही माँ मर जाती है। बुद्ध की माँ मर गयी, जन्म देने के साथ ही। सदियो से लोग पूछते रहे 'ऐसा क्यो ? कृष्ण की माँ भी तो नही मरी। जीसस की माँ नही मरी। महावीर की माँ नही मरी। यह बौद्ध शास्त्रो में एक नयी धारणा क्यो पाल रखी है कि जब बुद्ध का जन्म होता है तो उनकी माँ मर जाती है ?'

यह धारणा बडी महत्त्वपूर्ण है। बुद्ध की माँ मरी हो न मरी हो — लेकिन जब भी तुम्हारे भीतर बुद्धत्व का जन्म होता है, तुम मर जाते हो। इतना ही सार है उस कथा में। बीज तो मरेगा ही, तभी वृक्ष हो पाएगा। साधारण जीवन मे जब माँ जन्म देती है तो माँ मर नही जाती, पीडा झेलती है, बच जाती है। मरने की घडी आ जाती है, चिल्लाती है, चीखती है बच्चे को जन्म देते वक्त। ऐसा लगता है, मरी, मरी — मरती नही, बच जाती है। लेकिन बीज नही बचता, टूट जाता है, तभी तो वृक्ष होता है।

जब तुम्हारे भीतर परमात्मा का जन्म होगा तो तुम न बचोगे, तुम तो मिट जाओगे। तुम्हारी मृत्यु ही उसका जन्म है। तुम्हारा मिट जाना ही उसका होना है।

इस मृत्यु से बचने के लिए लोगो ने परमात्मा की न मालूम कितनी धारणाएँ कर ली हैं, जैसे वह कही बैठा है, और तुम्हें राह खोजनी है। वह कही बैठा नही है — उसे जन्म देना है। तुम्हे गर्भ खोजना है, राह नही।

काम से प्रेम पैदा होता है, प्रेम से भक्ति पैदा होती है, भक्ति से भगवान पैदा होता है। भक्ति भगवान की जननी है।

तो जब तक तुम्हारे भीतर भक्ति का आविर्भाव नही हुआ है, तुम भगवान को न देख पाओगे, न समझ पाओगे, न पहचान पाओगे। तुम्हारे पास आँख ही नही।

तुम अंधे हो। और प्रकाश के सम्बन्ध में बातें सुन-सुन के आँख न खुल जाएगी। आँख की चिकित्सा करनी होगी। अंधेपन को मिटा डालना होगा।

आँख खुलेगी तो तुम प्रकाश देखोगे, भक्ति खुलेगी तो तुम भगवान देखोगे। जब भक्ति की आँख खुलती है तो सब तरफ परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी शेष नही रह जाता।

दूसरा प्रश्न इस कथन में क्या सच्चाई है कि भक्ति है द्वैत और ज्ञान है अद्वैत ?

जरा भी सच्चाई नही है। और यह कथन ज्ञानियो का है। ज्ञानी ऐसा कहते रहे हैं कि भक्ति द्वैत है और ज्ञान अद्वैत। भक्तो से पूछो, भक्ति के सम्बन्ध में जानना हो तो। तो ज्ञानियो से पूछना गलत जगह पूछना है।

भक्त कहते हैं, भक्ति भी अद्वैत है, ज्ञान भी अद्वैत है — लेकिन भक्ति रसपूर्ण अद्वैत है और ज्ञान सूखा अद्वैत है।

भक्ति है जैसे हरा-भरा उपवन! और ज्ञान है जैसा रेगिस्तान। रेगिस्तान में भी परमात्मा है — कोई इनकार नही करता। फिर कुछ है जिनको रेगिस्तान भी सुन्दर लगता है, उनको भी कोई इनकार नही करता। अपनी-अपनी मौज।

लेकिन हरियाली की बात ही कुछ और है! फूल खिलते है! वृक्षो की छाया है! झरनो का नाद है! पक्षियो के गीत हैं! हरियाली की कुछ बात ही और है!

मरुस्थल भी उसी का है। काँटे भी उसी के हैं, फूल भी उसी के हैं।

भक्ति रसपूर्ण अद्वैत है। दो तो मिट जाते हैं, लेकिन जो एक बचता है, वह रूखा-सूखा नही है। जो एक बचता है, वह प्रेम से भरपूर है, लबालब है। जो एक बचता है वह ज्ञानी की तरह, गणित की तरह रूखा-सूखा नही, काव्य की तरह है, मधुरता से भरा है।

ज्ञानी का परमात्मा तर्क की निष्पत्ति है। भक्त का परमात्मा प्रेम का आविर्भाव है। तर्क भी उसी का है, याद रखना। तर्क का कोई विरोध नही है, तर्क भी उसी का है। और किन्ही को तर्क में ही स्वाद आता हो, तो वह मार्ग भी पहुँचा देता है।

लेकिन प्रेम की बात ही और है।

भक्तो ने अक्सर इस सम्बध में बहुत कुछ कहा नही, क्योकि भक्त कहते कम, जीते ज्यादा हैं। ज्ञानियो ने वक्तव्य दिये है तो ज्ञानियो के वक्तव्य प्रचलित हो गये हैं। और भक्त सुन लेते हैं और मुस्कराते हैं। वे इतनी भी झझट नही लेते कि इनका खडन करें, क्योकि खडन भी ज्ञानियो का ही धधा है। खडन-मण्डन दोनो

ही उन्हीं के हैं। भक्त उस उलझाव में पड़ता नहीं है। बजाय तर्क के जाल में पड़ने के, भक्त नाच लेता है। जब ऊर्जा का आविर्भाव होता है तो गीत गा लेता है, गुनगुना लेता है। तुम उसकी आँखो में उसके परमात्मा को पाओगे, उसके शब्दों में नहीं। शब्द के सम्बध मे भक्त थोडा गूँगा है। उसकी मधुशाला उसकी आँखो में है।

ज्ञानी की आँख तुम बद पाओगे। शकराचार्य बैठे होगे या बुद्ध बैठे होगे, तो आँख बद होगी।

भक्त की आँख तुम परमात्मा की शराब से भरी हुई पाओगे। खुली हो या बद, भक्त की आँख तुम्हे नशे मे डुबा देगी।

भक्त एक मस्ती में जीता है। उसने बेहोशी में ही होश जाना है। उसने तल्लीनता मे ही अपने होने को छुआ है। उसने मिट कर ही अपने अस्तित्व की पहचान की है।

लेकिन फर्क तुम देख सकते हो। भक्त भी अद्वैत को ही उपलब्ध होता है, लेकिन उसका अद्वैत ज्ञानी के अद्वैत से बडा भिन्न है। अद्वैत को उपलब्ध हो कर भी भक्त द्वैत की ही भाषा का उपयोग करता है।

इसे थोडा समझ लेना जरूरी है। इसलिए ज्ञानी का वक्तव्य ठीक भी मालूम पडता है कि भक्ति है द्वैत और ज्ञान है अद्वैत। लेकिन भक्त यह कहता है, भाषा तो जहाँ भी होगी, द्वैत की ही होगी। भाषा का अर्थ ही दो है। बोलने का अर्थ ही दूसरे को स्वीकार कर लेना है। बोले कि दूसरा आया। बोलने का मतलब ही सवाद है, दो की मौजूदगी है।

अगर तुमने यह भी कहा कि अद्वैत है, तो किससे कह रहे हो? तो कहने वाला और सुनने वाला तो दो हो गये। अगर तुमने यह भी सिद्ध करने की कोशिश की कि उसके सिवाय कुछ भी नही है, तो यह सिद्ध करने की कोशिश क्यो कर रहे हो? अगर उसके सिवाय कुछ भी नहीं है तो तुम बिलकुल पागल हो। जब है ही नही तो कोशिश क्या, प्रयास क्या है?

जो लोग सिद्ध करने की कोशिश करते है कि ससार माया है वे कम-से-कम इतना तो ससार को मानते ही हैं कि है, और माया सिद्ध करना है। अगर ससार माया ही है तो बात खत्म हो गयी, सिद्ध क्या करना है! सुबह उठ के तुम यह तो सिद्ध नही करते कि जो सपने देखे रात वे झूठ थे। इतना जानते ही कि सपने थे, बात खत्म हो गयी, कौन सिद्ध करता है! कौन झझट में पडता है!

अगर सुबह उठ के कोई आदमी सिद्ध करने लगे कि रात मैंने जो सपना देखा वह झूठ था, तो एक बात पक्की है कि इस आदमी को अभी भी सपने पे थोडा भरोसा है, अन्यथा किससे सिद्ध कर रहा है? और लोग हँसेगे, जग-हँसाई होगी कि

यह पागल देखो, कहता है सपना झूठ है ! यह कहना भी व्यर्थ है । सपना इतना झूठ है कि उसे झूठ कहना भी उसे सच्चाई देना है । इसलिए तो कोई सुबह उठ के विवाद में नही पडता । कोई कहता ही नही किसी को कि सपना देखा, वह झूठ था।

भक्त कहता नही कि ससार माया है । भक्त जानता है। ज्ञानी कहता है । भक्त कहता नही कि परमात्मा एक है । किससे कहना है ? किसको सुनाना है ? एक ही है, इसलिए कहने की बात, सुनाने की बात व्यर्थ है । भक्त जीता है उस ऐक्य को।

लेकिन भक्त की भाषा द्वैत की है, क्योकि वह कहता है, सारी भाषा द्वैत की है । फिर प्रेम की भाषा तो द्वैत की होगी ही । तो भक्त भगवान से बोलता है, बाते करता है । ज्ञानी को यही अखरता है ।

मीरा खडी है कृष्ण के मदिर में, बाते कर रही है, शिकायतें भी करती हैं, रूठ भी जाती है । ज्ञानी को ये बाते नही जँचती । ज्ञानी को लगता है, यह पागलपन हुआ । एक ही है । मीरा भी जानती है। लेकिन वह जो एक है, वह कोई मुर्दा इकाई नही है । उस एक मे बडा जीवत विरोधाभास है । वह जो एक है, वह ऐसा एक नही है कि जिसमे दो का उपाय न हो ।

यह थोडा समझना पडे ।

वह ऐसा एक है जिसमें दो एक हो गये हैं । वह प्रेम की एकता है, गणित की एकता नही है ।

अगर तुमने कभी किसी को प्रेम किया तो तुम एक अनूठे अनुभव मे आते हो, वह अनूठा अनुभव तर्कातीत है ।

जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो एक अनूठी प्रतीति होनी शुरू होती है कि तुम दो भी हो और एक भी । स्वाभावत दो हो, नही तो कौन किसको प्रेम करेगा ? कौन किसके लिए आँसू बहायेगा ? कौन किसके लिए नाचेगा ? निश्चित ही दो हो । लेकिन फिर भी दो नही हो । कही द्वि-पन खो गया है । कही किनारे टूट गये हैं और धाराएँ एक-दूसरे मे प्रवेश कर गई है । कही किसी भीतर के जगत मे एक भी हो । ऊपर-ऊपर दो हो, भीतर-भीतर एक हो । शायद हर घडी ऐसा न भी हो पाता हो, कभी-कभी ऐसी घडी आती हो, जब एक हो जाते हो, बाकी घडी दो रहते हो – लेकिन आती है ऐसी घडी जब विरोधाभास घटता है, दो के बीच एकता सधती है ।

भक्त का अद्वैत जीवत है । जीवत का अर्थ है एकरस नही है । एक तो तुम वीणा बजाओ और एक ही स्वर को गुंजाते रहो – बेरस हो जाएगा । बहुत-से स्वर उठाओ, लेकिन सारे स्वरो के बीच एक सवाद हो, एक सगीत हो – सगीत एक हो, स्वर बहुत हो, लयबद्धता एक हो, छद एक हो – तब जीवत, तब ऊब न आएगी ।

भक्त परमात्मा को जीवन – गणित की नही, सगीत की – एक लयबद्धता के रूप मे देखता है। प्रेमी-प्रेयसी या प्रेयसी और प्रेमी दो भी बने रहते हैं और कही एक भी हो गये होते है। मीरा कृष्ण के सामने नाचती है, बोलती है, बात करती है दो तो है और फिर भी एक है।

बोलने के लिए दो होना जरूरी है। और ध्यान रखो, अगर सच मे ही बोलना हो तो एक होना भी जरूरी है।

इसलिए भक्त की बात बिलकुल तर्कातीत है। जो जियेगा वही जानेगा।

अद्वैतवादी की बात तो तुम शास्त्र से भी समझ सकते हो, भक्ति की बात केवल शास्त्र से समझ मे न आएगी। अद्वैतवादी की बात तो तर्कनिष्ठ है, जिनके पास भी थोडी तर्क की क्षमता है, वे समझ लेगे। लेकिन भक्त की बात अनुभव, अस्तित्वगत अनुभव से आती है।

तो मैं तुमसे कहता हूँ, भक्त भी अद्वैत की बात कर रहा है, लेकिन उसका अद्वैत की बात करने का ढग प्रेम है। उसका लहजा अलग है। उसकी शैली अलग है।

और मैं तुमसे कहता हूँ, भक्त का अद्वैत ज्यादा बहुमूल्य है। उसमे प्राण धडकते है, श्वास चलती है। ज्ञानी का अद्वैत बिलकुल मुर्दा है, मरी लाश की तरह। ज्ञानी का अद्वैत ऐसा है जैसे कोई नदी एक ही किनारे के सहारे बहने की चेष्टा करे। भक्त का अद्वैत ऐसा हे जैसा सभी नदियाँ दो किनारे के सहारे बहती है।

लेकिन तुमने कभी गौर किया नदी को दो किनारो के सहारे की जरूरत है, लेकिन दोनो किनारे नीचे नदी की गहराई मे तो एक हो जाते है, ऊपर से दो दिखायी पडते हैं, अलग-अलग दिखायी पडते है। तुम्हे एक किनारे से दूसरे किनारे जाना हो तो नाव पर सवार होना पडता है। लेकिन नदी की गहराई में तो दोनों किनारे मिले हैं, एक ही है। एक है और फिर भी दो है। दो है और फिर भी एक है।

भक्ति के सम्बध में कुछ जानना हो तो ज्ञानियो के द्वारा मत जानना। फिर भक्ति का ही स्वाद लेना पडेगा। यह बात उधार जानी जा सके, ऐसी नही। और ज्ञानी से जानना तो बिलकुल गलत जगह से जानना है। ज्ञानी को इसका कोई स्वाद ही नही है। भक्त से ही पूछना। और भक्त से पूछने का ढग भी अलग होगा। पूछने का एक ही ढग हो सकता है कि तुम भी थोडा अपने को रगना उसी रग मे। भक्त की बात को तुम दूर खडे रह-रह के न समझ पाओगे। उतरना। उसकी मस्ती मे थोडे डूबना। भक्त के साथ थोडा पागल होना पडेगा। भक्त के साथ थोडा भक्ति में डुबकी लगानी पडेगी।

भक्ति को समझना महँगा सौदा है। ज्ञान को समझने में कोई अडचन नही

है शास्त्र से समझ सकते हो, किनारे खडे रह के समझ सकते हो। भक्त की चुनौती गहरी है।

एक मित्र ने पूछा है कि सन्यास के लिए गैरिक वस्त्र क्यो जरूरी है।

उतरना हो तो थोडा पागल होना जरूरी है। ये पागल होने के रास्ते हैं, और कुछ भी नही। ये तुम्हारी होशियारी को तोडने के रास्ते है, और कुछ भी नही। ये तुम्हारी समझदारी को पोछने के रास्ते हैं, और कुछ भी नही।

गैरिक वस्त्र पहना दिये, बना दिया पागल ! अब जहाँ जाओगे, वही हँसाई होगी। जहाँ जाओगे, लोग वही चैन से न खडा रहने देगे। सब आँखे तुम पे होगी। हर कोई तुमसे पूछेगा 'क्या हो गया ?' हर आँख तुम्हे कहती मालूम पडेगी 'कुछ गडबड हो गया। तो तुम भी इस उपद्रव मे पड गये ? सम्मोहित हो गये ?'

गैरिक वस्त्रो का अपने-आप में कोई मूल्य नही है। कोई गैरिक वस्त्रो से तुम मोक्ष को न पा जाओगे।

गैरिक वस्त्रो का मूल्य इतना ही है कि तुमने एक घोषणा की कि तुम पागल होने को तैयार हो। तो फिर आगे और यात्रा हो सकती है। यही तुम डर गये तो आगे क्या यात्रा होगी ?

आज तुम्हे गैरिक वस्त्र पहना दिये, कल एकतारा भी पकडा देंगे। उगली हाथ मे आ गयी तो पहुँचा भी पकड लेगे। यह तो पहचान के लिए है कि आदमी हिम्मतवर है या नही। हिम्मतवर है तो धीरे-धीरे और भी हिम्मत बढ़ा देंगे। आशा तो यही है कि कभी तुम सडको पे मीरा और चैतन्य की तरह नाच सकोगे।

आदमी ने हिम्मत ही खो दी है।

भीड के पीछे कब तक चलोगे ?

ये गैरिक वस्त्र तुम्हे भीड से अलग करने का उपाय है, तुम्हे व्यक्तित्व देने की व्यवस्था है – ताकि तुम भीड से भयभीत होना छोड दो, ताकि तुम अपना स्वर उठा सको, अपने पैर उठा सको, पगडडी को चुन सको।

राजमार्गों से कोई कभी परमात्मा तक न पहुँचा है, न पहुँचेगा, पगडडियो से पहुँचता है। और हम धीरे-धीरे इतने आदी हो गये हैं भीड के पीछे चलने के कि जरा-सा भी भीड से अलग होने मे डर लगता है।

जिन मित्र ने पूछा है, किसी विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर हैं, बुद्धिमान हैं, सुशिक्षित हैं – फिर विश्वविद्यालय मे गैरिक वस्त्र पहन के जाएँगे, तो अडचन मै समझता हूँ। वैसे ही अध्यापक मुसीबत में है, गैरिक वस्त्र – पूरी फजीहत हुई रखी है !

प्रश्न पूछा है तो जानता हूँ कि मन में आकांक्षा भी जगी है, नही तो पूछते क्यो। अब सवाल है हिम्मत से चुनेंगे कि फिर हिम्मत छोड देगे, साहस खो देगे ? कठिन तो होगा। कठिन हो, यही तो पूरी व्यवस्था है।

पूछा है कि माला वस्त्रो के ऊपर ही पहननी क्यो जरूरी है। इच्छा पहनने की साफ है, मगर कपडो के भीतर पहनने की इच्छा है। नही, भीतर पहनने से न चलेगा, वह तो न पहनने के बराबर हो गया। वह बाहर पहनाने के लिए कारण है। कारण यही है कि तुम्हे किसी तरह भी भीड के भय से मुक्त करवाना है— किसी भी तरह। किसी भी भाँति तुम्हारे जीवन से यह चिंता चली जाए कि दूसरे क्या कहते है, तो ही आगे कदम उठ सकते है। अगर परमात्मा का होना है तो समाज से थोडा दूर होना ही पडेगा। क्योकि समाज तो बिलकुल ही परमात्मा का नही है। समाज के ढाँचे से थोडा मुक्त होना पडेगा।

न तो माला का कोई मूल्य है, न गैरिक वस्त्रो का कोई मूल्य है, अपने-आप में कोई मूल्य नही है— मूल्य किसी और कारण से है। अगर यह सारा मुल्क ही गैरिक वस्त्र पहनता हो तो मै तुम्हे गैरिक वस्त्र न पहनाऊँगा, तो मै कुछ और चुन लूंगा काले वस्त्र, नीले वस्त्र। अगर यह सारा मुल्क ही माला पहनता हो तो मै तुम्हे माला न पहनाऊँगा, कुछ और उपाय चुन लेगे।

बहुत उपाय लोगो ने चुने। बुद्ध ने सिर घोट दिया भिक्षुओ का उपाय है। अलग कर दिया। महावीर ने नग्न खडा कर दिया लोगो को उपाय है।

थोडा सोचो, जिन लोगो ने हिम्मत की होगी महावीर के साथ जाने की और नग्न खडे हुए होगे, जरा उनके साहस की खबर करो। जरा विचारो। उस साहस मे ही सत्य ने उनके द्वार पर आ के दस्तक दे दी होगी।

बुद्ध ने राजपुत्रो को, सम्पन्निशालियो को भिखारी बना दिया द्वार-द्वार का, भिक्षापात्र हाथ मे दे दिये। जिनके पास कोई कमी न थी, उन्हें भिखारी बनाने का क्या प्रयोजन रहा होगा ? अगर भिखारी होने से परमात्मा मिलता है तो भिखमगो को कभी का मिल गया होता। नही, भिखारी होने का सवाल न था— उन्हे उतार के लाना था वहाँ, जहाँ वे निपट पागल सिद्ध हो जाएँ। उन्हे तर्क की दुनिया के बाहर खीच लाना था। उन्हे हिसाब-किताब की दुनिया के बाहर खीच लाना था। जो साहसी थे, उन्होने चुनौती स्वीकार कर ली। जो कायर थे, उन्होने अपने भीतर तर्क खोज लिये, उन्होने कहा, 'क्या होगा सिर घुटाने से ? क्या होगा नग्न होने से ? क्या होगा गैरिक वस्त्र पहनने से ?'

यह असली सवाल नही है— असली सवाल यह है 'तुम मे हिम्मत है ?' पूछो यह बात कि क्या होगा हिम्मत से। हिम्मत से सब कुछ होता है। साहस के अतिरिक्त और कोई उपाय आदमी के पास नही है। दुस्साहस चाहिए !

लोग हँसेंगे। लोग मखौल उड़ाएँगे। और तुम निश्चित अपने मार्ग पर चलते जाना। तुम उनकी हँसी की फिक्र न करना। तुम उनकी हँसी से डाँवाँ-डोल न होना। तुम उनकी हँसी से व्यथित मत होना। और तुम पाओगे, उनकी हँसी भी सहारा हो गयी, और उनकी हँसी ने भी तुम्हारे ध्यान को व्यवस्थित किया, और उनकी हँसी ने भी तुम्हारे भीतर से क्रोध को व्यवस्थित किया, और उनकी हँसी ने भी तुम्हारे जीवन में करुणा लायी।

समाज के दायरे से मुक्त करने की व्यवस्था है। जिसको मुक्त होना हो और जिसे थोड़ी हिम्मत हो अपने भीतर, भरोसा हो थोड़ा अपने पर, अगर तुम बिलकुल ही बिक नहीं गये हो समाज के हाथों, और अगर तुमने अपनी सारी आत्मा गिरवी नहीं रख दी है– तो चुनौती स्वीकार करने जैसी है।

सत्य कमजोरों के लिए नहीं है, साहसियों के लिए है।

तीसरा प्रश्न सुरक्षा के लिए मुझे जो नाटक करना पड़ता है, उसे करूँ या छोड़ दूँ? और अब तो नाटक भी साथ छोड़ रहा है। मुझे सही मार्ग बताने की कृपा करें।

सारा जीवन ही एक नाटक है–सम्बंधों का, बाजार का, घर-गृहस्थी का। सारा जीवन ही अभिनय है। छोड़ कर कहाँ जाओगे? भाग कर कहाँ जाओगे? जहाँ जाओगे, वहीं फिर कोई नाटक करना पड़ेगा।

इसलिए भगोड़ेपन के मैं पक्ष में नहीं हूँ।

कुशल अभिनेता बनो। भागो मत। जान के अभिनय करो, बेहोशी में मत करो, होशपूर्वक करो। होश सधना चाहिए। हजार काम करने पड़ेंगे। और शायद उनका करना जरूरी भी है। पर होशपूर्वक करना जरूरी है। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि यह जीवन जीवन न रहा, बिलकुल नाटक हो गया, तुम अभिनेता हो गये।

अभिनेता होने का अर्थ है कि तुम जो कर रहे हो, उससे तुम्हारी एक बड़ी दूरी हो गयी। जैसे कि कोई राम का अभिनय करता है रामलीला में, तो अभिनय तो पूरा करता है, राम से बेहतर करता है, क्योंकि राम को कोई रिहर्सल का मौका न मिला होगा। पहली दफा करना पड़ा था, उसके पहले कोई किया न था कभी। तो जो कई दफे कर चुका है, और बहुत बार तैयारी कर चुका है, वह राम से बेहतर करेगा। रोएगा जब सीता चोरी जाएगी। वृक्षों से पूछेगा, 'मेरी सीता कहाँ है?' आँख से आँसुओं की धारें बहेंगी। और फिर भी भीतर पार रहेगा। भीतर जानता है कि कुछ लेना-देना नहीं है। मंच के पीछे उतर गये, खत्म हो गयी बात। मंच के पीछे राम और रावण साथ बैठ के चाय पीते हैं, मंच के बाहर

धनुष-बाण ले के खडे हो जाते हैं। मच पर दुश्मनी है, मच के पार कैसी दुश्मनी!

मैं तुमसे कहता हूँ कि असली राम की भी यही अवस्था थी। इसलिए तो हम उनके जीवन को रामलीला कहते हैं– लीला! वह नाटक ही था। कृष्णलीला! वह नाटक ही था। असली राम के लिए भी नाटक ही था।

(नाटक का अर्थ होता है जो तुम कर रहे हो, उसके साथ तादात्म्य नही है, उसके साथ एक नही हो गये हो, दूर खडे हो, हजारो मील का फासला है– तुम्हारे कृत्य में और तुम मे। तुम कर्ता नही हो, साक्षी हो—नाटक का इतना ही अर्थ है – तुम देखने वाले हो। वे जो मच के सामने बैठे हुए दर्शक है, उनमें कही तुम भी छिपे बैठे हो, मच पर काम भी कर रहे हो और दर्शको मे छिपे भी बैठे हो, वहाँ से देख भी रहे हो। भीतर बैठ कर तुम देख रहे जो हो रहा है, खो नही गये हो, भूल नही गये हो। यह भ्राति तुम्हे नही हो गयी है कि मै कर्ता हूँ। तुम जानते हो एक नाटक है, उसे तुम पूरा कर रहे हो।

तो मै तुमसे न कहूँगा कि भागो। भाग कर कहाँ जाओगे? मैं तुमसे यह कहूँगा कि भागना भी नाटक है। जहाँ तुम जाओगे, वहाँ भी नाटक है। तुम सन्यासी भी हो जाओ, तो भी मै तुमसे कहूँगा सन्यास भी नाटक है, अभिनय है। वस्त्र ऊपर ही ओढना– आतमा पे न पड जाएँ। यह रग ऊपर-ही-ऊपर रहे, भीतर न हो जाए। भीतर तो तुम पार ही रहना। सफेद कपडे पहनो कि गेरुआ पहनो कि काले पहनो, वस्त्र बाहर ही रहें, भीतर न आ जाएँ। तुम्हारी आत्मा निर्वस्त्र रहे, नग्न रहे। तुम्हारे चैतन्य पर कोई आवरण न हो। वहाँ तो तुम मुक्त ही रहो – सब वस्त्रो से, सब आकारो से)

तुम्हारा कोई नाम धाम है, उसे तुम छोड के भाग आओगे, मै तुम्हें एक नया नाम दे दूँगा, उस नाम से भी दूरी रहे, उस नाम से भी तादात्म्य मत कर लेना। पुराना नाम भी तुम्हारा नही था, यह भी तुम्हारा नही है – तुम अनाम हो। पुराने से छुडाया, क्योकि उससे तुम्हारे एक होने की आदत बन गयी थी, नया दिया, इसलिए नही कि अब इसे तुम आदत बना लो, अन्यथा यह भी व्यर्थ हो जाएगा।

अपने को दूर रखने की कला सन्यास है।
अभिनेता होने की कला सन्यास है।
जहाँ तुम कर्ता हुए, वही गृहस्थ हो गये।
जहाँ तुम द्रष्टा रहे, वही सन्यस्त हो गये।
तो कही से भागना नही है।
कही जाना नही है।
जहाँ हो वही जागना है।

' आता है जज्बे दिल को वह अन्दाजे मैकशी
रिन्दो में रिन्द भी रहें, दामन भी तर न हो । '

पीने वालो में पीने वाले भी बन गये, और दामन भी तर न हो । पियक्कडो में पियक्कड जैसे हो गये, लेकिन बेहोशी न पकडे, दाग न लगे, जागरण बना रहे । तो ससार मे जो चल रहा है – घर है, गृहस्थी है, बच्चे हैं, पत्नी है, पति है – ठीक है । भाग के भी क्या होगा ? कहाँ जाओगे ? जहाँ जाओगे, वहीं ससार है । फिर तुम अगर बिना बदले वहाँ जाओगे, तो तुम वही ससार खड़ा कर लोगे ।

ससार मे भागने का एक ही रास्ता है, वह जागना है । तो जहाँ हो, वहीं जाग जाओ । और इस तरह करने लगो जैसे यह सब नाटक है । अगर कोई व्यक्ति इतनी ही याद रख सके कि सब नाटक है, तो और कुछ करने को नही बचता । इतना ही करने जैसा है

' आशियाँ में न कोई जहमत न कफस में तकलीफ
सब बराबर है तबीयत अगर आज़ाद रहे । '

फिर कोई फर्क नही पडता, घर मे कि बाहर, घर में कि कैद में । तबीयत अगर आज़ाद रहे । और तबीयत की आज़ादी क्या है ?

साक्षी-भाव तबीयत की आज़ादी है । साक्षी पर कोई बधन नही है ।

साक्षी ही एकमात्र मुक्ति है । जहाँ तुम कर्ता बने कि तुमने जजीरें डाली । जहाँ तुमने कहा, मै कर्ता हूँ, बस वही तुम कैद में पडे । अगर तुम देखते ही रहे, अगर तुमने देखने का सातत्य रखा, अविच्छिन्न धारा रही द्रष्टा की, फिर कोई तुम पर बधन नही है । चैतन्य को न कोई बाँधने का उपाय है, न कोई जजीरे हैं, न कोई दीवाल है ।

' सब बराबर है, तबीयत अगर आज़ाद रहे । '

चौथा प्रश्न आपने कहा कि ज्ञान भक्ति के लिए बाधा है, फिर महातार्किक और महापडित चैतन्य एकदम से भक्त कैसे हो गये ?

– क्योकि वे महातार्किक थे और महापडित थे । छोटे-मोटे पडित होते तो न हो पाते । इतने बडे तार्किक थे कि उनको अपने तर्क की व्यर्थता भी दिखायी पड गयी । इतने बडे पडित थे कि अपना पाडित्य भी कचरा मालूम पडा । छोटे पडित पाडित्य मे अटके रह जाते है । छोटे तार्किक तर्क से ऊपर नही उठ पाते ।

अगर तुम सच में ही विचार करने मे कुशल हो तो आज नही कल तुम्हें विचार की व्यर्थता दिखायी पड जाएगी । वह विचार की आखिरी निष्पत्ति है । विचार के प्रति जाग जाना कि विचार व्यर्थ है – विचार का आखिरी निष्कर्ष है ।

जैसे काँटे से हम काँटा निकाल लेते हैं, ऐसा महातर्क से तर्क निकल जाता है और महाविचार से विचार निकल जाता है।

चैतन्य महापडित थे। छोटे-मोटे पडित होते तो डूब जाते। वे छोटे-मोटे पडित नही थे, नही तो अकड जाते, भूल ही जाते अपने पाडित्य मे। सच मे ही पडित थे।

पडित शब्द बडा अर्थपूर्ण है। खो गया उसका अर्थ। गलत हो गया उसका अर्थ। लेकिन शब्द बडा महत्त्वपूर्ण है। आता है प्रज्ञा से – प्रज्ञावान! जागा हुआ!

पाडित्य से पाडित्य का कोई सम्बध नही है – प्रज्ञा से है! कितना तुम जानते हो, इससे सम्बध नही है – कितने तुम जागे हुए हो।

तो चैतन्य ने देखा इतना जान लिया, कुछ भी तो हाथ न आया, सब शास्त्र देख डाले, भिखारी के भिखारी रहे, तर्क बहुत कर लिया, बहुतो को तर्क में पराजित किया, लेकिन भीतर कोई सम्पत्ति तो हाथ न लगी, भीतर का अँधेरा तो अब भी वैसा का वैसा है। तर्कजाल से ज्योति न जली, भीतर का प्रकाश न मिला। महापडित थे, बात समझ में आ गयी। फेक दी पोथी, फेक दिये तर्कजाल। बात ही छोड दी विचार की। एक क्षण मे यह क्राति घटी।

अगर तुम अभी भी उलझे हो पाडित्य में, अगर तुम अभी भी बुद्धिमानी मे उलझे हो, तो समझना कि बुद्धिमानी तुम्हारी बहुत बडी नही है, छोटी-मोटी है। अधकचरे पडित ही पडित रह जाते हैं। वास्तविक पडित तो मुक्त हो जाते है।

तो मैं तुमसे कहता हूँ, अगर तुम तर्क में अभी भी रस लेते हो, थोडा और रस लेना। जल्दी नही है कोई, अनत काल शेष है, कोई घबडाहट नही है। और थोडा रस लेना। तर्क मे और थोडी प्रगाढता पाओ। और थोडे प्रवीण हो जाओ। और थोडी गहरी सूक्ष्मता मे जाओ। एक दिन तुम अचानक पाओगे तुम्हारा तर्क ही तुम्हे उस जगह ले आया, जहाँ दर्शन हो जाते है कि तर्क व्यर्थ है। शास्त्र ही वहाँ ले आते हैं, जहाँ शास्त्र व्यर्थ हो जाते हैं। और इसके पहले भागना मत। इसके पहले भागोगे, तो तुम्हारा पाडित्य अटका ही रहेगा। तुम फिर चाहे गीत गाने लगो, भक्ति करने लगो, पूजा करने लगो – तब तुम पूजा के पडित हो जाओगे, तब तुम भक्ति के पडित हो जाओगे – लेकिन तब पडित तुम रहोगे ही, तुम निर्विकार न हो पाओगे।

उस निर्विकार को पाना हो तो विचार को उसकी आखिरी घडी तक खीच के ले जाना।

सब चीजे उम्र पा के मर जाती है। हर बच्चा अगर बीच मे ही न मर जाए तो बूढा होगा ही। हर जवानी बुढापे पे पहुँच जाती है। जैसे चीजें बढती हैं,

ढलती है। सुबह हुई, साँझ होने लगी। सुबह हुई, साँझ होने लगी! विचार किया, निर्विचार करीब आने लगा।

घबडाओ मत। थोड़े बढ़े चलो!

मैं तुममे जल्दी करने को नही कहता। यह मेरी सतत अभिलाषा है, और सतत इस पे मेरा जोर है कि तुम जल्दी मत करना – पकना। परिपक्व हुए बिना कुछ भी नही होता। परिपक्वता सब कुछ है।

तो मेरी बातें सुन के तुम तर्क मत छोड देना। मैने भी उसे पूरा करके ही छोडा। और मै जानता हूँ, जो जल्दी करके छोड देगा, अधूरे मे छोड देगा, वह अधूरा रह जाएगा। चीजो को पहुँचने दो उनकी आखिरी ऊँचाई तक, वे अपने मे ही ढल जाती हैं। तुम इतना ही कर सकते हो कि सहारा दो, पहुँचने दो उन्हे उनकी आखिरी ऊँचाई तक – वे अपने से ही गिर जाती हैं।

सुबह अपने-आप साँझ हो जाती है। तुम्हे भर-दुपहरी मे आँख बद करके साँझ बनाने की कोई जरूरत नही। भर-दुपहरी मे साँझ को विश्वास कर लेने की कोई जरूरत नही है। और ऐसी साँझ झूठ होगी। झूठ से कही कोई परमात्मा तक पहुँचा है?

अधिक लोगो की अस्तिकता झूठ है। उनके भजन-कीर्तन झूठ हैं। अभी उन्होने तर्क की कसौटी भी पूरी न की थी। अभी नास्तिक भी न हुए थे और आस्तिक हो गये। अभी इनकार भी न किया था और हाँ भर दी। अभी लडे भी न थे और समर्पण कर दिया। टक्कर देनी थी ठीक, लडना था ठीक, जूझना था। जल्दी क्या है समर्पण की?

कच्चा समर्पण काम न आएगा।

तो मै नास्तिकता सिखाता हूँ, ताकि तुम किसी दिन आस्तिक हो सको। और मे तुमसे कहता हूं, तर्क करना। मै उन कमजोर लोगो में नही हूँ जो तुमसे कहते हैं, तर्क छोडो। मे तुमसे कहता हूँ, तर्क छूट जाएगा, तुम कर तो लो। मैंने करके देखा और छूट गया। और मै उनको भी जानता हूँ, जिन्होने बिना किये छोडा और अब तक नही छूटा, कभी न छूटेगा।

जीवन अनुभव से आता है।

तुम नास्तिक हो जाओ। घबडाओ मत। इतना डर क्या है? परमात्मा है। नास्तिक होने में इतनी कोई घबडाने की जरूरत नहीं है। तुम्हारे नास्तिक होने से वह नाराज न हो जाएगा।

जीसस ने कहा है, एक बाप ने अपने बेटे को कहा कि तू जा, बगीचे मे काम कर, फसल पक गयी है। और उस बेटे ने कहा, 'अभी जाता हूं। यह गया!' लेकिन गया नही। दूसरे बेटे से कहा कि तू जा। उसने कहा कि नही, मै न

जाऊँगा, और हजार काम है। लेकिन बाद मे पछताया और गया।

तो जीसस ने अपने शिष्यो से पूछा, ' इन दोनो बेटो मे कौन बाप का प्यारा होगा – जिसने हाँ कही और नही गया, या जिसने नही की और गया ? ' जिसने नही की, और गया, वही प्यारा होगा।

तुम जरा गौर करना। अगर तुमने ' नही ' ही नही की, तो तुम्हारी ' हाँ ' नपुसक होगी। उसमें जान ही न होगी। तुमने उपचार से कह दिया। पिता कहते हैं, इसलिए कह दिया कि अच्छा जाते हैं। टालने को कह दिया।

घर के लोग मानते है कि ईश्वर है, तुमने मान लिया। परिवार, समाज मानता है, तुमने मान लिया। यह तुम्हारी मान्यता न हुई, यह सामाजिक शिष्टाचार हुआ। शिष्टाचार से तुम मस्जिद गये, मदिर गये, गुरुद्वारा गये, झुके – यह तुम मदिर-मस्जिद में न झुके, यह तुम समाज के सामने झुके, यह तुम भय से झुके कि लोग क्या कहेंगे !

लेकिन तुमने इनकार किया। तुमने कहा कि जब तक मै न समझ लूं, कैसे मानूं, तो तुमने कम-से-कम प्रमाणिकता तो घोषित की, तुमने कम-से-कम यह तो कहा कि मै बेईमानी यहाँ न करूँगा – बाजार मे कर लेता हूँ ठीक, चलती है, मदिर मे तो बेइमानी न करूँगा। यहाँ तो प्रमाणिक रहूँगा। यहाँ तो जब हाँ आएगी, तभी कहूँगा। और जब तक भीतर से न उठती हो, मेरे हृदय से न आती हो, तब तक रुकूंगा, तब तक यह गर्दन न झुकेगी।

और मै तुमसे कहता हूँ, परमात्मा तुमसे नाराज न होगा।

तुम्हारी ' नही ' ' हाँ ' की तरफ पहला कदम है। तुम चल पडे। तुमने कम-से-कम प्रमाणिक होने का पहला कदम तो उठाया। और जिसने ठीक से ' नहीं ' कही, वह एक-न-एक दिन ' हाँ ' कहेगा, क्योकि कौन ' नही ' मे जी सकता है, कब तक जी सकता है ! नकार में जीने का कोई उपाय नही। ' नही ' से किसी का भी पेट नही भरता और ' नही ' से न खून बनता है, और न आत्मा में प्राण आते हैं, न श्वासें चलती है।

' हाँ ' चाहिए ! परम आस्था चाहिए, तभी जीवन का फूल खिलता है। ' नही ' तुम कहो आज नही कल, तुम खुद ही अपनी ' नही ' से घबडा जाओगे, आज नही कल, तुम्हारी ' नही ' तुम्हे ही काटने लगेगी, सालने लगेगी। तभी ठीक क्षण आया उसे गिराने का।

चैतन्य महापडित थे, महातार्किक थे – इसीलिए एक दिन भक्त हो सके।

भक्ति कोई सस्ती बात नही है। वह तर्क के आगे का कदम है। वह तर्क के आगे की मजिल है। काव्य कोई छोटी बात नही, वह गणित से पार की समझ

है। वह आखिरी मंजिल है, फिर उसके आगे कोई मजिल ही नही। और सब मजिलें उसके पहले ही पूरी हो जाती हैं।

तो अगर तुम्हारा मन अभी भी तर्कजाल में उलझा हो, पांडित्य में उलझा हो, शास्त्र मे उलझा हो, तो यही समझना कि पडित तुम अधकचरे हो, ज्ञान बचकाना है। थोडा और बढ़ाओ इसे। प्रौढ होते ही ज्ञान वैसे ही गिर जाता है, जैसे पका हुआ फल वृक्ष से।

पाँचवाँ प्रश्न: सैकडो बार भ्रम के टूटने पर भी भरोसा नही आता। क्या करूँ? कैसे भरोसा वापस लौटे?

सैकडो बार भ्रम टूटा है – यह प्रतीति भ्रामक मालूम होती है। सच में न टूटा होगा। तुमने बिना टूटे मान लिया होगा कि टूटा। भ्रम न टूटा होगा। तुमने जल्दी कर ली होगी। कुछ और टूटा होगा और तुमने सोचा, भ्रम टूटा।

समझो एक स्त्री के प्रेम में तुम पडे और दुख पाया। तुम सोचते हो भ्रम टूटा? गलत बात है। इस स्त्री से सम्बध टूटा, भ्रम नही टूटा, क्योंकि भ्रम का इस स्त्री से कोई सम्बध नही है। अब तुम्हारा मन किसी दूसरी स्त्री की तलाश कर रहा है। भ्रम जारी है। दूसरी स्त्री से सम्बध बन गया, फिर दुख पाया – तुम सोचते हो, भ्रम टूटा? गलती हुई है, भ्रम नही टूटा। मन अब तीसरी स्त्री की तलाश कर रहा है। मन कहे जाता है कि जब तक ठीक स्त्री न मिलेगी, तब तक खोजे चले जाओ, इस बडी पृथ्वी पर जरूर कही-न-कही कोई ठीक स्त्री होगी जो तुम्हे सुख देगी। भ्रम वह है।

एक स्त्री, दो स्त्री, तीन नही, लाखो स्त्रियो से तुम लाखो जन्मो में सम्बध बना चुके और टूट चुके, लाखो पुरुषो से सबध बन चुके, टूट चुके – भ्रम नहीं टूटा है। इस स्त्री से टूटा – स्त्री से नही टूटा है। इस पुरुष से टूटा – पुरुष से नही टूटा है। और जब तक पुरुष से न टूटे, स्त्री से न टूटे, तब तक भ्रम कायम है, भ्रम जारी है।

तुमने दस हजार रुपये कमाने की आशा बाँधी थी, कमा लिये, सोचा था, सब मिल जाएगा – कुछ भी न मिला। अब तुम सोचते हो, बीस हजार होने चाहिए।

तुम कहते हो, भ्रम टूटा? भ्रम नही टटा। भ्रम कायम है। आगे सरक गया है। दस से बीस पे पहुँच गया। एक से दूसरे पे हट गया। एक आकांक्षा से दूसरी आकाँक्षा पे सरक गया। लेकिन भ्रम जिंदा है।

ऐसा भी हो जाता है कि तुम्हारा सारी ससार की इच्छाओ से मन ऊब गया, तब तुम स्वर्ग की इच्छा करने लगते हो। अब भी भ्रम नही टूटा। अब

तुमने स्वर्ग मे प्रक्षेपण किया सारी आकांक्षाओ का। जो तुम्हें यहाँ नही मिला, अब तुम वहाँ माँगने लगे।

भ्रम टूट जाए तो सैंकडो बार नहीं टूटता, एक ही बार टूट जाए तो बस समाप्त हो जाता है। जो सैंकडो बार भी टूट के और नही टूटता, समझना कि भल हो रही है।

'रेगजारो मे बगूलो के सिवा कुछ भी नही।'

—रेगिस्तानो में आँधी और बगूलो के सिवा कुछ भी नही है।

'रेगजारो मे बगूलो के सिवा कुछ भी नही
साया-ए अब्रे-गुरेजा से मुझे क्या लेना!'

— और ज्यादा-से-ज्यादा जो छाया मिल सकती है रेगिस्तान मे, वह आकाश मे भागती हुई बदलियो की छाया है।

अगर यह समझ मे आ गया कि आकाश मे भागती बदलियो की छाया में कितनी देर टिकोगे, तो फिर तुम जागोगे।

यहाँ सभी छायाए आकाश मे भागती बदलियो की छायाएँ है। और जहाँ तुमने मरूद्यान समझे है, वहाँ भी रेगिस्तान है। और जहाँ तुमने वसत समझे हैं वहाँ भी पतझड छिपे है। जहाँ तुमने जीवन समझा है, वह केवल मौत का एक ढग है।

'ऐ दिल तुझे रोना है तो जी खोल कर रो ले
दुनिया से बढ कर न कोई वीराना मिलेगा।'

पर भ्रम अभी टूटे नही है।

भ्रम के भी टूटने का भ्रम होता है। वही हुआ है।

तो क्या करो?

अब दुबारा इस भ्रम में मत आना कि भ्रम टूट गया। इतना तो करो, शेष अपने से होगा। जब तक भ्रम न टूटे, तब तक यह भ्रम मत पालना कि भ्रम टूट गया है।

मेरे पास लोग आते है, वे कहते है, 'क्रोध करके देख लिया है, कोई सार न पाया। फिर क्रोध जाता नही।' तो मैं उनसे कहता हूँ, 'जरूर कुछ सार पाया होगा। झूठ कहते हो। नही तो चला जाता। यह जो तुम कहते हो कि कुछ सार न पाया, यह बुद्धिमानी बता रहे हो। लेकिन अगर कुछ सार न पाया हो तो रेत से कौन तेल निकालता रहता है? कोई भी नही निकालता। दीवाल से कौन निकलने की कोशिश करता है? कोई भी नही करता। एकाध बार करे भी तो सिर टकरा जाता है, रास्ते पे आ जाती है अक्ल, दरवाजे से निकलने लगता है।'

लोग कहते हैं, कामवासना से कुछ भी न पाया, लेकिन फिर भी मन छूटता नही। जरूर पाया होगा।

इस भ्रम को छोड़ो।

उधार बुद्धिमानी काम न आएगी। जीवन के अनुभव से जो मिले वही सच है। इस उधार बुद्धिमानी के कारण असली बुद्धिमानी पैदा नही हो पाती।

तुमसे मै कहता हूँ, क्रोध ठीक से करो, पूरी तरह करो, होशपूर्वक करो, देखते हुए करो कि क्या मिल रहा है, मिल रहा है कुछ या नही। अगर कुछ भी न पाओगे तो क्रोध समाप्त हो जाएगा, तुम्हें समाप्त करना न पड़ेगा।

कामवासना मे उतरो – पूरे होशपूर्वक! देखो कुछ मिल रहा है? जाग के, स्मरणपूर्वक! शास्त्रो की मत सुनो। साधुओ की बकवास में मत पड़ो। तुम्हारा अनुभव ही तुम्हारे काम आएगा।

उधार ज्ञान बाधा बन जाता है। उससे वास्तविक ज्ञान के जन्म मे असुविधा होती है। उधार ज्ञान हटा दो। कामवासना बुरी है – ऐसा भी मत सोचो। जब तक तुम्हारे लिए बुरी नही है, तब तक कैसे बुरी है? व्यर्थ है – ऐसा भी मत सोचो। जब तक तुम्हारे अनुभव में व्यर्थ नही, तब तक कैसे व्यर्थ है? कौन जाने, ठीक ही हो!

निष्पक्ष मन से, कोरे और खाली मन से जाओ, धारणाएँ लेकर नही – और तब तुम अचानक हैरान होओगे जो शास्त्रो ने कहा है, वह जीवन तुमसे कह देता है। और जब जीवन का शास्त्र तुमसे कहता है, तभी क्राति घटित होती है, उसके पहले नही।

आखिरी प्रश्न : आपने कहा था कि भक्त कण-कण मे भगवान को देखता है। लेकिन जिसे सिर्फ आपका पता है, कण मे बसने वाले भगवान का नही, उसके लिए क्या साधना होगी?

'तलाशो जुस्तजू की सरहदे अब खत्म होती हैं
खुदा मुझको नजर आने लगा इसाने-कामिल में।'

अगर तुम्हे एक आदमी की पूर्णता मे भी परमात्मा नजर आने लगे तो खोज समाप्त हो गयी। अगर तुम्हे मुझमें भी नजर आने लगे तो बात समाप्त हो गयी। फिर मैं खिड़की बन जाऊँगा। तुम फिर मेरे पार देखने मे समर्थ हो जाओगे।

नही, मै तुमसे कहता हूँ, तुम्हे मुझ मे भी नजर न आया होगा। तुमने मान लिया होगा। तुमने स्वीकार कर लिया होगा। नजर न आया होगा। तुम्हारे भीतर अब भी कही सदेह खड़ा होगा। वही सदेह तुम्हारी आँख पे परदा बना रहेगा।

अगर तुम्हें एक में नजर आ गया, तो बात खत्म हो गयी, फिर सब मे नजर आने लगेगा।

यह तो ऐसे ही है, जिसने सागर का एक चुल्लू पानी चख लिया, उसे पता चल गया कि सारा सागर खारा है।

तुमने अगर मुझ में परमात्मा चख लिया तो तुमने सारे परमात्मा के सागर को चख लिया। फिर असम्भव है। यह तो कसौटी है, अगर तुम्हे एक मे नजर आया तो सब मे नजर आने लगेगा। अगर सब मे नजर न आ रहा हो तो जिस एक मे तुम्हें नजर आया, वह भी तुमने मान लिया होगा, भीतर सदेह को दबा दिया होगा, लेकिन भीतर तुम्हारी बुद्धि कहे जा रही होगी परमात्मा, भगवान, भरोसा नही आता!

तो फिर से गौर से देखो। मुझ मे उतना देखने का सवाल नही है, असली परदा तुम्हारे भीतर है। तुम्हारी आँख पर सदेह का परदा है, तो वृक्षो में नही दिखायी पडता, चाँद तारो मे नही दिखायी पडता। सब तरफ वही मौजूद है, पत्ती पत्ती मे! उसके बिना जीवन हो नही सकता। जीवन उसका ही नाम है। या जीवन का परमात्मा नाम है। तुम 'परमात्मा' शब्द छोड दो भी तो हर्जा नही, 'जीवन' शब्द याद रखो। जहाँ जीवन दिखायी पडे वही झुको।

जीवन को जरा देखो! एक बीज से फूटती हुई कोपलो को देखो! बहते हुए झरने को देखो! रात के सन्नाटे, चाँद-तारो को देखो! किसी बच्चे की आँख में झाँको! सब तरफ वही है!

परदा तुम्हारे भीतर है। परदा तुम हो।

'तू-ही-तू हो, जिस तरफ देखें उठा कर आँख हम
तेरे जल्वे के सिवा पेशे-नजर कुछ भी न हो।'

मगर यह परमात्मा के हाथ में नही है। अगर यह उसके हाथ मे होता तो परदा कभी का उठा दिया गया होता। यह तुम्हारे हाथ में है। यह परदा तुम हो। और तुम जब तक न उठाओ अपना परदा तब तक तुम्हें कही भी दिखायी न पड़ेगा।

और मैं तुमसे कहता हूँ, एक जगह दिखायी पड जाए तो सब जगह दिखायी पड गया। जिसे मदिर मे दिखा उसको मस्जिद मे भी दिख गया। देखने की आँख आ गयी, बात समाप्त हो गयी। जिसको एक दीये मे रोशनी दिख गयी, क्या उसे सूरज की रोशनी न दिखेगी?

लेकिन अधा आदमी! वह कहता है, दीये में तो दिखती है, लेकिन सूरज की नही दिखती। तो हम क्या कहेंगे? हम कहेगे, तूने दीये की मान ली। तूने अपने को समझा-बुझा लिया। तू फिर से देख। इस धोखे में मत पड।

तो मैं तुमसे कहता हूँ, फिर से मेरी आँखो मे देखो, फिर से मेरे शून्य मे झाँको! अगर सदेह के बिना देखा, अगर भरोसे से देखा, तो एक झलक काफी है। फिर उस झलक के सहारे तुम सब जगह खोज लोगे। फिर तुम्हारे हाथ मे कीमिया पड गयी, तुम्हारे हाथ में कुजी आ गयी।

इतना ही अर्थ है गुरु का कि उससे तुम्हे पहली झलक मिल जाए कि कुजी हाथ आ जाए, फिर सब ताले उस कुजी से खुल जाते हैं।

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

दिनांक १९ जनवरी, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना

तस्या साधनानि गायन्त्याचार्य ॥ ३४ ॥

तत्तु विषयत्यागात् सगत्यागाच्च ॥ ३५ ॥

अव्यावृतभजनात् ॥ ३६ ॥

लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात् ॥ ३७ ॥

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा ॥ ३८ ॥

महत्सगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥ ३९ ॥

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ॥ ४० ॥

तस्मिस्तज्जने भेदाभावात् ॥ ४१ ॥

तदेव साध्यता तदेव साध्याताम् ॥ ४२ ॥

हृदय का आन्दोलन है भक्ति

पहला सूत्र 'तस्या साधनानि गायन्त्याचार्या ।'

जितने भी हिन्दी में अनुवाद हैं, वे सभी कहते हैं 'आचार्यगण उस भक्ति के साधन बतलाते हैं ।' मूल सूत्र कहता है आचार्यगण उस भक्ति के साधन गाते हैं । और भेद थोडा नही है । बतलाना बतलाना ही है– गाना बात और ! गाने में कुछ खूबी छिपी है ।

भक्ति बोलती नहीं–गाती है ।

भक्ति बोलती नही–नाचती है ।

नृत्य में और गीत में ही उसकी अभिव्यक्ति है ।

वेदात बोलता है, भक्ति गाती है ।

गाने का अर्थ हुआ भक्ति का सम्बध तर्क से नही, विचार से नहीं–हृदय और प्रेम से है । भक्ति का सम्बध कुछ कहने से कम, कहने के ढग से ज्यादा है ।

भक्ति कोई गणित की व्यवस्था नही है–हृदय का आदोलन है । गीत में प्रगट हो सकती है ।

भाषा तो वैसे ही कमजोर है । फिर भाषा में ही चुनना हो तो भक्ति गद्य को नही चुनती, पद्य को चुनती है । ऐसे तो पद्य से भी कहाँ कहा जा सकेगा–लेकिन शब्दो के बीच मे लय को समाया जा सकता है । शब्द से न कहा जा सके, लेकिन शब्दो के बीच समाहित धुन से शायद कहा जा सके ।

तो भक्त के जब शब्द सुनो तो शब्दो पर बहुत ध्यान मत देना । भक्त के शब्दो मे उतना अर्थ नहीं है जितना शब्दो की धुन में है, शब्दो के सगीत में है । शब्द अपने-आप मे तो अर्थहीन हैं । जिस रग मे और जिस रस में लपेट कर शब्दो को भक्त ने पेश किया है, उस रग और रस का स्वाद लेना ।

लेकिन अक्सर अनुवाद में मूल खो जाता है, और कभी-कभी तो इतनी सरलता से खो जाता है कि खयाल में भी नही आता । क्योकि हम सोचते हैं कि इसमे क्या फर्क पडता है कि आचार्यों ने गाया कि आचार्यों ने कहा, बात तो एक ही है ।

बात ज़रा भी एक ही नही है—बात बडी भिन्न है । आचार्यों ने गाया, भक्ति के आचार्यों ने गाया—कहा नही । और ज़ोर धुन पर है, सगीत पर है । ज़ोर शब्द पर नही, शब्द के अर्थ पर नही, शब्द की तर्कनिष्ठा पर नही ।

पक्षियो के गीत जैसे है भक्तो के शब्द ! तुम उन्हें सुन के आनदित होते हो । कोई अर्थ पूछे तो न बता सकोगे । लेकिन अर्थ की चिंता ही कौन करता है, जिसे आनद मिलता हो ! आनद अर्थ है !

अँगरेजी के महाकवि 'शैली' से किसी ने पूछा कि तुम्हारे एक गीत को मैं पढ रहा हूँ, समझ में नही आता, मुझे अर्थ समझा दो । शैली ने कधे बिचकाये, कहा, 'मुश्किल ! जब लिखा था तब दो आदमी जानते थे, अब एक ही जानता है।'

उसने पूछा, 'वे कौन दो आदमी थे ? तो मैं दूसरे से पूछ लूं, अगर तुम भूल गये हो । लेकिन तुमने ही लिखा है तो तुम अर्थ कैसे भूल गये ।'

शैली ने कहा, 'जब लिखा, तब मै और परमात्मा जानते थे, अब सिर्फ परमात्मा ही जानता है । मैं तुम्हें न बता सकूंगा । मुझे ही याद नही । जैसे एक ख्वाब देखा था ! भनक रह गयी है कान में । रस भी रह गया है कही गूँजता, लेकिन अर्थ खो गये हैं ।'

फिर शैली ने कहा, 'अर्थ का करोगे भी क्या ? गुनगुनाओ !'

गीत गाने के लिए है । जो गीत में अर्थ देखने लगा, वह वैसा ही नासमझ है, जो जा के फूल से पूछे कि तेरा अर्थ क्या । फूल का रस देखो ! रग देखो ! फूल की गध देखो ! अर्थ पूछते हो ?

परमात्मा अर्थातीत है । इसलिए भक्तो ने कहा नही—गाया । क्योंकि कहने में अर्थ ज़रा ज़रूरत से ज्यादा हो जाता है । गाने मे अर्थ गौण हो जाता है, रस प्रमुख हो जाता है ।

भक्ति है रस । भक्ति कोई ज्ञान नही, कहने-सुनने की बात नहीं — डूबने, मिटने की बात है ।

इसलिए मैं अनुवाद करूँगा 'आचार्यगण उस भक्ति के साधन गाते हैं ।' गाने में ही साधन को बतलाते हैं । अगर तुमने गाने को समझ लिया, अगर उनके गीत के रस को पकड लिया, तो उन्होंने सब बता दिया । क्योंकि फिर वे जो साधन बतलाते हैं, वे साधन भी क्या हैं ? वे साधन हैं ' भजन, कीर्तन, उसकी कथा में रस, श्रवण । वे सब उसी रस के विस्तार हैं ।

'वह भक्ति विषय-त्याग और सग-त्याग से सम्पन्न होती है ।'

इस सूत्र को बारीकी से समझना, क्योंकि योग भी यही कहता है । तो फिर योग और भक्ति मे भेद कहाँ होगा ? योग भी कहता है विषय-त्याग और सग-त्याग से । विषयो को छोडना है । विषयो की आसक्ति छोडनी है । त्यागी भी

यही कहता है और भक्त भी यही कहता है। दोनो के अर्थ तो एक नहीं हो सकते, क्योंकि दोनो के आयाम अलग हैं। शब्द एक होंगे, अर्थ तो अलग हैं।

तो थोड़ा समझें।

त्याग दो तरह के हो सकते हैं। एक तो त्याग होता है, बिना भूमिका बदले भाग जाना। एक आदमी घर में है, गृहस्थ है। वह अपनी चेतना को तो नही बदलता, घर छोड देता है, पत्नी-बच्चे छोड देता है, जगल की तरफ चला जाता है। भूमिका नही बदली, चेतना का तल नही बदला – स्थान बदल लिये। स्थिति नही बदली – स्थान बदल लिया। मन स्थिति नही बदली – आसपास की जगह बदल ली। वह जा के जगल में बैठ जाए, जल्दी ही वहाँ फिर गृहस्थी खडी हो जाएगी। क्योंकि गृहस्थी का जो 'ब्लू प्रिंट' है, वह उसकी चैतन्य की दशा में है, वह उसे साथ ले आया। वहाँ भी गृहस्थी इसी ने बनायी थी। वह कुछ आकस्मिक आकाश से न उतर आयी थी। किसी शून्य से उसका आविर्भाव न हुआ था। इसके ही चैतन्य मे, इसकी ही चेतना के भीतर छिपे बीज थे – वे प्रगट हुए थे।

पत्नी आकाश से नही आती – पति के भीतर छिपे राग से खिचती है। पति आकाश से नही आता – पत्नी के भीतर छिपे राग से आता है। तुम उसी को अपने पास बुला लेते हो जिसकी गहन आकाँक्षा तुम्हारे भीतर छिपी है। वही तुम्हे मिल जाता है जो तुम चाहते हो। चाहे तुम्हें पता न हो, चेतन हो अचेतन हो, होश में माँगा हो बेहोशी में मागा हो – तुम्हे वही मिलता है जो तुमने माँगा है। तुम्हारे पास वही सरक के चला आता है जो तुमने चाहा है।

तुम चुबक हो। और तुम्हारा चुबक तुम्हारी चेतना की स्थिति में है। अब अगर एक चुबक लोहे के कणों को खीच लेता हो, फिर लोहे के कणों से परेशान हो जाए, भाग जाए जगल – क्या फर्क पडेगा ? चुबक चुबक रहेगा। वहाँ भी लोह-कणो को खीचेगा। यह भी हो सकता है कि लोह-कण पास न हो, तो चुबक कुछ भी न खीच पाये, लेकिन इससे क्या चुबक चुबक न हो जाएगा ? चुबक चुबक ही रहेगा। लोह-कण होंगे तो खीच लेगा, न होंगे तो न खीचेगा, लेकिन इससे कोई चुबक के जीवन में क्रांति न हो जाएगी।

तो एक तो त्याग है जो पलायनवादी का है, भगोडे का है। भक्त को उस त्याग में कोई रस नही है। वह त्याग ही नहीं है। उसको त्याग ही कहना पहले तो गलत है। वह छोड़ना है, त्याग नही; भागना है, मुक्ति नहीं है।

फिर एक त्याग है चेतना के तल को बदलने से तुम जैसे हो अभी उससे ऊपर उठते हो। जैसे ही ऊपर उठते हो, तुम्हारे आसपास का सारा ससार वैसा ही बना रहे, कोई फर्क नहीं पडता – तुम वैसे ही नही रह गये। संसार मे रहो तो भी ससार अब तुम मे नही है। तुम चुबक न रहे। तुमने चुबकत्व छोड़ दिया।

अब लोहे के टुकडे पास ही पडे रहें, पुराने समय में खीचे थे जब तुम चुबक थे, अब भी पास पडे रहेंगे, लेकिन अब तुम चुबक नही हो – अब तुम में खीच न रही, आकर्षण न रहा। इसका नाम ही सग-त्याग है। पास तो हैं, लेकिन तुम बडे दूर हो गये। घर में ही हो, लेकिन घर मे न रहे। दुकान पर बैठे हो, दुकान में न रहे।

ससार से भागना एक बात है – वह त्याग नही है। ससार से उठना दूसरी बात है – वह त्याग है।

ऊपर उठो। भूमिका बदलो।

इसलिए भक्तो ने भागने का आग्रह नही किया।

जीवन को न तोडना है, न मिटाना है, न बदलना है – चैतन्य के रूप को नया करना है। तुम्हारे भीतर की ज्योति को थोडा बडा करना है तुम थोडे ऊपर खडे हो कर देख सको, तुम्हारी दृष्टि का विस्तार थोडा बडा हो जाए।

तो चेतना के एक-एक तल से दूसरे तल पर जाना! चेतना के एक सोपान से दूसरे सोपान पर जाना! वही त्याग है।

'वह भक्ति विषय त्याग और सग-त्याग से सम्पन्न होती है।' – तो तुम भक्त हो।

इसे हम ऐसा समझे कि तुम जहाँ खडे हो, वहाँ ससार है। अगर तुम स्थान को बदल लो, तुम ससार में ही कही दूसरी जगह खडे हो जाओगे। परमात्मा से तुम्हारी दूरी उतनी ही रहेगी जितनी पहले थी। हिमालय परमात्मा से उतना ही दूर है जितना तुम्हारी दुकान और बाजार की जगह। हिमालय परमात्मा के जरा भी पास नही।

लेकिन अगर तुम अपनी चेतना के तल को बदलो तो तुम ससार से दूर होने लगते हो और परमात्मा के पास होने लगते हो।

एक हिमालय तुम्हे चढना है जरूर – लेकिन वह हिमालय तुम्हारे भीतर की शीतलता का है, वह तुम्हारे भीतर की शाति का है, वह तुम्हारे भीतर के मौन का है। एक गौरीशकर की यात्रा करनी है जरूर – लेकिन वह गौरीशकर बाहर नही है, वह तुम्हारी अन्तरात्मा का शिखर है। भीतर ऊपर उठना है। बाहर तो जहाँ हो, ठीक हो। बाहर से कुछ भी भेद नही पडता।

'विषय-त्याग और सग-त्याग से भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति सधती है।'

भक्ति का अर्थ है परमात्मा और तुम्हारे बीच की दूरी कम हो जाए। भक्ति तुम्हारे और परमात्मा के बीच की दूरी के कम होने का नाम है। दूरी कम होती जाए, तो भक्ति सघन होती जाती है। एक दिन दूरी पूरी मिट जाती है, अनन्यता हो जाती है, तो भक्त भगवान हो जाता है, भगवान भक्त हो जाता है। तब 'द्वि' नही रह जाती। तब दोनो किनारे खो जाते हैं एक में ही।

इसलिए भक्त के त्याग की सूक्ष्मता को खयाल में रखना। साधारण त्यागी का त्याग सीधा-साफ है, भक्त का त्याग बड़ा सूक्ष्म है। साधारण त्यागी भागता है; भक्त रूपान्तरित होता है। इसलिए भक्त को शायद तुम पहचान भी न पाओ -- साधारण त्यागी को कोई भी पहचान लेगा। उसकी पहचान बड़ी ऊपरी है घर-द्वार छोड़ दिया, काम-धंधा छोड़ा। जिसे तुम ससार कहते थे, उसे छोड़ दिया, जगल में चला गया। इसे पहचानने में अड़चन न आएगी। भक्त जहाँ है वहीं है। चैतन्य बदलता है। रूपान्तरण बड़ा सूक्ष्म है और भीतरी है। ऊपर से तो वैसा ही रहता है, कानोंकान किसी को खबर नहीं होती। लेकिन भीतर एक हीरे का जन्म होने लगता है। भीतर एक निखार आता है। चेतना की लौ थमती है, अकंप जलती है। इसे देखने के लिए तुम्हें भी थोड़ा-सा भीतर झाँकना पड़े ।

और जब तक ऐसा न हो पाए तब तक तुम्हारी जिंदगी कहने को ही जिंदगी है, नाममात्र की जिंदगी है। जरा भी मूल्य नहीं उसका--दो कौड़ी भी मूल्य नहीं। चाहे तुम्हारी जिंदगी सिकंदर की जिंदगी ही क्यों न हो, फिर भी दो कौड़ी मूल्य नहीं। क्योंकि मूल्य तो अन्तरात्मा का होता है। तुमने बाहर क्या किया, इससे कुछ मूल्य का सम्बध नहीं--तुम भीतर क्या हुए ।

'भटक के रह गयी नजरें खला की वुसअत में
हरीमे-शाहिदे-रअना का कुछ पता न मिला
तवील राहगुजर खत्म हो गयी, लेकिन
हनोज अपनी मुसाफत का मुन्तहा न मिला।'
--जैसे शून्य की विशालता में आँखें भटक जाएँ ..।

'भटक के रह गयी नजरें खला की वुसअत मे!'

शून्य ने तुम्हें घेरा है। विराट है शून्य। रिक्तता है एक। उसमें आँखें खो के रह गयी हैं।

'हरीमे-शाहिदे-रअना का कुछ पता न मिला।'

प्रेमी के घर का, प्रेयसी के घर का कुछ भी पता नहीं चलता, कहाँ है। एक रेगिस्तान में--रिक्तता के--खो गये हो।

'तवील राहगुजर खत्म हो गयी ।'

कठिन थी राह जिंदगी की, वह भी खत्म हो गयी...

'लेकिन, हनोज अपनी मुसाफत का मुन्तहा न मिला।'

लेकिन आज तक यह ठीक से पता न चला कि हम यात्रा क्यों कर रहे थे। यात्रा खत्म भी हो गयी, कठिन भी बहुत थी, लेकिन अब तक यह भी साफ न हो सका कि मुद्दा क्या था, मंजिल क्या थी, जाते कहाँ थे। प्रेयसी के या प्रेमी के घर की कोई झलक भी न मिली।

जब तक तुम्हारे चैतन्य की भूमिका न बदले, तब तक यही कथा है सभी की एक रिक्तता मे खो जाते हैं, जैसे कोई भूली-भटकी नदी है और रेगिस्तान में समा जाए, और सागर का कोई रास्ता न मिले, तपती धूप मे, जलती आग में, बूंद-बूंद करके, तडफ-तडफ के उड जाए, भाप बन जाए

'हरीमे-शाहिदे-रअना का कुछ पता न मिला !'

—सागर मे मिलने का, सागर के साथ मिलन का, सागर के साथ एक हो जाने का कोई पता न मिले— ऐसी ही साधारण ज़िंदगी है ।

जिसे तुम भोगी की ज़िदगी कहते हो, उसे भोगी की ज़िदगी कहना ठीक नही, भोग जैसा वहाँ कुछ भी नही है । भक्त भोगता है, भोगी क्या भोगेगा ? (जिसको तुम भोगी कहते हो, वह तो भोग के नाम पर सिर्फ धक्के खाता है । भोग की सोचता है, माना, भोगता कभी नही । भोग तो उसी के लिए है जिसे भगवान के हाथ का सहारा मिला । भोग सिर्फ भगवान का है । जिसने उस स्वाद को न जाना, वह केवल बिखरने और मिटने और रोज मरने को ही ज़िंदगी समझ रहा है ।

नहीं, ऐसी ज़िंदगी मे न तो किसी अर्थ का पता चलेगा । ऐसी ज़िदगी में मंजिल की कोई खबर न मिलेगी । चले थे क्यो, जाते थे कहाँ, थे क्या—सब धुधला-धुधला, सब अँधेरा-अँधेरा रहेगा । पर ज़िदगी की राह बडी कठिन है और परिणाम कुछ भी हाथ न आएगा ।)

जिसे तुम भोगी कहते हो, उसे वस्तुत त्यागी कहना चाहिए । किसी दिन अगर भाषा का फिर से संशोधन हो तो जिसको तुम भोगी कहते हो, उसको त्यागी कहना चाहिए, और जिसको त्यागी कहते हैं, उसको भोगी कहना चाहिए । क्योकि त्यागी ही जानता है कि भोग क्या है । और भोगी तो सिर्फ तडफता है, सिर्फ सोचता है, सपने बनाता है, बडे इन्द्रधनुषी सपने बनाता है, बडे रंगीन— मगर पकडो तो हाथ मे राख भी हाथ नही आती, खाली हाथ खाली के खाली रह जाते हैं ।

'अपने सीने से लगायें हुए उम्मीद की लाश
मुद्दतें जीस्त को नाशाद किया है मैंने ।'

बस एक लाश लगाये हुए हैं उम्मीद की छाती से—वह भी लाश है आशा की कि मिलेगा कुछ, मिलेगा कुछ !

'अपने सीने से लगाये हुए उम्मीद की लाश !'

सब आशा मुर्दा है, कभी कुछ मिलता नही—बस मिलने का खयाल है, भरोसा है आज नही मिला, कल ! कल भी यही होगा । और तुम्हारी आशा फिर आगे कल के लिए स्थगित हो जाएगी । पीछे कल भी यही हुआ था । तब तुमने आज पर छोड दिया था, आज भी वही हो रहा है । ऐसे क्षण-क्षण करके जीवन रिक्त होता चला जाता है, और तुम उम्मीद की लाश को लिये ढोते फिरते हो ।

तुमने कभी देखा, बदरो में अक्सर हो जाता है' छोटा बच्चा मर जाता है तो बदरिया उसकी लाश को लिये सप्ताहो तक छाती से चिपटाये घूमती रहती है! तुम्हें देख के उसे, हँसी आयेगी। और जिस दिन तुम अपनी तरफ देखोगे, उस दिन तो तुम्हे भरोसा ही न आएगा कि उम्मीद की लाश तो तुम मुद्दतो से, जिंदगियो से.. । वह बदरिया का बच्चा तो कभी जिंदा भी था, उम्मीद कभी भी जिंदा न थी। वह सदा से ही लाश है। लाश होना उसका स्वभाव है।

'अपने सीने से लगाये हुए उम्मीद की लाश
मुद्दतें जीस्त को नाशाद किया है मैंने।'

—और इस उम्मीद की लाश के कारण न मालूम कितने काल से जिंदगी को व्यर्थ ही खिन्न करता रहा हूँ।

आशा बनाते हो, आशा फिर बिखरती है, टूटती है— दुख पाते हो। फिर आशा बनाते हो, फिर बनाते हो ताश के पत्तो का घर— फिर हवा का एक झोंका, और सब गिर जाता है। फिर बहाते हो कागज की एक नाव— फिर जरा-सी लहर, और नाव डूब जाती है। लाश को ढोते हो, उसका वजन भी, उसकी दुर्गंध भी, उसका बोझ भी— और फिर, उसके कारण जिंदगी रोज-रोज खिन्न होती है, उदास होती है।

तुम निराश क्यो होते हो बार-बार?

—आशा के कारण।

धन्यभागी हैं वे जिन्होंने आशा छोड दी, फिर उन्हे कोई निराश न कर सकेगा! जिन्होने आशा ही छोड दी, उनके निराश होने की बात ही समाप्त हो गयी।

भोगी आशा में जीता है। आशा मुर्दा है। उससे न कभी कुछ पैदा हुआ न कभी कुछ पैदा होगा— आशा बाँझ है, उसकी कोई सतान नही।

तो क्या तुम सोचते हो, भक्त कहते है कि निराशा मे जियो? नही, भक्त कहते हैं कि आशा और निराशा तो एक ही सिक्के के पहलू हैं — तुम परमात्मा में जियो!

परमात्मा अभी और यहाँ है, आशा, कल और वहाँ, कही और। अगर ठीक से समझो तो आशा का नाम ही ससार है। ससार सदा वहाँ, कही और, परमात्मा अभी और यहाँ, इस क्षण! इस क्षण उसने तुम्हें घेरा है। इस क्षण सब तरफ से उसने तुम्हे घेरा है। हवाओं के झोकों में, सूरज की किरणो मे, वृक्षो के सायो में — उसने ही तुम्हें घेरा है।

तुम्हारे चारो तरफ जो लोग बैठे है, वे भी परमात्मा के रूप हैं, उन्होने तुम्हें घेरा है। वही तुम्हें पुकार रहा है। वही तुम्हारे भीतर श्वास बन के चल रहा है।

परमात्मा अभी है, परमात्मा कभी उधार नही।

स्वामी राम कहते थे परमात्मा नगद है। वह अभी और यहाँ है। ससार उधार है, वह कल और वहाँ है। कल और वहाँ को भोगोगे कैसे ? भविष्य को कोई कैसे भोग सकता है, कहो। भविष्य को भोगने का उपाय कहाँ है ? भविष्य है नही अभी, तुम उसे भोगोगे कैसे ? केवल वर्तमान भोगा जा सकता है।

ससार के त्याग का अर्थ है भविष्य का त्याग। ससार के त्याग का अर्थ है भविष्य के नाम पर जिस भोग को हम स्थगित करते जाते थे, उसका त्याग। ससार के त्याग का अर्थ है इस क्षण में — इस जीवत क्षण में — जागना। वही से भोग शुरू होता है।

भक्त भगवान को भोगता है। ससारी केवल भोगने की सोचता है। तुम सोचने के भ्रम मे मत आ जाना। वस्तुत सोचता वही है जो भोग नही पाता है। विचार वही करता है जो भोग नही पाता है। योजना वही बनाता है जो भोग नही पाता है। कल की कल्पना वही सँजोता है जो भोग नही पाता है। जो अभी भोग रहा हो, वह कल की बात ही क्यो करे ?

तुमने कभी देखा, तुम जितने दुखी होते हो, उतनी भविष्य की ज्यादा विचारणा करते हो ! जितने सुखी होते हो, उतना ही भविष्य छोटा हो जाता है, वर्तमान बडा हो जाता है। अगर कभी-कभी एक क्षण को तुम आनदित हो जाते हो तो भविष्य खो जाता है, वर्तमान ही रह जाता है।

ससार दुख का फैलाव है, परमात्मा, आनद की अनुभूति।

जो व्यक्ति दुख मे जी रहा है, वह कही से भी सुख पाने की चेष्टा करता है, टटोलता है — विषयो मे, वासनाओ मे, धन मे, सपदा मे, शरीर मे। वह जगह-जगह टटोलता है। दुखी है ! कही से भी सुख का झरना हाथ आ जाए ! और जितनी देर लगती जाती है, उतना व्याकुल होता जाता है। जितना व्याकुल होता है, बेचैन होता है — उतना ही होश खोता चला जाता है, उतना बेहोशी से टटोलता है। कभी यह पूछता ही नही अपने से कि 'जहाँ मै टटोल रहा हूँ, वहीं मैंने खोया है, पहले यह तो पूछ लूँ कि मैंने खोया कहाँ, पहले यह तो ठीक से पूछ लूँ कि मेरा आनद कहाँ भटक गया है।'

कोई धन मे खोज रहा है, बिना पूछे। धन मे खोया है आनद को ? अगर धन में खोया नही तो धन से पा कैसे सकोगे ? कोई पद मे खोज रहा है, बिना पूछे। पद मे खोया है ? अगर पद में खोया नही तो पा कैसे सकोगे ?

और इसके पहले कि दुनिया की बडी यात्रा पर जाओ, अपने भीतर तो खोज लो। इसके पहले कि तुम पडोसियो के घर मे खोजने लगो कोई चीज जो खो गयी है, अपने घर में तो खोज लो। बुद्धिमानी यही कहेगी पहले अपने घर में खोज लो।

यहाँ न मिले तो फिर पड़ोसियो के घर में खोजना, फिर चाँद-सितारो पे खोजने जाना। कही ऐसा न हो कि तुम चाँद-सितारो पे खोजते रहो और जिसे खोया था, वह घर मे पड़ा रहे।

निकट से खोज शुरू करो। निकटतम से खोज शुरू करो। निकटतम तुम हो! और जिसने भी स्वय पर हाथ रखा, उसका हाथ परमात्मा पे पड गया। जिसने गौर से अपनी धडकन सुनी, उसने परमात्मा की धडकन सुनी। जो भीतर गया, वह मदिर में पहुँच गया।

'वह भक्ति विषय-त्याग, सग त्याग से सम्पन्न होती है।'

क्या मतलब हुआ विषय-त्याग, संग-त्याग से? इतना ही मतलब हुआ कि विषय में मत खोजो, वासना में मत खोजो। पहले अपने मे खोज लो। और जिसने भी अपने मे खोजा, फिर कही और खोजने न गया — मिल ही गया! इससे अपवाद कभी हुआ नही। यह शाश्वत नियम है। 'एस धम्मो सनतनो', कि जिसने अपने में खोजा, पा ही लिया। हाँ, अगर खोजने में ही रस हो तो भूल के अपने में मत खोजना। अगर खोजी ही बने रहने मे रस हो तो भूल के अपने में मत खोजना, क्योकि वहाँ खोज समाप्त हो जाती है। वहाँ मिल ही जाता है। अगर खोजने मे ही रस हो तो बाहर भटकते रहना। अगर पाना हो तो बाहर जाना व्यर्थ है। जो खोज रहा है, जो चैतन्य यात्रा पर निकला है, उसी चैतन्य मे मजिल छिपी है।

'विषय-त्याग और सग-त्याग से सम्पन्न होती है' — इसलिए कि वहाँ जब यात्रा बद हो जाती है तो तुम अपने पर लौटने लगते हो। जो व्यक्ति बाहर नही खोजता, वह कहाँ जाएगा? वह अपने घर आ जाएगा।

कोलम्बस अमरीका की खोज पर गया। तीन महीने का उसके पास सामान था, वह चुक गया। केवल तीन दिन का सामान बचा, और अभी तक कोई अमरीका की झलक नही, किनारो का कोई पता नही, जमीन कितनी दूर है, कुछ अनुमान भी नही बैठता। साथी घबडा गये। रोज सुबह पता लगाने के लिए वे कबूतर छोडते थे, क्योकि अगर कबूतरो को कही भूमि मिल जाए तो वे वापस न लौटेंगे। लेकिन वे कबूतर थोडी-बहुत दूर चक्कर काट कर वापस जहाज पे लौट आते, कही भूमि न मिलती। पानी में तो ठहर नहीं सकते। उनका लौट आना इस बात की खबर होता कि उन्हे कोई जगह न मिली।

जिस दिन तीन दिन का भोजन रह गया, उस दिन कबूतर छोडे — बडी उदासी में थे, डरते थे कि कही लौट न आएँ, क्योकि अब खात्मा है। अगर तीन दिन के भीतर जमीन नही मिलती तो गये। लौट भी नही सकते, क्योकि तीन महीने का रास्ता पार कर आये। लौट के भी तीन महीने लगेंगे पहुँचने मे। तो पीछे जाने का तो कोई अर्थ नहीं है, आगे शून्य मालूम पडता है।

लेकिन उस दिन कबूतर वापस नही लौटे। नाच उठे आनंद से ! कबूतरों को भूमि मिल गयी !

वासनाएँ तुम्हारे भीतर से बाहर जाती हैं। विषय और संग-त्याग का इतना ही अर्थ है वहाँ से भूमि हटा लो, ताकि उनको बाहर ठहरने की कोई जगह न मिले – तुम्हारा चैतन्य तुम्हीं पर वापस लौट आये। कही बाहर ठहरने की जगह मत दो। अगर बाहर ठहरने की जगह दी तो यही तो तुम करते रहे हो अब तक, यही भटकाव हो गया है, यही संसार है।

विषय से कोई विरोध नही है। धन से क्या विरोध ? पद से क्या विरोध ? कोई निंदा नही है। सिर्फ इतनी ही बात है कि वहाँ अगर चेतना का पक्षी बैठ जाए तो फिर वह स्वयं पर नही लौटता। और तुम बाहर जितने उलझते जाते हो, उतना ही अपने पे आना कठिन होता जाता है।

इसलिए भक्ति की बडी ठीक व्याख्या की है 'विषय-त्याग और संग-त्याग से भक्ति सम्पन्न होती है।' पक्षियो को बैठने की जगह नही रह जाती – चैतन्य के पक्षी अपने पर ही लौट आते हैं।

अगर वासना न हो तो विचार क्या करोगे ?

लोग मेरे पास आते है, वे कहते है, 'विचारो से बडे पीडित है। विचारो को बंद करना है।' मै उनसे पूछता हूँ, 'विचारो से पीडित हो, यह बात ठीक नही – वासना से पीडित होओगे।'

किस बात के विचार आते है ? तो कोई कहता है, धन के विचार आते है, कोई कहता है, कामवासना के विचार आते है। तो विचार थोडे ही असली सवाल है। विचार तो वासना का अनुषंगी है, छाया की तरह है। जब तक तुम्हारी कामवासना मे रस भरा हुआ है, जब तक तुम्हारी आशा की लाश छाती से लगी हुई है, जब तक तुम कहते हो कि कामवासना से सुख मिलने वाला है – तब तक कामवासना के विचार आते रहेंगे। जिस दिन तुम कहोगे कि कामवासना मे कोई सुख न रहा, उसी दिन कामवासना के विचार आने बंद हो जाएँगे।

विचारो को थोडे ही हटाना पडता है। विचारो को तो हटा-हटा के भी तुम न हटा पाओगे, क्योकि अगर मूल मौजूद रहा, जड मौजूद रही, तो पत्ते तुम काटते रहो, शाखाएँ काटते रहो – नयी निकल आएँगी।

वासना की जड़ कट जाए तो विचार के पत्ते अपने-आप आने बंद हो जाते हैं।

'अखंड भजन से भी भक्ति सम्पन्न होती है।'

विषय-त्याग, संग-त्याग से – फिर अखंड भजन से।

अखंड भजन का अर्थ वैसा नही है जैसा तुमने समझ रखा है कि लोग

लाउडस्पीकर लगा के बैठ जाते हैं चौबीस घंटे, मोहल्ले-भर के लोगो को परेशान कर देते हैं अखंड भजन कर रहे हैं! अखंड उपद्रव है यह, अखंड भजन नहीं है। और पडोसियो ने क्या बिगाडा है ? तुम्हे भजन करना हो करो, दूसरो को क्यो परेशान किये हो ? सोना भी मुश्किल कर देते हो।

और यह तो धार्मिक देश है, इसमे अगर कोई अखड भजन-कीर्तन करे और कोई पडोसी एतराज करे तो उसको लोग अधार्मिक समझते हैं। वे तो तुम पे कृपा करके माइक लगाये हुए है ताकि तुम्हारे कानो में भी भजन-कीर्तन का उच्चार पड जाए, तो शायद तुम्हारी भी मुक्ति हो जाए।

अखड भजन का क्या अर्थ है ?

अखड भजन का अर्थ है तुम्हारे भीतर परमात्मा की स्मृति अविच्छिन्न हो, विच्छिन्नता न आए। कोई राम-राम, राम-राम जपने का सवाल नही है। क्योकि अगर तुम राम-राम भी जपो, कितने ही जोर से जपो, तो भी दो राम के बीच मे खण्ड तो आ ही जाएगा। इसलिए वह अखड तो नही होगा। वह तो कोई रास्ता न हुआ। तुम राम-राम कितनी ही तेजी से जपो, एक राम और दूसरे राम के बीच मे जगह खाली छूट जाएगी, उतनी देर को परमात्मा का स्मरण न हुआ। इसलिए राम-राम जपने से अखड भजन का कोई सम्बध नही हो सकता।

अखड भजन का अर्थ तो, अगर अखड होना है भजन को, तो विचार से नही सध सकता यह काम, निर्विचार से सधेगा। अगर अखड होना है तो विचार का काम न रहा, क्योकि विचार तो खडित है। एक विचार और दूसरे विचार के बीच मे जगह है, अविच्छिन्न धारा नही है। अविच्छिन्न धारा तो स्मरण की हो सकती है। स्मरण का शब्द से कोई सम्बध नही है।

जैसे माँ भोजन बनाती है, बच्चा आसपास खेलता रहता है, लेकिन उसे स्मरण बना रहता है वह कही बाहर तो नही निकल गया, आगन के बाहर तो नहीं उतर गया, सडक पे तो नही चला गया! ऐसा वह बीच-बीच मे देखती रहती है। अपना काम भी करती रहती है और भीतर एक सातत्य स्मृति का बना रहता है।

कबीर ने कहा है, जैसे कि पनघट से स्त्रियाँ पानी भर के घर लौटती हैं, आपस में बात करती हैं, हँसती हैं, मजाक करती है – घडे उनके सिर पे सम्हले रहते हैं, उनको हाथ भी नही लगाती, स्मरण बना रहता है कि उन्हे सम्हाले है। बात चलती है, चर्चा होती है, हँसी-मजाक होती है – लेकिन भीतर एक सतत स्मृति बनी रहती है घडे को सम्हालने की।

जनक के दरबार में एक सन्यासी आया और उसने जनक को कहा कि मैंने सुना है कि तुम परम ज्ञान को उपलब्ध हो गये हो। लेकिन मुझे शक है, इस

धन-दौलत मे, इस सुख-सुविधा में, इन सुन्दर स्त्रियो और नर्तकियो के बीच में, इस सब राजनीति के जाल मे, तुम कैसे उसका अखड स्मरण रखते होओगे ।

जनक ने कहा, ' आज साँझ उत्तर मिल जाएगा । '

साँझ एक बडा जलसा था और देश की सबसे बडी नर्तकी नाचने आयी थी। सम्राट ने सन्यासी को बुलाया । चार नगी तलवारे लिये हुए सिपाही उसके चारो तरफ कर दिये । वह थोडा घबडाया । उसने कहा, ' क्या मतलब ? यह क्या हो रहा है ? '

जनक ने कहा, ' घबडाओ मत । यह तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है । '

और हाथ मे उसको तेल से लबालब भरा हुआ पात्र दे दिया कि जरा हिल जाए तो तेल नीचे गिर जाए, एक बूंद और न जा सके, इतना भरा हुआ । और उसने कहा कि नर्तकी का नृत्य चलेगा, तुम्हे सात चक्कर उस पूरे स्थान के लगाने हैं । बडी भीड होगी । हजारो लोग इकट्ठे होगे । अगर एक बूंद भी तेल नीचे गिरा तो ये चार तलवारे नगी तुम्हारे चारो तरफ हैं, ये फौरन तुम्हे टुकडे-टुकडे कर देगी ।

उस सन्यासी ने कहा, ' बाबा माफ करो ! प्रश्न अपना वापस ले लेते है । हम तो सत्सग करने आये थे, जिज्ञासा ले के आये थे, कोई जान नही गँवाने आये है । तुम जानो, तुम्हारा ज्ञान जाने । हो गये होओगे तुम उपलब्ध ज्ञान को, हमें कुछ सन्देह भी नही है । पर हमे छोडो । '

पर जनक ने कहा, ' अब यह न हो सकेगा । प्रश्न जब पूछ ही लिया तो उत्तर जरूरी है । '

सम्राट था, सन्यासी के भागने का कोई उपाय न था । सुन्दर नर्तकी नाचती थी । हजार बार सन्यासी के मन मे भी हुआ कि एक तरफ आँख उठा के देख लूं, लेकिन एक बूंद तेल गिर जाए तो वे चारो तलवारें उसे काट के टुकडे-टुकडे कर देगी । उसने सात चक्कर लगा लिये, एक बूंद तेल न गिरा। आँखे उसकी तेल पर ही सधी रही ।

पूछा जनक ने, ' उत्तर मिला ? '

उसने कहा, ' उत्तर मिल गया। और ऐसा उत्तर मिला कि मेरा पूरा जीवन बदल गया । पहली दफा कोई चीज इतनी देर तक सतत रही, अखड रही— एक स्मृति कि बूंद तेल न गिर जाए । '

सम्राट ने कहा, ' तेरे तरफ चार तलवारे थी, मेरे पास कितनी तलवारें हैं, मेरे चारो तरफ – तुझे पता नही । तेरी जिंदगी तो थोडे से ही खतरे में थी, मेरी जिंदगी बडे खतरे में है । और फिर इससे भी क्या फर्क पडता है कि तलवार है या नही, मौत तो सबको घेरे हुए है । जिसको मौत का स्मरण आ गया, उसे सातत्य भी समझ मे आ जाएगा । '

अखंड भजन का अर्थ होता है · अविच्छिन्न धारा रहे, परमात्मा के स्मरण में एक क्षण को भी व्याघात न हो, तुम उससे विमुख न होओ; तुम्हारी आँखें उस पर ही लगी रहें, तुम्हारा हृदय उसकी ही तरफ दौड़ता रहे, तुम्हारे चैतन्य की धारा उसकी तरफ ही प्रवाहित रहे – जैसे गंगा सागर की तरफ अविच्छिन्न बह रही है, एक क्षण को भी व्याघात नहीं है, एक क्षण को भी बाधा नहीं है, अवरोध नहीं है।

'अव्यावृतभजनात्।'

कोई भी व्याघात न पड़े, तो भजन। इसका अर्थ हुआ कि तुम्हारे जीवन के साधारण कृत्य ही जब तक परमात्मा के स्मरण की व्यवस्था न बन जाएँ –

उठो तो उसमें उठो!

बैठो तो उसमें बैठो!

सोओ तो उसमें सोओ!

जागो तो उसमें जागो!

– जब तक ऐसा न हो जाए, तब तक तो व्याघात होता ही रहेगा।

तो ध्यान रखना परमात्मा का स्मरण तुम्हारे और कृत्यों में एक कृत्य न हो, नहीं तो व्याघात पड़ेगा। जब तुम दूसरे कृत्यों में उलझोगे, तो परमात्मा भूल जाएगा। यह तुम्हारे जीवन का कोई एक हिस्सा न हो परमात्मा, यह तुम्हारे पूरे जीवन को घेर ले, यह तुम्हारे सारे जीवन पे छा जाए। मंदिर में जाओ तो परमात्मा की याद और दुकान पर जाओ तो परमात्मा की याद, नहीं तो फिर अखंड न हो सकेगा स्मरण। मंदिर में जाओ या दुकान पर, मित्र से मिलो कि शत्रु से – इससे उसकी याद में कोई फर्क न पड़े, उसकी याद तुम्हें घेरे रहे, उसकी याद तुम्हारे चारों तरफ एक माहौल बन जाए, तुम्हारी श्वास-श्वास में समा जाए।

'जाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठ कर

या वोह जगह बता जहाँ पर खुदा न हो।'

फिर तुम शराब भी पियो तो उसी में, मस्जिद में बैठ कर। फिर तुम्हारे सारे कृत्य उसी में लपेटे हुए हों। फिर तुम्हारा कोई कृत्य ऐसा न रह जाए जो उसके बाहर हो। क्योंकि जो कृत्य उसके बाहर होगा, वही व्याघात बन जाएगा।

तो परमात्मा और स्मृतियों में एक स्मृति नहीं है – परमात्मा महास्मृति है। वह और चीजों में एक चीज नहीं है – परमात्मा आकाश की तरह सभी चीजों को घेरता है। शराब की बोतल रखो तो भी आकाश ने उसे घेरा। भगवान की मूर्ति रखो तो उसे भी आकाश ने घेरा। परमात्मा तुम्हारा सब कुछ घेर ले। बुरा-भला सब तुम उसी पर छोड़ दो। बुरा भी उसका, भला भी उसका – तुम

बीच से हट जाओ। क्योंकि तुम जब तक बीच में रहोगे, व्याघात पड़ेगा। तुम ही व्याघात हो। तुम्हारी मौजूदगी अखंड न होने देगी।

तो अखंड भजन का अर्थ हुआ तुम मिट जाओ और परमात्मा रहे। तो यह कोई शोरगुल मचाने की बात नहीं है। यह तो बड़ी सूक्ष्म प्रक्रिया है। यह कोई बैंड-बाजे बजाने की बात नहीं है। यह कोई चौबीस घंटे का अखंड कीर्तन कर दिया, इतना सस्ता नहीं है मामला। क्योंकि चौबीस घंटा तो दूर, अगर चौबीस पल भी अखंड कीर्तन हो जाए तो तुम मुक्त हो गये।

महावीर ने कहा है, अड़तालीस सैकंड अगर कोई व्यक्ति अविच्छिन्न ध्यान मे रह जाए तो मुक्त हो गया। अड़तालीस सैकंड अविच्छिन्न ध्यान में रह जाए तो मुक्त हो गया। अविच्छिन्न ध्यान का अर्थ है इस समय में, न एक विचार उठे, न एक वासना जगे – कोरा रह जाए। तुम्हें परमात्मा ऐसा घेर ले जैसा आकाश ने तुम्हें घेरा है। चुनाव न रहे। तुम्हारे सारे कृत्य उसी के समर्पण बन जाएँ।

नानक सो गये थे, मक्का के पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके, पुजारी नाराज हुए थे। कहा, 'हटाओ पैर यहाँ से। कहीं और पैर करो। इतनी भी समझ नहीं है साधु हो कर?'

तो नानक ने कहा, 'तुम हमारे पैर वहाँ कर दो जहाँ परमात्मा न हो।'

कहानी कहती है कि पुजारियो ने उनके पैर सब दिशाओं में किये, जहाँ भी पैर किये, काबा का पत्थर वहीं हट के पहुँच गया। कहानी सच हो न हो, पर कहानी मे बड़ा सार है।

'जाहिद शराब पीने दे मस्जिद मे बैठ कर
या वोह जगह बता जहाँ पर खुदा न हो।'

सार इतना ही है कि पुजारी ऐसी कोई जगह न बता सके जहाँ परमात्मा न हो।

तुम्हारा जीवन ऐसा भर जाए उससे कि ऐसी कोई जगह न बचे जहाँ वह न हो। इसलिए बुरे-भले का हिसाब मत रखना। अच्छा-अच्छा उसे मत दिखाना, अपना बुरा भी उसके लिए खोल देना। तुम्हारे क्रोध में भी उसकी ही याद हो – और तुम्हारे प्रेम मे भी उसकी ही याद हो – और तुम तब हैरान होओगे कि तुम्हारा क्रोध क्रोध न रहा, तुम्हारे क्रोध मे भी उसकी सुगंध आ गयी, और तुम्हारा प्रेम तुम्हारा प्रेम न रहा, तुम्हारे प्रेम में भी उसकी ही प्रार्थना बरसने लगी।

तुम जिस चीज से परमात्मा को जोड़ दोगे, वही रूपान्तरित हो जाती है। तुम अपना सब जोड़ दो – तुम्हारा सब रूपान्तरित हो जाएगा।

'अखंड भजन से सम्पन्न होता है।'

'उम्र-भर रेंगते रहने से कहीं बेहतर है
एक लम्हा जो तेरी रूह में वुसअत भर दे .. '

— एक छोटा-सा क्षण भी जो तेरे प्राणो में विशालता को भर दे, विराट को भर दे !

'उम्र-भर रेंगते रहने से कहीं बेहतर है
एक लम्हा जो तेरी रूह मे वुसअत भर दे
एक लम्हा जो तेरे गीत को शोखी दे दे
एक लम्हा जो तेरी लै मे मसर्रत भर दे।'

एक क्षण भी काफी है परमात्मा के स्मरण का — 'जो तेरी रूह में वुसअत भर दे' — जो विराट को तेरे आँगन मे बुला ले, तेरी बूँद में सागर को बुला ले। सीमाएँ टूट जाएँ, ऐसा एक क्षण पर्याप्त है जी लेने का।

'उम्र-भर रेंगते रहने से कही बेहतर है।'

फिर अखड कीर्तन की तो बात ही क्या, अगर एक लम्हा, अगर एक क्षण विशालता का इतना अदभुत है, तो अखड कीर्तन की तो बात ही क्या! सतत भजन की तो बात ही क्या! ओठ भी हिलते नहीं सतत भजन में! भीतर परमात्मा का नाम भी स्मरण नही किया जाता। जो किया जाता है, जो होता है, सभी मे उसकी याद होती है। भोजन करो, स्नान करो, तो स्नान में भी जलधार उसी की है। जल गिरे तो परमात्मा ही गिरे तुम्हारे ऊपर!

मेरे गाँव में बडी सुन्दर नदी बहती है और गाँव के लिए वही स्नान की जगह है। सर्दियो के दिन मे लोग, जैसा सदा जाते हैं, सर्दियो के दिन में भी जाते हैं। मैं बचपन से ही चकित रहा कि गर्मियो में कोई भजन-कीर्तन करता नहीं दिखायी पडता। सर्दियो मे लोग जब स्नान करते हैं नदी में तो जोर-जोर से भगवान का नाम लेते हैं 'भोलेशकर! भोलेशकर!' तो मैंने पूछा कुछ लोगो से कि गरमी मे कोई भोलेशकर का नाम नही लेता, भूल जाते हैं लोग क्या। तो पता चला कि सर्दियो में इसलिए नाम लेते हैं कि वह नदी की ठढक, और उनके बीच भोलेशकर की आवाज़ परदे का काम करती है। वे 'भोलेशकर' चिल्लाने में लग जाते हैं, उतनी देर डुबकी मार लेते हैं-ठढ भूल गयी!

लोग नदी से बचने को भगवान का नाम ले रहे हैं। और तब मुझे लगा कि ऐसा पूरी जिंदगी में हो रहा है : भगवान सब तरफ से तुम्हें घेरे हुए है, तुम उससे घिरना नहीं चाहते। तुम्हारे भगवान का नाम भी तुम्हारा बचाव है। परमात्मा का स्मरण करना हो तो नदी को बहने दो, वह उसी की है। वही उसमें बहा है, बह रहा है। तुम डुबकी ले लो। इतना बोध भर रहे कि परमात्मा ने घेरा। ऊपर उठो तो परमात्मा के सूरज ने घेरा। डुबकी लो तो पानी ने, परमात्मा के

जल ने घेरा। भूखे रहे तो परमात्मा की भूख ने घेरा और भोजन लो तो परमात्मा की तृप्ति ने घेरा।

और यह कोई शब्दो की बात नही है कि ऐसा तुम सोचो, क्योकि तुम सोचोगे तो वही बाधा हो जाएगी। ऐसा तुम जानो। ऐसा तुम सोचो नही। ऐसा तुम दोहराओ नही। ऐसा तुम्हारा बोध हो। ऐसा तुम्हारा सतत स्मरण हो।

'लोकसमाज में भी भगवद्गुण-श्रवण और कीर्तन से भक्ति सम्पन्न होती है।'

'भगवद्गुण-श्रवण'..! भगवान के गुणो का श्रवण, और भगवान के गुणों का कीर्तन, उसके गुणो को सुनना और उसके गुणो को गाना।

सुनने से ..अगर तुमने ठीक-ठीक सुना, अगर तुमने हृदय के पट खोल कर सुना, अगर तुमने कान से ही न सुना, प्राणो से सुना, तो तुम्हारे भीतर, भगवान के गुणो को सुनते-सुनते, उसके स्मरण का सातत्य बनने लगेगा। क्योकि हम जो सुनते है, वही हमारा बोध हो जाता है। जो हम सुनते हैं, वह धीरे-धीरे हम मे रमता जाता है। जो हम सुनते हैं, वह धीरे-धीरे हमारे रोएँ-रोएँ मे व्याप्त हो जाता है। जो हम सुनते है सतत, वह धीरे-धीरे हमे घेर लेता है, हम उसमे डूब जाते हैं।

तो उसका श्रवण भी करो और उसके गुणो का कीर्तन भी करो। सुनने से ही कुछ न होगा। क्योकि सुनना तो निष्क्रिय है और कीर्तन सक्रिय है। निष्क्रियता मे सुनो, सक्रियता मे अभिव्यक्त करो। अगर बोलो तो उसके गुणो की ही बात बोलो।

तुम कितनी व्यर्थ की बाते बोल रहे हो! कितनी व्यर्थ की चर्चाएँ कर रहे हो! अच्छा हो उसके सौंदर्य की बात करो। अच्छा हो उसके विराट अस्तित्व की थोडी चर्चा करो। उस चर्चा में तुम्हें भी याद आएगा, जिससे तुम चर्चा करोगे उसे भी याद आएगा। क्योंकि परमात्मा को हमने खोया नही है, केवल भूला है। इसलिए श्रवण का और कीर्तन का उपयोग है। अगर खो दिया हो तो क्या होने वाला है? जैसे कि तुम्हारे घर में खजाना हो और तुम भूल गये हो कि कहाँ दबाया था, तुम्हारे खीसे मे हीरा रखा हो, और तुम भूल गये हो, तो अगर हीरे की कोई बात करे तो तुम्हे याद आ जाए।

तुमने कभी खयाल किया, घर से तुम चले थे, चिट्ठी डालनी थी, कोई मित्र मिल गया, तुम भूल ही गये थे दिन-भर, फिर उसने कुछ बात की और उसने कहा कि पत्नी का पत्र आया है— तत्क्षण तुम्हें याद आ गया कि तुम्हे पत्र डालना है। सुन के भूली बात स्मरण हो आयी। जो तुम्हारे भीतर पडा था, वह चैतन्य में उठ आया।

'भगवद्गुण-श्रवण और कीर्तन से..।'

और फिर जो तुम सुनो, उसे सुन लेना ही काफी नही है, क्योंकि तुम फिर-फिर

भूल जाओगे। तुम्हारी नींद का कोई अंत नहीं है। उसे गाओ भी, गुनगुनाओ भी। रात जब सोने जाओ तो उसके ही गीत को गुनगुनाते सो जाओ, ताकि गुनगुनाहट तुम्हारी रात-भर तुम्हारे सपनों में घेरे रहे; ताकि गुनगुनाहट रात-भर तुम्हें ऊष्मा देती रहे, ताकि गुनगुनाहट रात-भर तुम्हारे चारों तरफ पहरा देती रहे; ताकि तुम्हारी नींद में भी, तुम्हारी गहरी नींद में भी उसकी याद का सातत्य बना रहे।

खयाल किया तुमने, जो बात तुम रात को आखिरी सोचते हुए सोते हो, वही बात तुम्हें सुबह पहली याद आती है! न खयाल किया हो तो कोशिश करना। जो बात तुम्हारे चित्त में आखिरी होती है रात सोते वक्त, वही पहली होती है सुबह उठते वक्त, क्योंकि रात-भर वह बात तुम्हारी चेतना के द्वार पर खड़ी रहती है। अगर तुम परमात्मा का स्मरण करते ही सो जाओ तो सुबह तुम पाओगे आँख खुलते ही उसके स्मरण के साथ उठे हो।

सारी दुनिया के धर्मों ने रात और सुबह, सोते वक्त और जागते वक्त, परमात्मा के स्मरण पर बहुत जोर दिया है, क्योंकि उस समय चेतना की भूमिका बदलती है जागने से नींद, तो चेतना का गेयर बदलता है, फिर सुबह नींद से जागना, फिर चेतना की भूमिका बदलती है। इन सन्ध्या के क्षणों में, इन बदलाहट के, क्रान्ति के क्षणों में, अगर परमात्मा का स्मरण तुम में व्याप्त होता जाए, तो तुम पाओगे धीरे-धीरे तुम्हारे खून के कतरे-कतरे में परमात्मा की छाप लग गयी। तुम्हारा पूरा अस्तित्व उसे गुनगुनाने लगेगा।

'परन्तु भक्ति-साधन मुख्यतया महापुरुषों की कृपा से अथवा भगवद्कृपा के लेशमात्र से होता है।'

नारद कहते हैं, यह सब ठीक, यह साधन ठीक— लेकिन इतने से ही न हो जाएगा। वस्तुतः तो महापुरुष की कृपा या भगवत्कृपा से, उसके लेशमात्र से हो जाता है। ये तुम्हारे उपाय हैं जरूरी, पर इतने को ही काफी मत समझ लेना। यही भक्ति का अन्य साधनों से भेद है। अन्य साधन कहते हैं. अगर ठीक से किया तो परमात्मा उपलब्ध हो जाएगा, भक्ति कहती है यह तो सिर्फ तैयारी है, इससे नहीं हो जाएगा, अन्ततः तो वह कृपा से ही उपलब्ध होगा— महापुरुषों की, और भगवत्कृपा से।

'परन्तु महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।'

सद्गुरु को खोजना बड़ा कठिन है।

संग—दुर्लभ, अगम्य और अमोघ!

दुर्लभ है, क्योंकि पहले तो जिन्होंने पा लिया सत्य को, ऐसे लोग बहुत कम। फिर जिन्होंने पा लिया, उनको तुम पहचान सको, ऐसी पहचानने वाली आँखें

बहुत कम। फिर तुम पहचान भी लो, दुर्लभता समाप्त हो जाए, तुम पहचान लो किसी को, तो अगम्य। फिर पहचान के बाद सद्गुरु तुम्हें ऐसे जगत में ले चलता है जो तुम्हारा पहचाना हुआ नही है, अगम्य है, समझ में नही आता है। तुम्हारी समझ डगमगाती है, तुम्हारे पैर डगमगाते हैं, तुम घबड़ाते हो। यह अपरिचित लोक है, नाव ऐसी तरफ ले जाता है, जहाँ तुम कभी गये नही, नक्शे भी तैयार नही, खतरा ही खतरा है।

तो पहले तो मिलना कठिन, मिल जाए तो पहचानना कठिन, पहचान में भी आ जाए तो उसके साथ जाना कठिन — अगम्य है। लेकिन अगर तुम साथ चले जाओ तो अमोघ है, फिर वह रामबाण है, फिर उसकी ज़रा-सी भी कृपा पर्याप्त है।

'यू अचानक तेरी आवाज़ कही से आयी
जैसे परबत का जिगर चीर के झरना फूटे
या ज़मीनो की मुहब्बत मे तड़प कर नागाह
आसमानो से कोई शोख सितारा टूटे।'
'शहद-सा घुल गया तल्खावा-ए-तन्हाई में
रंग-सा फैल गया दिल के सियाहखाने में
देर तक य तेरी मस्ताना सदाएँ गूँजी
जिस तरह फूल चमकने लगें वीरानो मे।
यू अचानक तेरी आवाज़ कही से आयी!'

सद्गुरु का मिलना अचानक है। खोजते रहो, खोजते-खोजते अचानक। क्योंकि कोई बँधे हुए नक्शे नही हैं, कोई पता-ठिकाना नही है। इसलिए अचानक। कहाँ मिलेगा, इसको बताया नही जा सकता।

सद्गुरु कोई जड़वस्तु नही है — चैतन्य का प्रवाह है, ठहरा हुआ नही है — गत्यात्मक है, गतिमान है।

एक सूफी फकीर एक वृक्ष के नीचे बैठा था, एक युवक ने आ के पूछा कि 'मैं सद्गुरु की तलाश मे हूँ, मुझे कुछ कसौटी बताएँगे कि मैं सद्गुरु को कैसे पहचानूं?' तो उस फकीर ने उसे कसौटी बतायी कि ऐसे-ऐसे वृक्ष के नीचे अगर बैठा हुआ मिल जाए, तो समझना।

वह युवक गया। उसने बहुत खोजा, कहते हैं, तीस साल। लेकिन वैसा वृक्ष कही न मिला, और न वैसे वृक्ष के नीचे बैठा हुआ कोई सद्गुरु मिला। कसौटी पूरी न हुई। बहुत लोग मिले लेकिन कसौटी पूरी न हुई, वह वापस लौट आया। जब वह वापस आया तो वह हैरान हुआ कि यह तो बूढ़ा उसी वृक्ष के नीचे बैठा था। इसने कहा कि महानुभाव, पहले ही क्यो न बता दिया कि यही वह वृक्ष है। उसने कहा, 'मैंने तो बताया था, तुम्हारे पास आँख न थी। तुमने वृक्ष देखा ही

नहीं। मैं तब व्याख्या ही कर रहा था वृक्ष की, तब तुम सुने और भागे। यही वृक्ष है, और मैं ही वह आदमी हूँ। और तुम्हारी झंझट तो ठीक, मेरी झंझट सोचो कि तीस साल मुझे बैठा रहना पड़ा, कि तुम एक-न-एक दिन आओगे।

'यू अचानक तेरी आवाज कही से आयी
जैसे परबत का जिगर चीर के झरना फूटे
या जमीनो की मुहब्बत मे तड़प कर नागाह
आसमानो से कोई शोख सितारा टूटे।'
—जमीन की मुहब्बत में तड़प कर ..।
शिष्य तो जमीन जैसा है, गुरु आकाश जैसा है।
'या जमीनो की मुहब्बत मे तड़प कर नागाह
आसमानो से कोई शोख सितारा टूटे।
शहद-सा घुल गया तल्खावा-ए-तन्हाई मे।'
वह जो पीड़ा से भरी हुई तन्हाई थी, अकेलापन था ..शहद-सा घुल गया!
'शहद-सा घुल गया तल्खावा-ए-तन्हाई में
रग-सा फैल गया दिल के सियाहखाने में।'
अँधेरी रात थी जैसे दिल मे, वहाँ एक नया रग उगा, एक नयी सुबह हुई।
'देर तक यू तेरी मस्ताना सदाएँ गूँजी
जिस तरह फूल चमकने लगे वीरानो मे।'

—जैसे अचानक मरुस्थलो मे फूल खिल गये हो! इतना ही आश्चर्यजनक है सद्गुरु का मिल जाना, जैसे मरुस्थल मे अचानक फूल खिल जाएँ, जैसे पत्थर से टूट के अचानक झरना फूट पड़े, जैसे आसमान से कोई तारा जमीन की मुहब्बत में नीचे उतर आये!

सग दुर्लभ है। लेकिन जो खोजते है, उन्हें मिलता है। खोजने वाले चाहिए। कितना ही दुर्लभ हो, खोजने वालो को सदा मिला है। इसलिए तुम थक मत जाना और हार मत जाना। प्यास हो तो तुम्हें जल का झरना मिल ही जाएगा। असल में परमात्मा प्यास बनाने के पहले जल का झरना बनाता है, भूख देने के पहले भोजन तैयार करता है। प्यास तो बाद मे बनायी जाती है, झरने पहले बनाये जाते हैं। आदमी जमीन पे बहुत बाद मे आया, झील और झरने बहुत पहले आये। आदमी बहुत बाद में आया, वृक्षो में लगे फल बहुत पहले आये।

ध्यान रखना, जिस बात की भी तुम्हारे भीतर खोज है, वह खजाना कहीं-न-कही तैयार ही होगा, अन्यथा खोज की आकांक्षा ही नही हो सकती थी। महापुरुषों का सग दुर्लभ है माना, मगर निराश मत होना। दुर्लभ इसलिए सूत्र कह रहा है ताकि खोजने मे जल्दी मत करना, धीरज रखना। और कोई मतलब नहीं

है दुर्लभ का। दुर्लभ का यह मतलब नहीं है कि मिलेगा ही नहीं। मिलेगा, धीरज रखना। धैर्य से खोजना।

अगम्य है। और जब सद्गुरु तुम्हें अगम्य के मार्ग पर ले जाने लगे, जिसे तुम्हारी बुद्धि न समझ पाये – समझ ही न पाएगी, क्योंकि मार्ग प्रेम का है, अगम्य ही होगा, तर्कातीत होगा – तो घबड़ाना मत। इतनी हिम्मत रखना और साहस रखना। पागल होने का साहस रखना। दीवाने होने की हिम्मत रखना। भरोसा रखना।

इसी को श्रद्धा कहा है। श्रद्धा की जरूरत इसीलिए है, क्योंकि जहाँ अगम्य का द्वार खुलेगा, वहाँ तुम क्या करोगे, अगर श्रद्धा न हुई, वहाँ अगर तुमने कहा, पहले हम समझेंगे तब भीतर चलेंगे, तो रुकावट हो जाएगी, क्योंकि समझ तो तभी आ सकती है जब तुम भीतर पहुँच जाओ। और तुमने अगर यह शर्त रखी कि हम पहले समझेंगे, फिर भीतर चलेंगे ।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'सन्यास तो लेना है, लेकिन पहले समझ लें कि सन्यास क्या है।' मैं उनको कहता हूँ, 'स्वाद लिये बिना तुम कैसे समझोगे? हुए बिना कैसे समझोगे। हो जाओ, समझ लेना पीछे।'

वे कहते हैं, 'यह कैसी बात? पहले समझ ले, सोच लें, विचार लें, फिर हो जाएँगे।' वे कभी भी न हो पाएँगे। यह मार्ग अगम्य का है, अनजान का है, अज्ञेय का है।

लेकिन सूत्र बड़ी अमूल्य बात कह रहा है 'दुर्लभ है, अगम्य है, पर अमोघ है।' एक बार हाथ हाथ मे आ गया तो चूक नहीं है, रामबाण है। फिर तीर लग ही जाएगा। फिर तीर छिद ही जाएगा आर-पार।

'उस भगवान की कृपा से ही महापुरुषो का सग भी मिलता है।'

यह सग भी, नारद कहते हैं, परमात्मा की कृपा से ही मिलता है। क्योंकि भक्त की सारी धारणा ही कृपा पर खड़ी है, प्रसाद पर। तुम्हे सद्गुरु भी मिलता है तो भी उसकी ही कृपा से मिलता है, तुम्हारी खोज से नहीं, जैसे सद्गुरु के द्वारा वही तुम्हारे पास आता है, जैसे सद्गुरु में वही तुम्हे मिलता है। तुम अभी इतने तैयार न थे कि सीधा-सीधा मिल सके, तो थोड़े परदे की ओटा से मिलता है। हाथ तो उसी का है – दस्ताने मे है। हाथ तो उसी का है। सद्गुरु के भीतर भी आवाज उसी की है। लेकिन कोरे आकाश से अगर आवाज आये तो तुम समझ न पाओगे, घबड़ा जाओगे।

समझो कि यहाँ यह खाली कुर्सी हो और आवाज आये तो अभी तुम भाग खड़े हो जाते हो, फिर तो कहना ही क्या, फिर तो तुम लौट के भी न देखोगे। आवाज अभी भी शून्य से ही आ रही है।

सद्गुरु के द्वारा भी वही पुकारता है, वही बुलाता है, उसके ही हाथ तुम्हारी तरफ आते हैं – लेकिन हाथ तुम्हारे जैसे होते हैं, तुम भरोसा कर लेते हो; तुम हाथ हाथ में दे देते हो। देने पे पता चलेगा कि हाथ तुम्हारे जैसे नहीं थे, दिखाई पड़ते थे, धोखा हुआ।

सद्गुरु परमात्मा ही है। इसलिए सूत्र कहता है 'वह भी उसकी ही कृपा से मिलता है।'

'जो कुछ है वोह, है अपनी ही रफ्तोर-अमल से
बुत है जो बुलाऊँ, जो खुद आये तो खुदा है।'

तुम्हारे बुलाने से भी आता है, ऐसा भी नहीं – 'जो खुद आये खुदा है'। मूर्तियाँ हैं जिन्हे तुम बुलाते हो।

'बुत है जो बुलाऊँ, जो खुद आये तो खुदा है।'

वह आता है अपने ही कारण। तुम जब भी तैयार हो जाते हो, तभी आ जाता है। ठीक से समझो तो ऐसा कहना चाहिए कि आता तो पहले भी रहा था, तुम पहचान न पाए। तुम जब सम्हले तो तुमने पहचाना, आता तो पहले भी रहा था, बुलाता तो पहले भी रहा था, तुमने न सुना, तुम्हारे कान तैयार न थे, तुम कुछ और सुनने में लगे थे।

'क्योंकि भगवान में और उसके भक्त में भेद का अभाव है।' इसलिए सद्गुरु में भी वही आता है।

'क्योंकि भगवान में और उसके भक्त मे भेद का अभाव है।'

'दिले हर कतरा है साजे अनलबहर
हम उसके हैं, हमारा पूछना क्या!'

हर बूंद का एक साज है और साज से निरतर एक ध्वनि निकलती है कि मै सागर हूँ। हर बूंद का एक साज है, एक गीत है। और हर बूंद निरतर गाती रहती है कि मै एक सागर हूँ।

'दिले हर कतरा है साजे अनलबहर
हम उसके हैं, हमारा पूछना क्या!'

अब हमारी तो बात ही क्या कहनी! हम उसके हैं!

तुम भी अगर अपने भीतर झाँकोगे तो तुम एक ही आवाज पाओगे, तुम्हारे भी परमात्मा होने की आवाज पाओगे – जैसे हर बूंद मे सागर होने की आवाज है। हर बूंद का साज है कि मै सागर हूँ, और हर चैतन्य का साज है कि मै परमात्मा हूँ। जिसने पहचान लिया, वह सद्गुरु। जिसने अपनी ही ध्वनि को पहचान लिया, वह सद्गुरु। जिसने अभी नही पहचाना है, खोजना है – लेकिन फर्क कुछ भी नही है।

'उस भगवान की कृपा से ही सत्पुरुषो का सग मिलता है, क्योकि भगवान में और उसके भक्त मे भेद का अभाव है।'

'उस सत्सग की ही साधना करो।'

'तदेव साध्याता, तदेव साध्यताम् !'

उसकी ही साधना करो !

सत्सग की ही साधना करो।

सदगुरु की खोज करो !

किन्ही हाथो पे भरोसा करो और हाथ हाथ में दे दो ! ऐसे ही तुम परमात्मा के हाथ में अपने को सौंप पाओगे। और ऐसे ही परमात्मा तुम्हारे हाथ को अपने हाथ मे ले पाएगा।

तो भक्ति की साधना क्या हुई? सत्सग की साधना हुई। सार क्या हुआ? —कि ऐसे किसी व्यक्ति के साथ हो जाना है जिसने पा लिया हो। क्योकि है तो तुम्हारे भीतर भी, लेकिन तुम्हारा साज सोया हुआ है। किसी ऐसी वीणा के पास पहुँच जाना है, जिसका साज बज उठा हो, ताकि उसकी प्रतिध्वनि में तुम्हारे तार भी कँपने लगे।

सगीतज्ञ कहते हैं कि अगर कोई कुशल सगीतज्ञ एक वीणा पर बजाए और दूसरी वीणा कमरे में चुपचाप रखी हो तो धीरे-धीरे उसके तार भी झकृत होने लगते है। तरगे जागी वीणा की, सोयी वीणा को भी जगाने लगती हैं ध्वनि की चोट सोयी वीणा को भी खबर देती है कि मै भी वीणा हूँ। उसके भीतर भी कोई जागने लगता है। उसके तार भी कँपने लगते है। रोमांच हो आता है उसे भी। दूर की खबर आती है ! अपने अस्तित्व का बोध आता है।

सत्सग भक्त की साधना है।

मीरा मिल जाए तो उसके साथ हो लो। चैतन्य मिल जाएँ, उनके साथ हो लो। तुम्हे अपनी याद नही है, उन्हे अपनी याद आ गयी है — उनके साथ तुम्हें भी धीरे-धीरे तुम्हें अपनी याद आ जाएगी। कुछ और करना नही है।

सद्गुरु तो दर्पण है — उसमें तुम्हे अपना चेहरा धीरे-धीरे दिखायी पड़ने लगेगा, भूली-बिसरी याद आ जाएगी।

'उजाले अपनी यादो के हमारे पास रहने दो
न जाने किस गली में जिंदगी की शाम हो जाए।'

तो भक्त इतना ही कहता है अपने गुरु से —

'उजाले अपनी यादो के हमारे पास रहने दो
न जाने किस गली में जिंदगी की शाम हो जाए।'

—न मालूम किस दिन अधकार घेर ले। बस तुम्हारा उजाला हमारे पास हो

तो काफी। याद भी तुम्हारे उजाले की हमारे पास हो तो काफी, क्योंकि तब हम भी उजाले हो गये। फिर कितना ही घना अँधेरा हो, अमावस की रात हो, कितना ही घेर ले, फिर भी हम उजाले ही रहेंगे।'

बुद्धों के पास तुम्हें अपने उजाले की याद आयी!

तो भक्त की साधना इतनी ही है कि वह सत्संग खोज ले।

भक्ति संक्रामक है।

तदेव साध्यता, तदेव साध्याताम्!

आज इतना ही।

दसवाँ प्रवचन

दिनांक २० जनवरी, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना

परम मुक्ति है भक्ति

पहला प्रश्न : मुझे कभी लगता है कि मैंने आपसे बहुत-बहुत पाया और कभी यह भी कि मैं आपसे बहुत चूक रहा हूँ। ऐसा क्यों है ?

जितना ज्यादा पाओगे उतना ही लगेगा कि चूक रहे हो। जितनी होगी तृप्ति, उतनी ही और बड़ी तृप्ति की आकांक्षा जगेगी।

प्यासे को जब पहली घूंट जल की, गले से उतरती है तो पहली दफा प्यास का पूरा-पूरा पता चलता है। प्यास का पता चलने के लिए भी जल की थोड़ी जरूरत है।

और परमात्मा की खोज तो ऐसी है कि शुरू होती है, पूरी नहीं होती। पूरी हो जाए तो परमात्मा सीमित हो गया, असीम न रहा। पूरी हो जाए तो परमात्मा का भी अंत आ गया, परिधि आ गयी, सीमांत आ गया।

इसीलिए तो परमात्मा निराकार है, तुम उसे चुका न पाओगे। तुम चुक जाओगे, परमात्मा न चुकेगा। उतरोगे सागर में जरूर, दूसरा किनारा कभी न आयेगा। दूसरा किनारा है ही नहीं। यही तो अर्थ है विराट का। अगर तुम दूसरा किनारा भी छू लो, थाह पा लो, फिर विराट कैसा विराट रहा! जो तुम्हारी मुट्ठी में आ जाए वह तो तुमसे भी छोटा हो जाएगा। जो तुम्हारे गले में तृप्ति बन जाए, उसकी सामर्थ्य तुम्हारे गले की सामर्थ्य से ज्यादा न रह जाएगी।

तो ये दोनों घटनाएँ साथ-साथ घटेंगी। तृप्ति भी मालूम होगी, गहन तृप्ति मालूम होगी और अतृप्ति मिटेगी नहीं। यही तो खोजी की व्याकुलता है : सरोवर के तट पर खड़ा है, डुबकियाँ लेता है, जलधार बरसती है; प्यास बुझती भी लगती है, बुझती भी नहीं, प्यास बुझती भी है और बढ़ती भी है। साथ-साथ ऐसा विरोधाभास घटता है।

तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूँ। अगर प्यास ही रहे और तुम्हें मुझसे कुछ भी न मिले तो भी तर्क को समझ में आ जाए, बात खत्म हो गयी। यह मंदिर तुम्हारे लिए नहीं फिर, कहीं और खोजना होगा। यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं फिर,

कहीं और खोजना होगा । यह सरोवर तुम्हारे कंठ से मेल नहीं खाता, कहीं और खोजना होगा । तो बात साफ हो जाती है ।

या, तृप्ति हो जाए, प्यास बिलकुल खो जाए, तो भी हल हो जाता है । हल इतना आसान नहीं है । और हल ऐसा हो तो दुर्भाग्य है, सौभाग्य नहीं है । क्योंकि अगर तुम्हारी प्यास बिलकुल ही मिट जाए तो तुम्हारे जीवन का अर्थ भी खो गया । फिर जीवन में सार क्या होगा ? फिर जीवन मे गीत के अंकुरण कैसे होंगे ? फिर नाचोगे कैसे ?

ध्यान रखना, न तो अतृप्त नाच सकता है, क्योंकि नाचने का कोई कारण नहीं । अतृप्त रो सकता है, शिकायत कर सकता है, नाचेगा कैसे ? तृप्त भी नहीं नाच सकता, क्योंकि फिर नाचने का कोई कारण न रहा । अतृप्ति और तृप्ति के बीच में एक पड़ाव है, वहाँ नृत्य है; वहाँ आनंद का आविर्भाव है ।

और जब तुम समझोगे धीरे-धीरे, तो तुम जल के लिए ही परमात्मा को धन्यवाद न दोगे, प्यास के लिए भी धन्यवाद दोगे । तब तुम प्रार्थना करोगे कि जल भी बरसाते जाना और प्यास भी बढ़ाते जाना ।

इन दोनो के मध्य में जीवन है । इन दोनो के मध्य मे जीवन का संतुलन है, जीवन की ऊँचाइयाँ हैं, गहराइयाँ हैं ।

अगर जीवन में विरोधाभास न हो तो जीवन मुर्दा हो जाता है इस किनारे या उस किनारे । धार तो जीवन की मध्य मे है · न इस किनारे न उस किनारे । तो इस किनारे से तो तुम्हारी नाव छुड़ा लूंगा । इसलिए थोड़ी तृप्ति होती मालूम पड़ेगी । अतृप्ति का किनारा दूर हटता जाएगा और तृप्ति का किनारा पास नहीं आएगा । मँझधार में पड़ जाओगे । और जिसने मँझधार मे जीना सीखा, उसी ने परमात्मा में जीने की कला जानी ।

किनारे का मोह भय के कारण है । तृप्ति की आकांक्षा भी मुर्दादिली का हिस्सा है । वह कोई जिंदादिलो की बात नहीं है । जिंदादिल आग चाहते हैं, वर्षा भी चाहते है -- वर्षा ऐसी चाहते हैं कि कैसी भी आग हो तो मिट जाए, और आग ऐसी चाहते हैं कि कैसी भी वर्षा हो तो न बुझ पाये । इन दोनो के बीच में जिसने जीना सीखा उसी ने जीना जाना ।

ठीक पूछते हो । कभी लगेगा, बहुत कुछ पाया और कभी लगेगा, सब चूके जा रहे हो । और इन दोनो में विरोध मत देखना । ये दोनो बातें मैं एक साथ ही कर रहा हूँ । ये दोनो बाते एक साथ ही होनी चाहिए ।

तुम्हारी अड़चन भी मैं समझता हूँ, क्योंकि तुम चाहते हो · निपटारा हो, इस पार कि उस पार । या तो सिद्ध हो जाए कि तृप्ति होती ही नहीं, अतृप्ति ही भाग्य है, अतृप्ति ही नियति है, तो ठीक है, उससे ही राजी हो जाएँ, सांत्वना कर लें, अपने

घर बैठ जाएँ, फिर किसी यात्रा पर जाना नहीं, जड़ हो जाएँ, और या फिर पक्का हो जाए कि तृप्ति पूरी हो जाती है – तो या तो अतृप्ति पर ठहर जाएँ या तृप्ति पर ठहर जाएँ।

ठहर जाने का तुम्हारा मन है। और परमात्मा चाहता है तुम चलते ही रहो, चलते ही रहो, क्योंकि चलना जीवन है।

कब तुम्हे दिखायी पड़ेगा चलने का सौंदर्य – चलते जाने का सौंदर्य ?

रोज नये-नये अभियान उठें।

रोज नये शिखरो का दर्शन हो।

हाँ, पैर में बल मिलता जाए।

यात्रा से थकान न मिले।

पैर मे बल मिलता जाए और नये शिखर उभरते चले आएँ।

जिन्होने भी परमात्मा को जाना, वे मुर्दा नही हो गये हैं। उनके जीवन में पहली दफा वास्तविक जीवन की ऊर्जा का आविर्भाव हुआ है।

पर तुम इसे न समझ पाओगे, क्योंकि तुम्हारे गणित में बड़ी छोटी-छोटी बातें हैं। तुम्हारा गणित ही बड़ा छोटा है। तुम हिसाब ही कौड़ियों का कर रहे हो और यहाँ हीरे बरस रहे हैं। तुम हिसाब कौड़ियो का कर रहे हो और तुम्हें कौड़ियाँ दिखायी नही पड़ती, तुम बड़ी मुश्किल मे पड़ जाते हो। परमात्मा को क्या लेना-देना कौड़ियो से ?

सिक्के मत माँगो – तृप्ति के या अतृप्ति के।

जीवन की क्रांति माँगो।

जीवन की चुनौती माँगो।

जीवन का अभियान माँगो।

हाँ, शक्ति दे और नये शिखर दे।

पैरो में बल दे और कभी ऐसी घड़ी न आये कि चलने को कोई स्थान न रह जाए।

नये तल चैतन्य के छुते चलो।

आगे ही आगे जाना है।

तुम कहोगे, हम तो यही सोचते थे कि जल्दी ही पड़ाव आ जाएगा, कहीं रुक जाएँगे।

तुम्हारी रुकने की इतनी आकांक्षा क्यो है ?

तुम्हारी रुकने की आकांक्षा में ही ईश्वर का विरोध छिपा है।

ईश्वर अब तक नहीं रुका, तुम रुकना चाहते हो।

ईश्वर अभी भी बीज में अंकुर तोड़ेगा, वृक्षो में फूल लगायेगा।

अभी भी तारे बनाये चला जाता है नये !

अभी भी झरने बहाये चला जाता है !

अभी भी मेघ बनेंगे और बरसेंगे !

ईश्वर थका नही, चलता चला जाता है !

जो सदा चलता चला जाता है – सदा, सदैव – उसी को तो हम ईश्वर कहते हैं। जो थक जाता है, चुक जाता है, जिसकी सीमा आ जाती है – वही तो मन है, जो जल्दी ही बैठ जाना चाहता है, जो कहता है बस बहुत हो गया !

इस सीमा को तोड़ो !

परमात्मा के साथ चलना हो तो अनंत की यात्रा है। और जिस दिन तुम्हें यह समझ में आएगा, उस दिन तुम पाओगे मंजिल नही है, यात्रा ही मंजिल है, हर कदम मंजिल है। तब तुम आनंद से नाचोगे भी, अहोभाव से गीत भी गाओगे, लेकिन बैठ के मुर्दा चट्टान की तरह न हो जाओगे, चलते ही रहोगे।

और-और नये फूल लगने हैं तुम मे अभी !

तुम्हें अपनी ही सम्भावनाओ का कुछ पता नही। तुम्हें अपने ही होने का कुछ पता नही कि तुम कितने हो सकते हो !

'एक मौज मचल जाए तो तूफा बन जाए !'

– एक छोटी-सी लहर भी, अगर मचल जाए

'एक मौज मचल जाए तो तूफा बन जाए' क्योंकि छोटी-सी लहर में सागर भी छिपा है।

'एक फूल अगर चाहे गुलिस्ता बन जाए !'

एक छोटा-सा फूल सारी पृथ्वी को फूलो से भर सकता है।

एक बीज सारी पृथ्वी को हरा कर सकता है फैलता चला जाए एक बीज मे करोड बीज लगते हैं, करोडो बीजो में और करोड बीज लगेंगे !

एक बीज मिल जाए पृथ्वी को तो सारी पृथ्वी हरी हो सकती है।

'एक मौज मचल जाए तो तूफा बन जाए

एक फूल अगर चाहे तो गुलिस्ता बन जाए।

एक खून के कतरे में है तासीर इतनी

एक कौम की तारीख का उनमा बन जाए !'

एक छोटे-से खून के कतरे में इतना छिपा है कि एक पूरी जाति के जीवन का शीर्षक बन जाए, इतिहास का शीर्षक बन जाए।

तुम्हे अपने होने का पता नही, तुम कौन हो ! तुमने जहाँ अपने को पाया है, वह तुम्हारे भवन की सीढियाँ हैं, तुम अपने भवन में अभी प्रविष्ट भी नही

हुए। तुम जहाँ ठहर गये हो, वहाँ तो द्वार भी नही है, सीढ़ियाँ ही है, तुमने भवन में प्रवेश भी नही किया।

तुम इस किनारे पर बैठ गये हो – जिसको तुम ससार कहते हो। और अगर कभी तुम्हें कोई जगा देता है इस किनारे से...ऐसे तो तुम जगते नही आसानी से, ऐसे तो तुम बडी बाधाएँ डालते हो, ऐसे तो तुम हर चेष्टा करते हो, हर उपाय करते हो कि तुम्हारी नीद न टूट जाए – जो तुम्हारी नीद तोडता है वह दुश्मन जैसा मालूम पडता है।

लेकिन बुद्ध और क्राइस्ट और कृष्ण जैसे लोग तुम्हारे पीछे पडे ही रहें, तो तुम आँख खोलते हो। तो तत्क्षण तुम पूछते हो कि दूसरा किनारा कितनी दूर है, ताकि तुम उस किनारे सो जाओ। यहाँ से तुम हटाये जाओ तो जल्दी ही तुम दूसरे किनारे को यही किनारा बना लेना चाहते हो। जड होने की तुम्हारी आदत बडी गहरी है।

जडता का मोह मजिल की तलाश है।
चैतन्य तो प्रवाह है, यात्रा है। चैतन्य की कोई मजिल नही।
पत्थर ठहर जाता है,
फूल कैसे ठहरे!
फूल को तो जाना है, और होना है!
फूल को तो करोड फूल होना है, अरब फूल होना है!
एक फूल को तो सारे विश्व पर फैल जाना है!
फूल रुके कैसे!
फूल एक यात्रा है, मजिल नही।
पत्थर पडा है!
फूल खिलते हैं, मुरझा जाते हैं;
आते हैं, जाते हैं,
रुकते है क्षण-भर पत्थर के पास, फिर यात्रा पर निकल जाते हैं!
पत्थर अपनी जगह पडा है!
यह जडता ही सासारिक मन है।

तुमसे इस किनारे को छुड़ाने का सवाल नही है – तुमसे किनारा ही छुडाने का सवाल है।

इसे मुझे दोहराने दो।

इस किनारे को छुडाने का सवाल नही है। तुमसे दुकान नही छुडानी है, क्योकि तुम मकान छोड दोगे तो मदिर पकड लोगे। तुम खाता-बही छोड दोगे तो तुम वेद-कुरान-गीता पकड लोगे। तुमसे यह नही छुड़ाना है, नही तो तुम वह पकड

लोगे। तुमसे पकड़ छुड़ानी है। तुमसे किनारा नही छुड़ाना है, तुम्हारी जड़ता छुड़ानी है, यह बैठ जाने का ढग छुड़ाना है

– ताकि तुम्हें प्रवाह होना आ जाए

– ताकि तुम गत्यात्मक हो जाओ

– ताकि बहने में ही तुम्हारी मजिल हो

– रुकना तुम भूल जाओ

– तुम चलते ही रहो!

धीरे-धीरे अगर तुम ठीक से चलने की कला सीख जाओ तो तुम मिट जाओगे, चलना ही रह जाएगा। तुम भी इसीलिए हो, क्योंकि तुम बैठ जाते हो।

इसे कभी तुमने खयाल किया? तुम कभी तेजी से दौड़े? अगर तुम तेजी से दौड़ो तो तुम मिट जाते हो, दौड़ना रह जाता है।

तुम कभी परिपूर्ण रूप से नाचे? अगर तुम समग्रतया नाच उठो तो तुम मिट जाते हो, नाच रह जाता है।

जब भी तुम गत्यात्मक होते हो, 'डायनेमिक' होते हो, तब तुम्हारा अहकार मिट जाता है।

जहाँ तुम बैठे कि अहकार आया।

जहाँ तुम रुके कि अहकार आया।

जहाँ तुमने किनारा पकड़ा कि अहकार आया।

जहाँ तुमने कहा कि बस आ गये, कि अहकार आया।

जीवन अगर तुम्हारा पूरा गत्यात्मक हो और तुम बैठने की आदत छोड़ जाओ अगर तुम कभी बैठो भी तो इसीलिए कि चलने की तैयारी करते हो।

कभी-कभी बीज भी विश्राम करता है, वसत की प्रतीक्षा करता है, महीनो पड़ा रहता है। जब बीज विश्राम करता है तो ककड़-पत्थर में और बीज में फर्क करना मुश्किल होगा—लेकिन फर्क तो है।

ककड़-पत्थर विश्राम ही करते है, कही जाते नही। बीज कही जाने के लिए तैयारी कर रहा है, साज-सामान जुटा रहा है, ठीक घड़ी-मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहा है, ठीक समय और अनुकूल अवसर की बाट जोह रहा है, जाने को तत्पर है।

जैसे कभी दौड़ की प्रतियोगिता में तुमने देखा हो, दौड़ने वाले लोग खड़े होते हैं लकीर पर, लेकिन खड़े नही होते, भागे-खड़े होते हैं घण्टी बजेगी या विसिल बजेगी, और वे दौड़ पड़ेगे। बिलकुल तत्पर होते हैं! अगर तुम उन्हे देखो तो तुम यह न कह सकोगे कि वे खड़े है, तुम कहोगे वे अब गये, अब गये! वे प्रतीक्षा मे है, रोआँ-रोआँ तैयार है, क्योंकि एक क्षण भी चूकना खतरनाक है।

फूल और ककड़ जब पास रखे हो तब भी फूल का जो बीज है वह ऐसे ही

खडा है जैसे दौडाक, या तैराक तैरने के लिए तत्पर हो, सिर्फ प्रतीक्षा है ठीक मुहूर्त की, और दौड जाएँगे। ककड वही पडा रह जाएगा, बीज यात्रा पर निकल जाएगा।

तुम अगर कभी रुको भी तो सिर्फ थकान मिटा लेने को। कोई पडाव तुम्हारी मजिल न बने! रात-भर रुके और सुबह चल पडो। यह जीवत धारा ही परमात्मा का अनुभव है।

तो अगर तुम्हें मुझे ठीक-ठीक समझना हो तो तुम तृप्ति और अतृप्ति के सयम में और सयोग में और सगीत में ही समझ पाओगे। मै तुम्हे तृप्ति भी दूँगा तुम्हारे पुराने दुख छिनेगे, तुम्हे नये दुख भी दूँगा। तुम्हारी पूरी पुरानी पीडाएँ गिर जाएँगी, तुम्हें नये दर्द भी दूँगा, ताकि तुम उन नये दर्दों को मिटाने में और नये-नये कदम उठाओ।

परमात्मा प्राप्ति नही अकेली, पीडा भी है। जिसने ऐसा जाना, उसके लिए हर कदम मजिल हो जाता है।

और तुम अगर गौर से देखोगे तो तुम परमात्मा को हर जगह गत्यात्मक पाओगे। लेकिन तुमने झूठे परमात्मा खडे किये हैं। मदिरो मे पत्थरो की मूर्तियाँ बना ली हैं, वे ठहरी है वही की वही। उनसे तो तुम्ही थोडे ज्यादा परमात्मा हो चलते तो हो, उठते-डोलते तो हो, तुम्हारे जीवन मे कुछ गति तो है — सुबह कही, साँझ कही! मदिर का तुम्हारा भगवान तो वही का वही पडा है।

अच्छा हो कि तुम फूलो को पूजो! लेकिन तुम उलटे आदमी हो। तुम जिंदा फूलो को तोड के मुर्दा परमात्माओ के चरणा मे रख आते हो। इससे तो अच्छा होता कि अपने मुर्दा परमात्मा को उठा के फूलो के चरणो में रख देते।

गति को पूजो, अगति को नहीं!

अगति जडता है।

प्रवाह को पूजो, पत्थरो को नही!

लेकिन पत्थर से तुम्हारा रास बैठ जाता है, क्योकि तुम जड हो। तुमने अकारण ही पत्थर के भगवान नही बना लिये हैं, वे तुम्हारी जडता के सूचक हैं, सबूत हैं। तुमने अपनी ही छवि में उनको ढाल लिया है। तुमने अपनी ही प्रतिमाएँ गढ ली है — तुमसे भी ज्यादा मुर्दा!

थोडा पहचानो! थोडा जागो!

गत्यात्मक को पूजो!

देखो चाँद चलता है, सूरज चलता है, तारे चलते हैं! कुछ ठहरा हुआ नही है!

इस जीवन को अगर तुम गौर से देखोगे तो कुछ ठहरी हुई कोई भी चीज न पाओगे। यहाँ सब चल रहा है!

तुम इतनी जल्दी मे क्यों हो ठहर जाने की ?

यह ठहर जाने की आकांक्षा आत्मघाती है, सुसाइडल है। तुम मरना चाहते हो।

जियो ! हिम्मत करो जीने की ! और जितनी तुम्हारी हिम्मत बढ़ेगी जीने की उतना बडा जीवन तुम्हें उपलब्ध होगा — उसका अर्थ है, उतनी बडी चुनौती आएगी, उतनी बडी पीडा उतरेगी; उतने बडे पहाडो को चढने का अवसर मिलेगा।

और यह अवसर कभी समाप्त नही होता। यह समाप्त हो जाता तो दुर्भाग्य था। क्योंकि अगर ऐसी घडी आ जाए जहाँ तुम उस किनारे को पा लो तो फिर क्या करोगे ?

बर्ट्रेंड रसेल ने मजाक में ही कही कहा है कि मैं हिन्दुओ के मोक्ष से डरता हूँ 'सब पा लिया, फिर ? फिर क्या करोगे ?'

रसेल गत्यात्मक व्यक्ति था, मुर्दा परमात्मा से, मुर्दा मोक्ष से डरे, स्वाभाविक है।

मोक्ष लेकिन मुर्दा नही है। जिन्होने मोक्ष को मुर्दा बना लिया वे खुद मुर्दा होगे, तो उन्होने अपनी प्रतिछवि आरोपित कर ली है।

सागर की लहरे टकराती ही रहती हैं — अनत काल से, अनत काल तक ! ऐसे ही चैतन्य का सागर लहराता ही रहता है।

बुद्ध ने तो कहा : 'है' शब्द झूठा है। तुम कहते हो नदी है, बुद्ध कहते हैं नदी हो रही है, बह रही है, है नही। 'है' शब्द झूठ है। तुम कहते हो वृक्ष है। जब तुमने कहा, वृक्ष है, तभी वृक्ष में कुछ नयी कोपलें आ गयीं, कुछ पुराने पत्ते झड गये। तुम्हारे कहते-कहते ही तुम्हारा वक्तव्य झूठा हो गया, वृक्ष थोडा ऊपर छलाँग लगा गया, नयी जडें फट आयी।

'है' की अवस्था में तो कुछ भी नही है। ठहरा हुआ तो कुछ भी नही है।

तुम घडी-भर मुझे सुनोगे, घडी-भर बूढ़े हो गये। आये थे तुम वैसे ही वापस न जाओगे। चाहे तुम न समझ पाओ, लेकिन गगा बहुत बह गयी ! सब बदल गया ! तुम ही नही बदल रहे हो, सारा ससार बदल रहा है।

गति जीवन है। और परमात्मा महाजीवन है तो महागति है।

तो मैं तुम्हें तृप्ति भी दूंगा, इसीलिए ताकि तुम्हें और अतृप्ति दे सकूँ। मैं तुमसे क्षुद्र की तृप्ति छीन लूंगा और विराट की अतृप्ति दूंगा। मै तुमसे व्यर्थ की तृप्ति और व्यर्थ की अतृप्ति छीन लूंगा, और सार्थक की तृप्ति और सार्थक की अतृप्ति दूंगा। ससार के दुख तुमसे छीन लिये जाएँगे, तुम्हें परमात्मा की पीडा दूंगा।

पीडा भी ठीक और गलत होती है।

एक आदमी रो रहा है, उसका एक रुपया खो गया है. यह क्षुद्र की पीडा

है। यह हो तो भी ठीक नहीं। इसका रुपया भी मिल जाए तो भी क्या तृप्ति मिलने वाली है! क्षुद्र की ही पीडा थी, क्षुद्र की ही तृप्ति होगी। यह अभागा आदमी है रुपया खो गया है, इसलिए रो रहा है। फिर किसी को समझ में आयी कि मैं खुद ही खो गया हूँ, मेरा ही कुछ पता नही चलता, कहाँ हूँ। 'कहाँ हूँ' – अपने को खोजने लगा। बडी पीडा उठेगी। रुपये की पीडा बहुत बडी न थी, कोई भी हल कर देता, राह चलता कोई भी राहगीर एक रुपया दया करके दे देता। अब एक ऐसी पीडा उठी तुम्हें जो कोई भी हल न कर पाएगा। अब एक ऐसी पीडा उठी जो तुम्हें ही हल करनी पडेगी। ससार का कोई सिक्का इसे हल न कर पाएगा। फिर किसी दिन इसकी भी झलक मिलनी शुरू हो जाती है कि मैं कौन हूँ। तब एक और नयी पीडा उठती है कि यह विराट क्या है! अपने को जान लिया, इतने से क्या होगा – यह बडा सागर क्या है! बूँद की पहचान से क्या होगा! अभी बूँद को पहचान भी न पाये थे कि सागर की जिज्ञासा उठने लगी। अभी बूँद को पहचान भी न पाये थे कि सागर ने द्वार पर दस्तक दी कि बैठ मत जाना।

और मैं तुमसे कहता हूँ और भी बडे सागर हैं। एक को चुकाओगे, दूसरा द्वार खुलेगा। एक द्वार निपटता नही कि नये द्वार खुल जाते है।

तो मेरे साथ तो केवल वे ही चल सकते हैं, जो तृप्ति और अतृप्ति दोनो को साथ-साथ लेने को तैयार हैं, जो मँझधार मे जीने को तैयार है। और इसे ही मैं परमात्म-जीवन कहता हूँ। ऐसे जीवन के धारक को ही मैं सन्यस्त कहता हूँ। तुम उसे तृप्त भी पाओगे और अतृप्त भी। जहाँ तक व्यर्थ ससार का सम्बध है, तुम उसे बडा तृप्त पाओगे, और जहाँ तक उस आत्यतिक की, अतिम की पुकार है, तुम उसे बडा अतृप्त पाओगे। एक दिव्य असतोष उसमें तुम जलता हुआ पाओगे। ससार की तरफ से तुम उसमे पाओगे बडी तृप्ति, सब मिला हुआ है! और परमात्मा की तरफ से पाओगे बडी अतृप्ति, कुछ भी मिला हुआ नही है!

इसलिए तुम्हे दोनो बातें लगेगी कभी लगेगा, बहुत-बहुत पाया मेरे पास; और कभी लगेगा, बहुत-बहुत चूके। दोनो ही ठीक है। और तुम दोनो के साथ ही राजी रहना, तो ही मेरे साथ, मेरे हाथ में हाथ डाल के चल सकोगे।

दूसरा प्रश्न आपने कहा . . तब पाओगे कि भक्त ही भगवान है। प्रश्न उठता है कि एक भक्त भगवान होना पसद करे और दूसरा सिर्फ भक्त रहना चाहे, तो दोनो में श्रेष्ठ कौन है?

जो भगवान होना चाहे, वह तो हो न पायेगा। और जो भक्त भक्त ही रहना चाहे वह भगवान हो जाएगा। श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ का सवाल नही उठता, क्योंकि एक ही हो पायेगा। जो नही होना चाहता वही हो पायेगा। जो होना चाहता है, वह तो

वंचित रह जाएगा। वह तो चाह भी अहंकार की ही है।

लेकिन मामला थोड़ा नाजुक है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि विनम्रता भी अहंकार की ही होती है। कहीं तुम्हारी विनम्रता भी अहंकार की ही न हो। कहीं तुम इसलिए ही न कह रहे होओ कि मैं नहीं होना चाहता, क्योंकि तुम जानते हो कि जो इनकार करते हैं वही हो पाते हैं। तो तुम चालाक हो। तो तुम्हारी विनम्रता व्यभिचारी है। तो तुम्हारी विनम्रता शुद्ध नहीं, पवित्र नहीं, कुँआरी नहीं, वेश्या जैसी है।

जो भगवान होना चाहता है, जिसका यह अहंकार है कि भगवान होना है, वह तो पा नहीं सकेगा। लेकिन जो इसलिए विनम्र हो जाता है कि यही तरकीब है भगवान होने की, वह भी न पा सकेगा।

और तब एक और जाल की बात है, वह भी समझ लेनी चाहिए। यह भी हो सकता है, जैसे कि विनम्र छिपाये हुए अहंकार हो सकता है, अहंकारी के भीतर छिपी हुई विनम्रता भी हो सकती है। कोई बड़ी सहजता से भी कह सकता है कि मैं भगवान होना चाहता हूँ, इसमें 'मैं' की कोई बात ही न हो। यह जरा कठिन है समझना। इसमें 'मैं' का कोई भाव ही न हो, इसमें शुद्ध पुकार हो अस्तित्व की, यह सीधी-सीधी बात हो, इसमें कहीं 'मैं' का कोई सवाल न हो, इसमें ऐसे ही हो कि मैं चाहता हूँ कि मुझमें भगवान हो, यह इतना ही हो कि मैं इससे कम पे राज़ी नहीं हो सकता 'सब डुबाने को तैयार हूँ, सब गँवाने को तैयार हूँ — लेकिन जब तक भगवान ही मेरे हृदय में वास न करे, जब तक वही मुझे भर न दे, तब तक चैन नहीं।' यह बड़ी गहरी प्यास हो सकती है, यह अहंकार हो ही न ।

मैं तुमसे यह कह रहा हूँ कि अहंकार न हो तो ही भक्त भगवान हो पाता है। प्रगट-अप्रगट का सवाल नहीं है — वास्तविक विनम्रता हो।

कभी-कभी ऊपर से शब्द तो अहंकार के दिखायी पड़ते हैं, भीतर बड़ी विनम्रता होती है। और कभी-कभी ऊपर से शब्द तो बड़ी विनम्रता के होते हैं, भीतर बड़ा अहंकार होता है।

इसे तुम भलीभाँति खोज ले सकते हो अपने भीतर। दूसरे का कोई प्रयोजन भी नहीं है। अपने भीतर तो तुम जान सकते हो कि तुम्हारी विनम्रता अहंकार का ही आभूषण तो नहीं है, या तुम्हारा अहंकार केवल वक्तव्य की ही बात हो!

कृष्ण ने अर्जुन से कहा 'मामेकं शरणं व्रज! तू मेरी शरण आ!' उस क्षण में कृष्ण में 'मैं' जैसा कुछ भी नहीं था — 'मैं' था ही नहीं। यह केवल वक्तव्य की बात थी, भाषा की बात थी। कृष्ण के भीतर से परमात्मा बोला, 'मैं' कुछ भी न था वहाँ।

कभी-कभी तुम कहते हो 'मैं तो कुछ भी नहीं, आपके पैरों की धूल हूँ।

लेकिन जरा गौर करना। जिसे तुम कह रहे हो, वह अगर मान ले कि बिलकुल ठीक कह रहे हैं आप, यह तो मैं पहले ही से जानता हूँ कि आप कुछ भी नही, पैरो की धूल हैं, तब एक धक्का लगेगा छाती में कि अरे! चोट लगेगी। अहंकार पीडित हो उठेगा, फुफकार उठेगा। तुम इस आदमी को कभी माफ न कर पाओगे। क्योंकि यह जो कह रहा था वह इसका प्रयोजन न था। यह तो असल में यह कह रहा था कि तुम कहो कि 'अरे आप, और पैर की धूल! आप तो सिर के ताज हैं!' यह कहलवाने के लिए कह रहा था। यह चालाक है। यह होशियार है। यह गणित समझता है।

तो तुम अपने भीतर जानना। दूसरे से कोई प्रयोजन भी नही है। दूसरे को ठीक-ठीक समझ भी न पाओगे, क्योंकि दूसरे के शब्द ही सुनायी पडेंगे। उसके भीतर क्या घट रहा है, तुम कैसे जानोगे? लेकिन तुम अपने भीतर तो जाँच कर ही ले सकते हो।

अगर तुम्हारी विनम्रता वास्तविक है, तो 'मैं' की उद्घोषणा भी उसे मिटा न सकेगी। और अगर तुम्हारा अहकार प्रगाढ है तो 'मैं आपके पैरो की धूल हूँ', इस तरह का वक्तव्य उसे नष्ट न कर सकेगा।

लेकिन भगवान वही हो पाते हैं जो 'नही' हो जाते हैं।

और दोनो मे कौन श्रेष्ठ है, यह तो पूछना ही मत। क्योकि दोनो कभी पहुँच ही नही पाते। एक ही पहुँचता है। वही पहुँचता है जिसकी विनम्रता प्रमाणिक है। और प्रमाणिक विनम्रता का भाषा से कोई सम्बध नही। प्रमाणिक विनम्रता का हृदय से सम्बध है, तुम्हारी अन्तरानुभूति से सम्बध है।

'सूरते-नक्शे-रहगुजर आजिजी इख्तियार कर
अर्श की रफअतो पै गर तुझको मुकाम चाहिए।'

अगर आकाश की ऊँचाइयो पर अपना मुकाम बनाना हो तो पदचिह्नो की भाँति विनम्र हो जा। लेकिन ध्यान रखना, इसीलिए मत पदचिह्नो की भाँति विनम्र हो जाना कि आकाश पर मुकाम चाहिए, नही तो चूक जाओगे। आकाश पर मुकाम चाहने की तो बात ही न हो। पृथ्वी पर पदचिह्नो की भाँति हो जाना, आकाश पे मुकाम अपने से हो जाता है।

जो मिट जाते हैं, वे हो जाते हैं। जो अपने को छोड देते हैं, वे बच जाते हैं। मृत्यु यहाँ जीवन का सूत्र है और मिट जाना पा लेने की कला है।

तीसरा प्रश्न : 'भक्त्या अनुवृत्या' ऐसा कहा है, तो भक्ति साकार ही होनी चाहिए। सूर्य सूर्यलोक में साकार ही है, वैसे ही भगवान भी साकार क्यो नही?

किसने कहा, भगवान साकार नही है?

सभी आकार उसी के है। भगवान का अपना कोई आकार नही है। तुम भगवान का आकार खोज रहे हो, इसलिए सवाल उठता है कि भगवान साकार क्यो नही।

वृक्ष में भगवान वृक्ष है, पक्षी में पक्षी है, झरने में झरना है, आदमी में आदमी है, पत्थर मे पत्थर है, फूल में फूल है। तुम भगवान का आकार खोज रहे हो, तो चूकते चले जाओगे।

सभी आकार जिसके हैं, उसका अपना कोई आकार नही हो सकता। अब यह बड़े मजे की बात है। इसका अर्थ हुआ कि सभी आकार जिसके हैं, वह स्वय निराकार ही हो सकता है। यह जरा उलटी लगती है बात सभी आकार जिसके हैं वह निराकार !

सभी नाम जिसके हैं उसका अपना नाम कैसे होगा ? जिसका अपना नाम है उसके सभी नाम नही हो सकते। सभी रूपो से जो झलका है उसका अपना रूप नही हो सकता। जो सब जगह है उसे तुम एक जगह खोजने की कोशिश करोगे तो चूक जाओगे। सब जगह होने का एक ही ढग है कि वह कही भी न हो। अगर कही होगा तो सब जगह न हो सकेगा। कही होने का अर्थ है सीमा होगी। सब जगह होने का अर्थ है कोई सीमा न होगी।

तो परमात्मा कोई व्यक्ति नही है। परमात्मा सभी के भीतर बहती जीवन की धार है। वृक्ष में हरे रग की धार है जीवन की ! वृक्ष आकाश की तरफ उठ रहा है— वह उठान परमात्मा है। वृक्ष छिपे हुए बीज से प्रगट हो रहा है— वह प्रगट होना परमात्मा है।

परमात्मा अस्तित्व का नाम है।

परमात्मा ऐसा नही है जैसे पत्थर है। परमात्मा ऐसे नही है जैसे तुम हो। परमात्मा ऐसा नही जैसा कि चाँद-तारे हैं। परमात्मा किसी जैसा नही, क्योकि फिर सीमा हो जाएगी।

अगर परमात्मा तुम जैसा हो, पुरुष जैसा हो, तो फिर स्त्री में कौन होगा ? स्त्री जैसा हो तो पुरुष वचित हो जाएगा। मनुष्य जैसा हो तो पशुओं मे कौन होगा ? और पशुओ जैसा हो तो पौधो मे कौन होगा ?

इसे समझने की कोशिश करो।

परमात्मा जीवन का विशाल सागर है। हम सब उसके रूप हैं, तरगें हैं। हमारे हजार ढग हैं। हमारे हजारो ढगो में वह मौजूद है। और ध्यान रहे कि हमारे ढग पर ही वह समाप्त नही है, वह और भी ढग ले सकता है। वह कभी भी ढगो पर समाप्त नहीं होगा। उसकी सभावना अनत है। तुम ऐसी कोई स्थिति की कल्पना नही कर सकते जहाँ परमात्मा पूरा-पूरा प्रगट हो गया हो। कितना ही प्रगट होता चला जाए, अनत रूप से प्रगट होने को शेष है।

इसलिए तो उपनिषद कहते हैं उस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। हम कितना ही निकालते चले जाएँ, हमारे निकालने से कुछ कमी नही पडती। हमारे निकालने से वह कुछ छोटा नहीं होता जाता– पूर्ण का पूर्ण ही शेष रहता है।

पूछा है 'भक्ति साकार ही होनी चाहिए।'

भक्ति तो साकार होगी, भगवान साकार नही है। थोडी कठिनाई होगी तुम्हे समझने मे। क्योंकि शास्त्रो से बँधी हुई बुद्धि को बडी अडचनें हैं।

भक्ति तो साकार है, लेकिन भगवान साकार नही है। क्योंकि भक्ति का सम्बध भक्त से है, भगवान से नही है। भक्त साकार है, तो भक्ति साकार है। लेकिन भक्ति का अतिम परिणाम भगवान है। प्रथम तो यात्रा शुरू होती है भक्त से, अतिम उपलब्धि होती है भगवान पर। शुरू तो भक्त करता है, पूर्णता भगवान करता है। प्रयत्न तो भक्त करता है, प्रसाद भगवान देता है।

तुम शुरू करने वाले हो, पूरे करने वाले तुम नही हो – पूरा परमात्मा करेगा।

तो, भक्ति के दो अर्थ हो जाएँगे जब भक्त शुरू करता है तो वह साकार होती है, फिर जैसे-जैसे भगवान भक्त में उतरने लगता है, निराकार होने लगती है। जब भक्त पूरा मिट जाता है, भक्ति शून्य हो जाती है, निराकार हो जाती है। फिर तुम भक्त को बैठ के मदिर मे घटी बजाते न देखोगे। फिर अहर्निश उसके प्राणो की धक-धक ही उसकी घटी है। फिर तुम भक्त को राम-राम चिल्लाते न देखोगे, क्योंकि अब भक्त जो भी सोचे, वही राम-राम है। अब तुम भक्त को तिलक-टीका लगाते न देखोगे, अब तो भक्त ही स्वय तिलक-टीका हो गया, वह स्वय लग गया। अब अपना कुछ बचा नही। अब तुम भक्त को मदिर जाते न देखोगे। हाँ, अगर तुम्हारे पास आँखें हो तो मदिर को भक्त के पास आते देखोगे। अब तुम भक्त को भगवान को पुकारते न देखोगे, अगर तुम्हारे पास सुनने वाले कान हो तो तुम भगवान को देखोगे कि पुकार रहा है भक्त को।

भक्त ने शुरू की थी यात्रा, भगवान ने पूरी की। तुम एक हाथ बढाओ, दूसरा हाथ उस तरफ से आता है। इस तरफ का हाथ साकार है, उस तरफ का हाथ निराकार है। इसलिए तुम जिद्द मत करना कि उस तरफ का हाथ भी साकार हो, अन्यथा झूठा हाथ तुम्हारे हाथ में पड जाएगा। फिर तुम्हारे ही दोनो हाथ होंगे इधर से भी तुम्हारा, उधर से भी तुम्हारा।

उधर से आने वाला हाथ तो निराकार है, निर्गुण है। निर्गुण का यह मतलब नही है कि परमात्मा में कोई गुण नही है। निर्गुण का इतना ही मतलब है कि सभी गुण उसके है। इसलिए कोई विशेष गुण उसका नही हो सकता।

निराकार का यह अर्थ नही कि उसका कोई आकार नही है, सभी आकार

जो कभी हुए, जो है, और जो कभी होंगे, उसी के हैं। तरल है ! सभी आकारों में ढल जाता है। किसी आकार में कोई अड़चन नही पाता।

भक्त की तरफ से तो भक्ति साकार होगी, लेकिन जैसे-जैसे भक्त परमात्मा के करीब पहुँचेगा वैसे-वैसे निराकार होने लगेगी। और एक पड़ाव ऐसा आता है, जहाँ भक्त की तरफ से सब प्रयास समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि प्रयास भी अहंकार है। मै कुछ करूँगा तो परमात्मा मिलेगा, इसका तो अर्थ हुआ कि मेरे करने पर उसका मिलना निर्भर है। इसका तो यह अर्थ हुआ कि यह भी एक तरह की कमाई है। इसका तो यह अर्थ हुआ कि अगर मैंने सिक्के मौजूद कर दिये तो मैं उसको वैसे ही खरीद के ले आऊँगा जैसे बाज़ार से किसी और सामान को खरीद के ले आता हूँ पुण्य के सिक्के सही, भक्ति-भाव के सिक्के सही।

नहीं, ऐसा नही है। मै सब भी पूरा कर दूँ तो भी उसके होने की कोई अनिवार्यता नही है। मेरे सब करने पर भी वह नही मिलेगा, जब तक कि मेरा 'करने वाला' मौजूद है।

तो भक्त पहले करने से शुरू करता है बहुत करता है, बहुत रोता है, बहुत नाचता है, बहुत याद करता है, बहुत तड़फता है, फिर धीरे-धीरे उसे समझ में आता है कि मेरी तड़फन में भी मेरी अस्मिता छिपी है, मेरी पुकार मे भी मेरा अहंकार है, मेरे भजन मे भी मैं हूँ, मेरे कीर्तन में भी मेरी छाप है, कर्तृत्व मौजूद है !

जिस दिन यह समझ आती है उस दिन भक्त मिट जाता है, उस दिन जैसे किसी ने दर्पण गिरा दिया और काँच के टुकड़े-टुकड़े हो गये, उस दिन भक्त नही रह जाता।

जिस दिन भक्त नही रह जाता, भक्ति कौन करे ! कौन मंदिर जाए ! कौन मन्त्रोच्चार करे ! कौन विधि-विधान पूरा करे ! एक गहन सन्नाटा घेर लेता है ! उसी सन्नाटे में दूसरा हाथ उतरता है।

तुम मिटे नही कि परमात्मा आया नही ! तुमने सिंहासन खाली किया कि वह उतरा ! तुम्हारी शून्यता में ही उसके आगमन की संभावना है।

भक्ति तो साकार है, भगवान निराकार है। और भक्त के सम्बन्ध मे हम क्या कहे ? भक्त अपने को साकार समझता है, वह उसकी भ्रांति है, जिस दिन जानेगा, अपने को भी निराकार पायेगा। भक्त अपने को भक्त समझता है, यह भी उसकी भ्रांति है, जिस दिन जानेगा उस दिन अपने को भगवान पायेगा।

सब आकार स्वप्नवत् हैं। निराकार सत्य है, आकार स्वप्न है। लेकिन हम जहाँ खड़े हैं, वहाँ आकारो का जगत है। हम अभी स्वप्न में ही पड़े हैं। हमें तो जागना भी होगा तो स्वप्न में ही थोड़ी यात्रा करनी पड़ेगी।

भक्ति साकार ही होनी चाहिए – होती ही है। निराकार भक्ति हो नही

सकती, क्योंकि निराकार में करने को क्या रह जाता है, करने वाला नही रह जाता ।

भक्ति तो साकार ही होगी, लेकिन भगवान निराकार है। इसलिए एक-न-एक दिन भक्ति भी जानी चाहिए। भक्ति की पूर्णता पर भक्ति भी चली जाती है। प्रार्थना जब पूर्ण होती है तो प्रार्थना भी चली जाती है। ध्यान जब पूर्ण होता है तो ध्यान भी व्यर्थ हो जाता है – हो ही जाना चाहिए। जो चीज भी पूर्ण हो जाती है वह व्यर्थ हो जाती है। जब तक अधूरी है तब तक ठीक है मदिर जाना होगा, पूजा करनी होगी। करना, लेकिन याद रखना, कही यह न भूल जाए कि यह सिर्फ शुरुआत है। यह जीवन की पाठशाला की शुरुआत है, अत नही है। यह बारहखडी है, क ख ग है।

छोटे बच्चो की किताबे देखी हैं ! कुछ भी समझाना हो तो चित्र बनाने पडते हैं, क्योकि छोटा बच्चा चित्र ही समझ सकता है। आम तो छोटे में लिखो, आम का बडा चित्र बनाओ। पूरा पन्ना आम के चित्र से भरो, कोने में आम लिखो। क्योंकि पहले वह चित्र देखेगा, तब वह शब्द को समझेगा।

ऐसा ही भक्त है। भगवान ! 'भगवान' तो कोने में रखो, बडी मूर्ति बनाओ, खूब सजाओ। अभी भक्त बच्चा है। अभी उस खाली कोने में जो भगवान है वह उसे दिखायी न पडेगा।

तुमने कभी गौर किया ? मदिर गये हो ? – जहाँ मूर्ति है वहाँ तो भगवान है; लेकिन खाली जगह जो मूर्ति को घेरे हुए है, वहाँ भगवान दिखायी पडा ? वहाँ भी भगवान है, तुम्हें नही दिखायी पडा, क्योकि तुम्हे मूर्ति चाहिए। बचपन है अभी ! मदिर में भगवान दिखायी पडा, मदिर के बाहर कौन है ? मदिर की दीवालो को कौन छू रहा है ? सूरज की किरणो मे किसने मदिर की दीवालो पर थाप दी है ? हवाओ मे कौन मदिर के आसपास लहरें ले रहा है ? मदिर की सीढ़ियो पर चढ़ते हुए भक्तो के भीतर कौन सीढियाँ चढ रहा है ? वहाँ तुम्हें अभी नही दिखायी पडा। अभी बचकाना है मन। अभी चित्र चाहिए, मूर्ति चाहिए।

साकार से शुरुआत करनी होती है, लेकिन साकार पे रुक मत जाना। मै यह नहीं कहता हूँ कि साकार की शुरुआत ही मत करना। नही तो बच्चा भाषा कभी सीखेगा ही नही। वह सीखने का ढग है, बिलकुल जरूरी है। अडचन वहाँ शुरू होती है जहाँ तुम पहले पाठ को ही अतिम पाठ समझ के बैठ जाते हो।

सीख लेना और मुक्त हो जाना !
जो भी सीख लो, उससे मुक्ति हो जाती है।
आगे चलो !
मूर्ति मे देख लिया – अब अमूर्त में देखो !

आकार में देख लिया – अब निराकार में देखो !

शब्द में सुन लिया – अब नि शब्द मे सुनो !

शास्त्र में पहचान लिया – अब मौन में, शून्य में चलो !

पर जल्दी भी मत करना। अगर मदिर में न दिखा हो तो मदिर के बाहर तो दिख ही न सकेगा। जल्दी भी मत करना।

आदमी का मन अति पर बडी आसानी से चला जाता है।

तो इस देश में तो बडी अतियाँ हुई। इसमे एक तरफ लोग हैं जो कहते हैं परमात्मा निराकार है। वे किसी तरह की मूर्ति को बरदाश्त न करेंगे, किसी तरह की पूजा को बरदाश्त न करेंगे।

मुसलमानो ने यही रुख पकड लिया, तो मूर्तियो को तोडने पे उतारू हो गये।

अब थोडा सोचो पूजा के योग्य तो मूर्ति नही है, लेकिन तोडने के योग्य है ! इतने में तो पूजा ही हो जाती। जब परमात्मा की कोई मूर्ति ही नही है तो तोडने का भी क्या प्रयोजन, तोडने मे भी क्यो श्रम लगाते हो ?

अति होती है या तो पूजा करेंगे, या तोडेंगे।

समझ नही है अति के पास कोई।

तो एक तरफ है जो जिद्द किये जाते है कि परमात्मा निराकार है। ठीक कहते हैं, बिलकुल ठीक ही कहते हैं परमात्मा निराकार है। लेकिन आदमी उस जगह नही है अभी, जहाँ मे निराकार से सबध जुड सके। आदमी अभी निराकार के योग्य नही है। होगा बुद्ध के लिए, पर आदमी बुद्ध कहाँ ? होगा महावीर के लिए, लेकिन किससे बाते कर रहे हो ? जिससे बातें कर रहे हो, उसकी भी तो सोचो। दया करो उस पर। तुम परम स्वस्थ लोगो की बाते अस्पताल में पडे बीमारो से कर रहे हो ! बुद्ध को जरूरत नही है, लेकिन जिसको तुम समझा रहे हो, उसको ? उस पे ध्यान करो, करुणा करो थोडी।

निराकार की बाते करने वाले बडे दयाहीन है। करुणा उनके मन में जरा भी नही है। इसलिए उनकी निराकार की बातें सब थोथी, पाडित्य हैं, शास्त्रीय हैं।

फिर दूसरी तरफ साकार की बात करने वाले लोग हैं, उनके मन मे आदमी के प्रति दया तो है, लेकिन सत्य की निष्ठा नही। ठीक कहते हैं : इस आदमी को ले जाना है। जिसका सारा चित्त मूर्तियो से भरा है, जिसके चित्त में सब आकार ही आकार हैं, उससे निराकार की अभी पहचान नही हो सकती, आकारो से ही सम्बध जुडाना होगा, फिर धीरे-धीरे छुडा लेंगे, सीढी-सीढ़ी चढा लेंगे। छलाँग न हो सकेगी, सीढी-सीढी यात्रा हो जाएगी।

ठीक कहते हैं कि परमात्मा साकार है। लेकिन फिर जिद्द पैदा होती है। फिर ज़िद्द यह पैदा होती है कि परमात्मा साकार है, यह कोई अतिम सत्य है। तो

फिर लोग मूर्तियो से ही बँधे रह जाते हैं। कुछ मूर्ति-भजक हैं, मूर्तियाँ तोडने में जीवन गँवाते हैं, कुछ मूर्ति-पूजक हैं, मूर्तियो को सजाने में जीवन गँवाते हैं।

मेरी तुम पूछते हो तो मैं तुमसे कहूँगा - मुझे दोनो की बातो में सार है और दोनो की बातो में खतरा भी दिखायी पडता है। सार है दोनो की बातो में और खतरा भी दोनो की बातो में। तुम सार-सार चुन लेना और खतरे से बच जाना।

मेरा कोई मजहब नही है, मेरा कोई सम्प्रदाय नही है। इसलिए मुझे कोई अडचन भी नही है, किसी से भी सत्य, जहाँ भी सत्य हो, वहाँ देखने में मुझे कोई अडचन नही है। मेरा कोई आग्रह नही है। मेरे पास कोई कसौटी नही है जिस पे मैं तौलूं। मैं सीधा देख पाता हूँ।

जो साकार की बात कहते हैं, वे ठीक कहते हैं, आधी मजिल तक वे तुम्हारे साथ हो सकेंगे -- बस आधी मजिल तक! उसके बाद निराकार की बात तुम्हारे लिए महत्त्वपूर्ण होने लगेगी। तब तुम घिरे मत रह जाना, गिरफ्त में मत रह जाना। तब तुम यह मत कहना कि हम तो साकार की पूजा करते रहे अब तक, आकार को भीतर न प्रवेश करने देंगे। आँख बद मत कर लेना जब निराकार पुकारे। यह मत कहना कि यह मेरी धारणा मे नही है, यह तो हमारा शास्त्र नही है, हम तो मानने वाले साकार के है! आँख बद मत कर लेना। पीठ मत फेर लेना। क्योकि तुम्हारा साकार ही वहाँ ले आया है, उसको तो तुम अपनी साकार की सफलता मानना कि तुम्हारी पूजा पूरी हुई, तुम्हारी प्रार्थना सुनी गयी। तो तुमने फायदा भी ले लिया, तुम खतरे से भी बच गये।

साकार से तुम चलो, निराकार पर तुम पहुँचो।

ऐसा अगर तुम्हारे जीवन में सतुलन हो तो कोई खतरा नही है।

तो, दूसरी तरफ लोग हैं, वे कहते हैं, 'जब निराकार ही है अखीर में तो हम पहले से ही निराकार क्यो न माने?' वे चल ही नही पाते। वे उन लगडे लोगो की तरह हैं जो बैसाखियो का सहारा लेने को राजी नही।

तुमने देखा! -- पैर पे चोट लग गयी हो, ऐक्सीडेंट हो गया हो, तो डॉक्टर कहता है, बैसाखियो का सहारा ले लो। साल छह महीने बैसाखियो के सहारे चलो, फिर धीरे-धीरे शक्ति वापस लौट आएगी। फिर धीरे-धीरे बैसाखियाँ छोड देना, पैरो पे चलना।

तुम डॉक्टर से यह नही कहते कि 'जब अखीर में पैरो पे ही चलना है तो अभी से हम बैसाखियों से क्यो चलें? नही, हम बैसाखियाँ छुएँगे भी नही।' तुम कहते हो, 'ठीक है, बैसाखियो का उपयोग कर लेंगे।'

सब धर्म तुम्हारे उपयोग के लिए हैं। तुम उनका उपयोग कर लेना और तुम

किसी के भी गुलाम मत बनना। कोई धारणा इतनी बड़ी न हो जाए कि सत्य को ओट कर ले।

चौथा प्रश्न आशीर्वाद क्या है? और गुरु जब शिष्य के सिर पर हाथ धरता है, तब क्या प्रेषित करता है? और क्या आशीर्वाद लेने की भी क्षमता होती है?

आशीर्वाद गुरु तो अकारण देता है, बेशर्त देता है, लेकिन तुम ले पाओगे या न ले पाओगे, यह तुम पे निर्भर है। इतना ही काफी नहीं है कि कोई दे और तुम ले लो, तुम्हें उसमें कुछ दिखायी भी पड़ना चाहिए, तभी तुम लोगे। वर्षा हो और तुम छाते की ओट में छिप के खड़े हो जाओ, तो तुम न भीगोगे। आशीर्वाद बरसे, और तुम अहंकार की ओट में, अहंकार के छाते में छिप जाओ, तो तुम न भीगोगे। वर्षा हो जाएगी, मेघ आएँगे और चले जाएँगे, और तुम सूखे-के-सूखे रह जाओगे।

तो, तुम्हारी तैयारी चाहिए। तुम्हारा स्वीकार का भाव चाहिए। ग्रहण करने की क्षमता चाहिए। चातक की भाँति मुँह खोल के आकाश की तरफ, प्रार्थना से भरा हुआ हृदय चाहिए। स्वाति की बूँद तुम्हारे बंद मुँह में न गिरेगी – मुँह खुला होना चाहिए, आकाश की तरफ उठा होना चाहिए, प्रतीक्षातुर होना चाहिए, तो ही . ।

तो, जब तुम गुरु के पास झुको, तब वस्तुतः झुकना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि सिर ही झुके और हृदय बिना झुका रह जाए, तो आशीर्वाद बरस जाएगा और तुम अछूते रह जाओगे ।

समझने की बात यह है कि गुरु यह नहीं कह रहा है कि तुम्हारी कोई पात्रता होगी तो आशीर्वाद दूँगा, लेकिन तुम्हारी पात्रता न होगी तो दिया आशीर्वाद तुम तक न पहुँच पायेगा, व्यर्थ चला जाएगा।

गुरु आशीर्वाद देता है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं, गुरु से आशीर्वाद बरसता है, ऐसा ही कहना ठीक है। जैसे दीये से रोशनी झरती है, फूल से गंध बहती है, ऐसा गुरु कुछ करता है, प्रेषित करता है, ऐसा नहीं, तुम्हें कुछ देता है विशेष रूप से, ऐसा नहीं – झर ही रहा है। वह उसके होने का ढंग है। उसने कोई ऊँचाई पायी है, जिस ऊँचाई से झरने नीचे की तरफ बहते ही रहते हैं। अगर तुम तैयार हो तो तुम नहा लोगे। तुम अगर तैयार हो तो तुम्हारे मार्ग के काँटे हट जाएँगे और फूलों से भर जाएगा मार्ग।

लेकिन आशीर्वाद लेने की कला, झुकने की कला है। वह अहंकार को हटाने की कला है। वह स्वीकार-भाव है! आस्तिकता है! श्रद्धा है! आस्था है! प्रेम है!

तो पहली तो बात यह है कि गुरु देता है, ऐसा नही; गुरु आशीर्वाद का दान है, देता नही है। गुरु के होने में ही समाया है ।

तो अगर तुम मुझसे पूछो कि गुरु की परिभाषा क्या है तो यही परिभाषा है जिससे आशीर्वाद झरते हों। तुम माँगो-न-माँगो, तुम लेने आये हो न लेने आये हो, तुम झुको-न-झुको – इससे कोई भेद नही पडता, जिससे आशीर्वाद तुम पर झरते ही हो, प्रसादरूप बरसते हो ।

ऐसा भी मत समझना कि वह तुम्हारे लिए कुछ विशेष रूप से कर रहा है। कोई भी न हो, एकात में भी दीया जले, तो भी रोशनी जलती रहती है, तो भी प्रकाश पडता रहता है। वीरान में, निर्जन में फूल खिले, कोई राह से न निकले, कोई नासापुट पास न आएँ, किसी को कभी कानोकान खबर भी न होगी शायद, निर्जन मे खिले फूल की किसको खबर होगी, लेकिन सुगध तो झरती ही रहेगी, सुगध तो भरती ही रहेगी हवाओ में, हवाओ पर पख फैलाती रहेगी, सुगध तो दूर-दूर की यात्रा पर निकलती ही रहेगी। फूल तो अपने को लुटा देगा, इससे क्या फर्क पडता है कि कोई था या नहीं! किसी का होना-न-होना सयोग है। फूल खिल गया है तो सुगध का बिखरना नियति है।

गुरु वही है जिससे आशीर्वाद ऐसे ही बिखरता है, जैसे खिल गये फूल से गध बिखरती है। सयोग की बात है कि कोई ले ले, झेल ले। सयोग की बात है कि कोई अपने नासापुटो को भर ले। सयोग की बात है कि इन किरणो को कोई सम्हाल ले अपने हाथो में और अपने अधेरे रास्ते पर चिराग जला ले। यह सयोग की बात है।

आशीर्वाद दिया नहीं जाता, गुरु के होने का ढग आशीर्वाद है, वह प्रसादरूप है।

आशीर्वाद क्या है ?

आशीर्वाद जैसे मैने कहा, फूल जब खिलता है तो गध बिखरती है – गध क्या है ? बीज में छिपी थी, फूल में प्रगट हुई, बीज में बद थी, फूल मे खिली। लम्बी यात्रा करनी पडी, बीज अकुर बना, कितनी कठिनाइयाँ थी, कितने पत्थर रोडे थे राह में बीज के, जमीन को फोड कर ऊपर आया, कितना कोमल था और कितना सघर्ष था, हजार उपद्रवो को झेल कर बचा – वृक्ष बना, फूल खिले, गध बिखरी!

गुरु – तुम्हारे भीतर जो कल होने वाला है, तुम्हारा जो भविष्य है, वह गुरु का वर्तमान है। तुम अगर बीज हो तो वह गध हो गया है। तुम अगर बद झरने हो, राह नही खोज पा रहे हो, तो वह सागर से मिल गया है। वह तुम्हारा भविष्य है।

गुरु में तुम अपने होने की आखिरी संभावना का दर्शन पाते हो।

आशीर्वाद का अर्थ है : गुरु के सान्निध्य में तुम्हारे वर्तमान और तुम्हारे भविष्य का मिलन होता है, तुम्हारा भविष्य तुम्हारे वर्तमान पे झरता है।

गुरु माध्यम है, तुम जो नहीं हो अभी और हो सकते हो, उसकी खबर है। अगर तुम ठीक से झुक जाओ तो उसका आशीर्वाद तुम्हारे लिए एक उर्ध्वयात्रा बन जाएगी। वह तुम्हारे ऊपर उतरेगा, बरसेगा। जैसे आकाश से वर्षा होती है, जमीन में छिपे बीज तक पहुँचती है, ऐसा वह तुम तक पहुँचेगा। आकाश से वर्षा होती है, जमीन में छिपे बीज तक पहुँचती है और तत्क्षण बीज का अकुरण हो जाता है और बीज आकाश की तरफ उठने लगता है।

आशीर्वाद में गुरु तुम तक पहुँचेगा, उतरेगा, उसका अस्तित्व तुम्हारे अस्तित्व को छुएगा, तुम्हारी भूमि में, अँधेरे मे दबे हुए बीज पर उसकी वर्षा होगी—और तत्क्षण तुम ऊपर की यात्रा पर निकल जाओगे।

आशीर्वाद का अर्थ है गुरु ने तुम्हारे शून्य में, तुम्हारी रिक्तता में अपने को भरा, ताकि तुम्हारे भीतर जो दबा पडा है, उसे पुकार मिल जाए, उसे आह्वान मिल जाए, चुनौती मिल जाए, सुगबुगाहट पैदा हो, तुम्हारे भीतर जो बीज है वह भी अकुरित होने लगे, उसे खबर मिल जाए कि मैं क्या हो सकता हूँ!

इसलिए भक्ति-शास्त्र सत्सग की महिमा गाता है।

तुम करीब आओ, तुम झुको, तो गुरु तुम्हारे करीब आ पाता है। तुम झुको तो वह तुम में उतर पाता है अवतरण!

हर आशीर्वाद में परमात्मा अवतरित होता है। हर आशीर्वाद अवतार है।

हमने उन्ही व्यक्तियों को अवतार कहा है जिनके कारण बहुत-से व्यक्तियो के भीतर, अनेको के भीतर सोयी हुई सम्भावनाएँ सजग हो गयी, वास्तविक बनी। हमने उन्ही व्यक्तियों को अवतार कहा है जो हमारे भीतर उस गहराई तक उतर सके जहाँ तक हम भी नही पहुँच पाए और जिन्होने हमारी गहराइयो को छू दिया, तिलमिला दिया, जगा दिया, जिन्होने हमारी नीद तोड दी।

तो आशीर्वाद अवतरण है—ऊँचाइयो का, तुम्हारी गहराइयो में, भविष्य का, तुम्हारे वर्तमान में, सभावना का, तुम्हारी वास्तविकता मे, तुम्हारे तथ्यो के जीवन मे सत्य की पुकार है।

और आशीर्वाद अनूठी बात है, क्योकि गुरु दिये जा रहा है। उसे कुछ करना नही पड रहा है। कोई श्रम नही है जो उसे करना पड़ रहा है। तुम न भी लोगे तो भी यह गध हवाओ में लुटानी ही पडेगी। मेघ जब भर जाएँगे, तो बरसेंगे ही। बीज अकुरित हो या न हो, मेघ जब भर जाएँगे तो बरसेंगे ही—बरसना ही पडेगा।

तो गुरु मेघ है, बरस रहा है।

बुद्ध ने तो उस अवस्था को मेघ-समाधि कहा है—जब समाधि बरसती है। वही गुरु की दशा है। जब समाधि बरसने लगती है—तब आशीर्वाद, तब प्रसाद!

पर तुम ले सको तो ही ले पाओगे।

झुकने की कला सीखो, मिटने की कला सीखो, तो तुम्हारे होने का सूत्रपात होता है।

पाँचवाँ प्रश्न कल के प्रवचन में अचानक कुछ घटा। सुनते-सुनते ध्यान दो वाक्यो के बीच मौन पर केन्द्रित हो गया और बड़ी गहरी और शीतल शाति का अनुभव हुआ। प्रणाम स्वीकार करें।

शुभ हुआ। उस तरफ ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान को ले जाएँ, ताकि यह घटना केवल एक स्मृति न रह जाए, ताकि यह घटना धीरे-धीरे तुम्हारे जीवन की शैली बन जाए।

जैसे दो शब्दो के बीच मे ध्यान रुका, ऐसे ही जीवन के हर पहलू में जहाँ-जहाँ अभिव्यक्ति है, वहाँ-वहाँ दो अभिव्यक्तियो के बीच में ध्यान देना।

स्त्री और पुरुष हैं—ये अभिव्यक्तियाँ हैं। अगर तुम पुरुष ही रहोगे तो ससार में रहोगे, स्त्री ही रहोगे तो ससार में रहोगे। दोनो के बीच में कही मोक्ष है।

रात और दिन अभिव्यक्तियाँ हैं। अगर तुम दिन से बँधे रहे तो रात से डरे रहोगे। अगर रात से बँधे रहे तो दिन से परेशान रहोगे। रात और दिन के बीच में सध्या का काल है। इसलिए तो हमने इस देश में सध्या को प्रार्थना का समय चुना है — बीच में, ठीक मध्य में।

दुकान से ही मत बँधे रहना और मदिर से भी मत बँध जाना। मदिर और दुकान के बीच में कही सन्यास है। हर दो अभिव्यक्तियो और विरोधो, अतियो के बीच में मध्य को खोजते रहना, तो तुम्हारे जीवन में सयम का फूल खिलेगा।

और यह घटना स्मृति न बन जाए, क्योंकि बहुत बार ऐसी घटना घटती है। हम ऐसे अभागे हैं कि घट भी जाती है, झलक भी मिल जाती है, तो भी झलक को गहराते नही। पकड मे भी आ जाते है सूत्र तो आ-आ के खो जाते हैं। कई बार तुम्हारे हाथ में आँचल आ गया है सत्य का और छिटक गया है, तुम फिर झपकी लेने लगते हो, फिर याद भूल जाती है, फिर होश खो जाता है।

शुभ हुआ। सौभाग्य हुआ। प्रसाद का क्षण मिला। उसे गहराना। उसे जितना ज्यादा जहाँ-जहाँ खोज सको, खोजना, ताकि धीरे-धीरे वह तुम्हें हर जगह दिखायी पडने लगे। उसी शून्य और शाति से तुम्हें परमात्मा के पहले दर्शन होंगे। उसी शून्य से निराकार का हाथ तुम तक आएगा। हाथ तैयार ही है आने को। तुम बस जरा एक कदम चलो, परमात्मा हजार कदम तुम्हारी तरफ चलता है।

आखिरी प्रश्न एक परम्परा कहती है कि देवर्षि नारद परम मुक्ति को उपलब्ध नही थे। दूसरी परम्परा उन्हें सप्तऋषि में एक मानती है, जिनका गुह्य

और परोक्ष कार्य सदा चलता रहता है। क्या भक्ति-सूत्र के रचयिता के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे ?

जान कर ही नारद की कोई बात मैंने नही की। सोच कर ही छोडा। क्योंकि भक्त का कोई कर्तृत्व नही होता और न व्यक्तित्व होता है। भक्त तो एक मौन है, एक शून्य निवेदन है!

भक्त कुछ करता नही, इसलिए कोई कर्तृत्व नही होता।

भक्त तो एक आनद है! एक गीत है! एक नृत्य है! एक अहोभाव है!

बडा सूक्ष्म है भक्त का अस्तित्व!

न तो कोई कर्तृत्व है, न कोई व्यक्तित्व है, क्योकि भक्त तो एक खाली बाँस की पोगरी है, व्यक्तित्व क्या! खाली जगह है, जहाँ से भगवान को जगह देता है, जहाँ से भगवान उससे बहने लगते हैं।

नारद पर इसीलिए मैंने कुछ कहा नही। और इसीलिए नारद के सम्बध मे न मालूम कितनी कथाएँ प्रचलित हैं। नारद के व्यक्तित्व को समझा ही नही जा सका। समझने के लिए जगह नही है। समझने के लिए आधार नही है।

एक परम्परा कहती है कि वे परम मुक्ति उपलब्ध नही हुए। क्यो ?— क्योंकि नारद में बुद्ध जैसा व्यक्तित्व दिखायी नही पडता, न महावीर जैसा व्यक्तित्व दिखायी पडता है। नारद ऐसे सुलझे हुए मालूम नही होते जैसे बुद्ध सुलझे हुए मालूम होते हैं। नारद बडे उलझे मालूम होते हैं। कथाएँ कहे चली जाती है कि पृथ्वी और स्वर्ग के बीच में न केवल खुद उलझे हे, दूसरो को भी उलझाते रहते है।

नारद का व्यक्तित्व साफ-साफ नही हे। बुद्ध साफ-साफ उस पार हैं, समझ में आते हैं। नारद न इस पार न उस पार, कही बीच में डोलते हैं।

कितनी कथाएँ हैं! नारद स्वर्ग जा रहे हैं, वैकुठ जा रहे हैं, वैकुठ से जमीन पर आ रहे हैं— दो लोको के बीच में! मेरे लिए उतना ही इगित है कि दो किनारो के बीच में ।

व्यक्तित्व बडा उलझा हुआ मालूम पडता है। एक ही किनारे पे इतनी उलझन है। दो ससारो के बीच में जो जिये — एक पैर यहाँ रखे, एक वैकुठ में रखे — उसकी उलझन तुम समझ सकते हो। लेकिन वही मेरे लिए परम सन्यास का रूप है, जो दो अतियो के बीच अपने को सम्हाल ले।

एक किनारे पे बस गये, वह भी कोई सुलझाव, सुलझाव हुआ ? या दूसरे किनारे पे हट गये, वह भी कोई सुलझाव, सुलझाव हुआ ? सेतु बनना चाहिए, जिस पे दोनो किनारे जुड जाएँ।

नारद सेतु हैं। इस तरफ से देखो तो बिलकुल ससारी हैं! और उस तरफ

से तुम देख न सकोगे, उस तरफ से मैं देख रहा हूँ। उस तरफ से देखो तो परम वीतराग हैं।

इसी तरफ से देखा गया है। इसी किनारे पे खड़े हुए लोग देखते हैं कि यह सेतु तो यही जुड़ा है, इसी किनारे पर जुड़ा है, दूसरा किनारा तो दिखायी नहीं पड़ता।

तो नारद संसार से जुड़े मालूम पड़ते हैं, सांसारिक मालूम पड़ते हैं। उनके आसपास रची गयी कथाएँ इस किनारे के लोगों ने रची हैं। मैं तुमसे उस किनारे से कह रहा हूँ कि नारद सेतु हैं।

नारद बड़े अनूठे रहस्यपूर्ण व्यक्ति हैं। उनका अनूठापन यही है, उनकी अद्वितीयता यही है कि वे एकतरफा नहीं हैं, एकांगी नहीं हैं। महान समन्वय उनमें सिद्ध हुआ है।

फिर सारी कथाएँ कहती हैं कि वे कुछ उलझाव का ताना-बाना बुनते रहते हैं। लोकमानस में उनकी जो प्रतीति है वह कुछ चुगलखोर जैसी है। यह भी अकारण नहीं बन गयी होगी, क्योंकि कोई भी बात बनती है तो उसके पीछे कुछ-न-कुछ कारण होगा। हजारों साल तक करोड़ों लोग जब ऐसी कहानियाँ गढ़ते रहते हैं, तो उसके पीछे कहीं-न-कहीं कोई सूत्रपात होगा, कहीं-न-कहीं कोई आधार होगा। आधार है।

जब भक्त अपने को परमात्मा के हाथ में सौंप देता है, तो 'वह' जो करवाये वह करता है। फिर वह यह भी नहीं कहता कि यह बात जँचती नहीं, यह करना ठीक न होगा। फिर वह असंगतियाँ भी करवाये तो असंगति भी करता है। छोड़ने का अर्थ ही होता है पूरा छोड़ना। फिर उसमें हिसाब नहीं रखता। वह झूठ भी बुलवाये तो भी भक्त यह नहीं कह सकता, 'मैं न बोलूँगा।' क्योंकि भक्त है ही नहीं। वह कहता है, 'तेरा झूठ, तो तेरा झूठ मेरे सच से भी बड़ा है।'

इसे थोड़ा समझना . 'मेरा सच भी तेरे झूठ से छोटा होगा! तेरा झूठ भी मेरे सच से बड़ा होगा! फिर तू करवा रहा है तो जरूर कोई कारण होगा। फिर तू ही जान, यह हिसाब कौन रखे!'

तो नारद के व्यक्तित्व में संगति नहीं है यहाँ की बात वहाँ कह रहे हैं, बढ़ा-चढ़ा के कह रहे हैं, कभी घटा के कह रहे हैं, कभी जोड़ के कह रहे हैं। इसलिए स्वभावत लोकमानस को यह लगता है कि यह व्यक्ति और 'मुक्त'! तो थोड़ी अड़चन मालूम होती है।

'मुक्त' के सम्बंध में हमारी धारणाएँ हैं कुछ, नारद सब धारणाओं को तोड़ देते हैं, क्योंकि नारद अपने को सब भाँति समर्पित कर देते हैं। परमात्मा की इस विराट लीला में, इस बड़े खेल में, इस बड़े नाटक में, वे अपना कोई व्यक्तित्व ले के नहीं चलते, वे 'वह' जो करवाता है करते हैं। इतना ही इंगित है। 'वह'

अगर झूठ भी बुलवाये तो झूठ भी बोल देते हैं। लेकिन नारद ने झूठ नहीं बोला है, परमात्मा की लीला के अंश हो गये हैं!

इस बात को लोकमानस न समझ पाये, यह भी स्वाभाविक है। लेकिन इतना बड़ा सूत्र, इतना बड़ा नाटक चलता हो तो उसमें नारद जैसे व्यक्तित्व की भी जरूरत है। वह भी कोई कमी पूरी करता है। नारद के बिना कथाएँ अधूरी रह जाएँगी। नारद के बिना नाटक सूना-सूना होगा। नारद कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र का काम पूरा करते हैं।

पर नारद के व्यक्तित्व की बात इतनी ही है कि उन्होंने छोड़ दिया है 'वह' जो करवाये!

उनका रूप जो लोकमानस में है वह यह है कि वे अपना एकतारा लिये इस लोक से उस लोक के बीच डोलते रहते हैं। उनका वाद्य उनके साथ है। उनका संगीत उनके साथ है। उनके भीतर की संगीतपूर्ण दशा उनके साथ है।

ज्यादा कुछ उनके सम्बन्ध में कहा नहीं जा सकता, कहने की कोई जरूरत भी नहीं है। उनका एकतारा ही उनका प्रतीक है। भीतर उनके एक ही स्वर बज रहा है, वह भक्ति का है, एक ही स्वर बज रहा है, वह समर्पण का है, एक ही स्वर बज रहा है, वह श्रद्धा का है। फिर परमात्मा जो कराये, जो 'उसकी' मर्जी!

नारद की अपनी कोई मर्जी नहीं है। अपने व्यक्तित्व को बनाने में भी उनकी कोई आचरणगत धारणा नहीं है। महावीर की मर्जी है, वे पैर भी फूंक-फूंक के रखते हैं, उनके पास एक आचरण है। बुद्ध की मर्जी है, एक शील है, नारद के पास अपना उतना भी दावा नहीं है।

इसलिए अगर तुम मुझसे पूछते हो तो मैं तुमसे कहता हूँ कि यही परम मुक्ति है।

आज इतना ही।